

बहुवचन

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका

प्रधान संपादक
गिरीश्वर मिश्र

संपादक
अशोक मिश्र



महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा का प्रकाशन

बहुवचन

अंक : 58 (जुलाई-सितम्बर 2018) ISSN- 2348-4586

प्रकाशक : महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

संपादकीय संपर्क :

संपादक बहुवचन

महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)

मो. संपादक- 7888048765, 09422386554, ईमेल- bahuvachan.wardha@gmail.com

E-mail : amishrafaiz@gmail.com

प्रकाशन प्रभारी : राजेश कुमार यादव

ईमेल- rajeshkumaryadav97@gmail.com फोन- 07152-232943, मो. 09975467897

© संबंधित लेखकों एवं रचनाकारों द्वारा सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं विश्वविद्यालय की स्वीकृति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

पत्रिका न मिलने की शिकायत इस पते पर करें :

प्रचार प्रसार : सुरेश कुमार यादव

फोन : 07152-232943, मो. 09730193094, ईमेल- s.ujala80@gmail.com

बिक्री और प्रसार कार्यालय :

प्रकाशन विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र) भारत

फोन : 07152-232943, फैक्स : 07152-230903

वार्षिक सदस्यता के लिए बैंक ड्राफ्ट महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के नाम से, जो वर्धा में देय हो, ऊपर लिखित बिक्री कार्यालय के पते पर भेजें। मनीऑर्डर स्वीकार्य नहीं।

यह अंक : रु. 200/-

सामान्य अंक : 75/- वार्षिक शुल्क रु. 300/-, द्विवार्षिक शुल्क रु. 600/- व्यक्तिगत

संस्थाओं के लिए वार्षिक शुल्क रु. 400/-, द्विवार्षिक रु. 800/- (डाक खर्च सहित)

विदेश में : हवाई डाक : एक प्रति 15 अमेरिकी डॉलर/7 ब्रिटिश पाउंड

समुद्री डाक : एक प्रति 8 डॉलर/5 ब्रिटिश पाउंड

आवरण : प्रीडा क्रिएशन्स

BAHVACHAN

A QUARTERLY INTERNATIONAL JOURNAL IN HINDI

PUBLISHED BY: MAHATMA GANDHIANTARRASHTRIYA HINDI VISHWAVIDYALAYA
GANDHI HILLS, POST-HINDI VISHWAVIDYALAYA, WARDHA-442001 (MAHARASHTRA) INDIA.

मुद्रण : विवक ऑफसेट ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 (फोन : 011-22824606,
मो. 9811388579)

अनुक्रम

आरभिक

हिंदी का भविष्य और भविष्य की हिंदी	6
------------------------------------	---

वैचारिकी

देश की भाषाओं के केंद्र में हिंदी/ दामोदर खड़से	8
हिंदी : वर्तमान और भविष्य/ फणिभूषण दास	13
हिंदी का विश्वव्यापी परिप्रेक्ष्य/ ओम निश्चल	16
वैश्विक हिंदी का भविष्य/ पुष्पिता अवस्थी	24
धरोहर बचाने की चुनौती/ प्रेम जनमेजय	30
वैश्विक हिंदी की चुनौतियाँ/ उमेश चतुर्वेदी	35
भाषा, सूचना प्रौद्योगिकी, कोशकारिता और अनुवाद/ अराविंद कुमार	39
हिंदी चली 'निकष' की ओर/ अशोक चक्रधर	51
हिंदी में आधुनिक अनुप्रयोगों का दौर/ बालेंदु शर्मा दाधीच	54
भारतीयता की सांस्कृतिक अवधारणा है हिंदी/ राजेश कुमार यादव	59
विदेशी भाषा की अधिग्रहण प्रक्रिया/ सुरेंद्र गंभीर	62

विदेश में हिंदी

इक्कीसवीं सदी में हिंदी शिक्षण का नया मार्ग/ ग्रैबिएला इलेवा	71
चीन में हिंदी : संभावनाएं और चुनौतियाँ/ ली या यान	77
कनाडा में हिंदी : दशा और दिशा/ स्लेह ठाकुर	81
नस्लवाद के नए मुखौटे : अमेरिका में हिंदी शिक्षण/ सुषम बेदी	90
विदेशों में हिंदी शिक्षण की चुनौतियाँ/ अर्चना पैन्यूली	96
आस्ट्रेलिया में हिंदी/ रेखा राजवंशी	103
मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता : एक ऐतिहासिक विश्लेषण/ प्रह्लाद रामशरण	106
फिजी में हिंदी और हिंदुस्तानी : भाषा और संस्कृति के उभरते आयाम/ कमल किशोर मिश्र	119
सिंगापुर में हिंदी/ संध्या सिंह	128
हिंदी और दक्षिण कोरियाई भाषाओं में अनुवाद / दिविक रमेश	138

प्रवासी हिंदी साहित्य

अभिमन्यु अनत की काव्य यात्रा/ कमल किशोर गोयनका	146
ब्रिटेन में हिंदी कहानी के तीस वर्ष/ उषा राजे सक्सेना	163
प्रवास में भारतीयता : तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में समय संदर्भ/ तत्याना ओरांस्क्या	173
‘प्रवासी लेखन हिंदी साहित्य का बेहतरीन नमूना’ (तेजेंद्र शर्मा से उषा शर्मा की बातचीत)	181

सिनेमा तथा मीडिया

ये कहाँ आ गए हम/ राकेश मंजुल	
नए मीडिया ने बदली हिंदी की चाल/ राकेश कुमार	
सोशल मीडिया में हिंदी की शान/ कुमार नरेंद्र सिंह	
हिंदी वेब पत्रिकाएँ : अब पाठकों की मुट्ठी में/ वाशिनी शर्मा	

आरंभिक

हिंदी का भविष्य और भविष्य की हिंदी

हिंदी सदियों से भारतीय संस्कृति, परंपरा और जीवन संघर्षों को आत्मसात करते हुए अपनी भाषिक यात्रा में निरंतर आगे बढ़ रही है। आज की हिंदी का जन्म लोक भाषा के रूप में हुआ था। वह एक समृद्ध लोक भाषा थी, जिसमें न केवल आम जन बोलते थे, बल्कि सूर, कबीर, तुलसी, जायसी, रहीम, रसखान और जाने कितने ही महान कवियों ने ऐसा अमर साहित्य रचा, जो समय बीतने के साथ भी ताजा बना रहा। ‘भाखा’ वाला उनका काव्य एक साथ ग्रामीण जन से लेकर निपुण साहित्यकार तक के लिए रस का स्रोत होता था। वह सुरसरि ‘गंगा’ की भाँति सबको रसाद्वं करता चलता था। समय बदला और ‘लोक’ खिसककर परिधि पर चला गया और ठेठ खड़ी बोली केंद्र में आकर साहित्य में सत्तानशीन हो गई। ‘भाषा’ का युग आया और ‘भाखा’ बोली हो गई। भाषा को संवैधानिक दर्जा मिला और उसके प्रयोग क्षेत्र का विस्तार होता रहा, तथापि अंग्रेजी के आगे उसे ठिठकना पड़ा क्योंकि नौकरशाही को उसका अभ्यास था और उसकी श्रेष्ठता की पैरवी कई कोनों से होती रही। परिणाम यह हुआ कि हिंदी, जो एक व्यापक जन समुदाय की भाषा थी, अपनी शक्ति, सम्मान और प्रसार को नहीं पा सकी और उसके साथ ही हिंदीभाषी जन भी उपेक्षा के शिकार हुए। भाषा को लेकर भेदभाव का विषय उलझता चला गया और राजनीति के चलते भारतीय भाषाएं अंग्रेजी की तुलना में न केवल अधिकारहीन होती गई, बल्कि आपस में प्रतिदंडिता करने लगीं। इन सबके बीच हिंदी की चेतना भी विस्तृत होती रही।

हिंदी की भूमिका ज्ञान, कला-कौशल और सामाजिक जीवन के संयोजन आदि में कितनी प्रभावी है, यह सुविदित है। उसे रेखांकित करने के लिए भारत और विदेश में अनेक स्तरों पर प्रयास चलते रहे। अनेक प्रकार के उपक्रम राष्ट्रीय स्तर पर होते रहे। हिंदी के व्यापक परिदृश्य को आकार देते हुए विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन, एक केंद्रीय घटना के रूप में उभरा। इसकी जीवन यात्रा वर्ष 1975 में नागपुर, भारत में आरंभ हुई थी, जब श्री अनंत गोपाल शेवड़े की संकल्पना सफल हुई। तब इस आयोजन में मॉरीशस के यशस्वी जननायक सर शिव सागर राम गुलाम और भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी शिरकत की थी। अब 11वां विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस की धरती पर आयोजित हो रहा है। इसके पहले भी दो बार ऐसा अवसर मॉरीशस में आया था। इस बीच की अवधि वैश्विक स्तर पर अनेक परिवर्तनों की साक्षी रही है। आर्थिक-राजनैतिक मोर्चों पर नए समीकरण उभरे हैं और सहयोग के नए आयाम भी उद्घाटित हुए हैं। हिंदी की वैश्विक उपस्थिति को संवर्धित करने के लिए हिंदी का विश्व सचिवालय भी मॉरीशस में स्थापित हुआ। यह संतोष का विषय है कि भारत सरकार के सहयोग से अब उसका भवन भी तैयार है और सचिवालय के महासचिव के निर्देशन में अनेक योजनाएं भी संचालित हो रही हैं। अनेक देशों से ई-पत्रिकाएं और

उनके मुद्रित संस्करण भी आ रहे हैं जो हिंदी प्रेमियों द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उत्साहपूर्वक प्रकाशित की जा रही हैं। हिंदी के बाजार का भी विस्तार हो रहा है और विदेश की बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी हिंदी की इस क्षमता को पहचान रही हैं। इस दृष्टि से दक्षिण कोरिया और चीन जैसे देशों ने विशेष रुचि ली है। भारत की संस्कृति में अनेक देशों की रुचि बढ़ी है। भारतवंशी नागरिकों वाले फिजी, त्रिनिदाद, गुयाना, मॉरीशस, सूरीनाम और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भी हिंदी के प्रति रुझान बढ़ा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद ने विदेशों में अनेक हिंदी पीठों की स्थापना कर भारतीय संस्कृति और हिंदी के अध्ययन को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया है। भारतीय राजनय में प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व में हिंदी का प्रयोग भी बढ़ा है। यह गर्व का विषय है कि अनेक अंतरराष्ट्रीय मंचों पर वे भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए हिंदी में अपनी बात रखते हैं। विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने विदेश मंत्रालय के कार्यकलाप में हिंदी के उपयोग को बड़े मनोयोग से प्रोत्साहित तथा संवर्धित किया है। उनके अधक प्रयास से देश और विदेशों में हिंदी की सशक्त छवि का निर्माण हुआ है। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अंतर्गत राजभाषा विभाग की देख-रेख में केंद्रीय हिंदी निदेशालय, अनुवाद व्यूरो, केंद्रीय हिंदी संस्थान तथा हिंदी प्रशिक्षण केंद्र आदि अनेक उपक्रम संचालित हैं, जो सरकारी क्षेत्र में हिंदी के उपयोग को सक्षम बनाने का काम कर रहे हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन के संकल्प के परिणामस्वरूप वर्धा में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय भी वर्ष 1997 में स्थापित हुआ जो हिंदी को ज्ञान की भाषा और संस्कृति की संवाहिका के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए सतत रूप से प्रयत्नशील है। यहां पर हिंदी माध्यम से अनेक विषयों के अध्ययन-अध्यापन, शोध, शब्दकोश निर्माण, विदेशी छात्रों के लिए हिंदी अध्यापन, हिंदी के प्रौद्योगिकी का विकास, डायस्पोरा तथा प्रवासी अध्ययन, अनुवाद, प्रकाशन तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की उपस्थिति को रेखांकित करने के प्रयास के साथ-साथ विश्वविद्यालय में हिंदी हेतु राष्ट्रीय संसाधन केंद्र का विकास किया जा रहा है।

चूंकि देशकाल स्थिर नहीं रहते इसलिए भाषा का मानवीय उद्यम अनेक रूप लेता है। जीवन-व्यापार में बदलाव आने के साथ-साथ भाषा की भूमिका में भी अनिवार्य रूप से बदलाव आता है। अतः समय बीतने के साथ संचार तकनीक में जो परिवर्तन हुआ, उसके अंतर्गत भाषा के कई संस्करण होते गए। भाषिक उत्पादों की वाचिक से हस्तलिखित, फिर मुद्रित और अब डिजिटल प्रस्तुति ने न केवल उनके संकलन और संग्रह के उपायों को बदला है, बल्कि उसी के साथ भाषा-प्रयोग के रूप भी बदले हैं। संवाद भी दृश्य और श्रव्य विधाओं के अनेक रूपों में उपलब्ध होने लगा है। संप्रेषण की प्रौद्योगिकी में हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तन ने भाषा के साथ हमारे दैनंदिन बर्ताव को भी तेजी से बदला है। इस बदलाव से साहित्य भी अछूता नहीं रहा। ब्लॉग, फेसबुक, ट्वीटर और ई-पत्रिका जैसे किस्म-किस्म के माध्यम अभिव्यक्ति के साहित्यिक और गैर साहित्यिक ‘फार्म’ में सीधी पैठ कर रहे हैं। रचना और उसके पाठक के बीच का अंतराल घटता जा रहा है। कभी प्रकाशन की प्रक्रिया बड़ी श्रमसाध्य हुआ करती थी और प्रकाशन के लिए लंबे अवकाश की जरूरत पड़ती थी। अब रचनाकार और पाठक के बीच का रिश्ता तात्कालिक होता जा रहा है। यह परिवृश्य आकर्षक और विकर्षक दोनों ही प्रकार का है। रचना में त्वरा के अपने खतरे हैं पर आज के समय का यथार्थ कुछ ऐसा ही है। इसके चलते भाषा-व्यवहार के आयामों में अनेक परिवर्तन आ रहे हैं।

‘बहुवचन’ का ‘हिंदी का भविष्य : भविष्य की हिंदी’ विषय पर केंद्रित यह अंक, हिंदी के इस बदलते परिदृश्य को पहचानने, समझने की एक कोशिश है। हमने भारत के बाहर की दुनिया में हिंदी की दशा-दिशा की तजबीज का प्रयास किया है और साथ ही हिंदी की भाषिक यात्रा के आत्म-संघर्ष को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है। इस अंक में प्रस्तुत आलेख मुख्यतः देश और विदेश में हिंदी के बदलते परिदृश्य को रेखांकित करते हैं। सुविधा के लिए इन्हें चार उपशीर्षकों में व्यवस्थित किया गया है। ‘वैचारिकी’ के अंतर्गत भाषा के रूप में हिंदी की प्रगति के विभिन्न आयामों पर वर्तमान विमर्श को प्रस्तुत किया गया है। विशेष रूप से भाषा प्रौद्योगिकी की दृष्टि से उभरती संभावनाओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। ‘विदेश में हिंदी’ के अंतर्गत सम्मिलित लेखों में एशिया, यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, मॉरीशस, फिजी आदि में हिंदी की वर्तमान स्थिति का आकलन किया गया है। ‘प्रवासी साहित्य’ के अंतर्गत अभिमन्यु अनत व तेजेन्द्र शर्मा के अवदान पर केंद्रित आलेख हैं। साथ ही ब्रिटेन में हिंदी कहानी का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। अंत में ‘सिनेमा तथा मीडिया’ के अंतर्गत इस क्षेत्र में हिंदी की विकास यात्रा, परिवर्तन और चुनौतियों को रेखांकित किया गया है।

‘बहुवचन’ को यह रूप देने में हमें हिंदी की विकास यात्रा के अनेक सहभागियों का सहयोग मिला है। अंक के सभी लेखकों के हम हृदय से आभारी हैं। श्री अशोक मिश्र ने इस अंक के लिए विशेष रुचि ली और इसे समय पर पूर्ण करने के लिए अथक प्रयास किया, उनका आभार। इसी बीच हिंदी के प्रख्यात लेखक श्री अभिमन्यु अनत दिवंगत हो गए उनकी साहित्य यात्रा पर डॉ. कमल किशोर गोयनका का आलेख इस अंक में दिया जा रहा है। गीतों के जादूगर पद्मभूषण कवि श्री गोपालदास नीरज के देहावसान से हिंदी की अपूरणीय क्षति हुई है। उनकी अनूठी शैली और मर्मस्पर्शी काव्य चेतना की कमी हमेशा ही खलेगी। दिवंगत विभूतियों को हमारी विनम्र श्रद्धांजलि। आशा है यह अंक हिंदी के आत्म साक्षात्कार का अवसर प्रदान करेगा और उसकी सामर्थ्य के लिए हमें प्रतिश्रुत कर सकेगा।

जय हिंदी! जय हिंद!!



देश की भाषाओं के केंद्र में हिंदी

दामोदर खड़से

पिछले दिनों भारत की जनगणना 2011 की विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित हुई, जिसमें भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़ है। कुल जनसंख्या में हिंदीभाषी लोगों का प्रतिशत 43.63 है, अर्थात् 52 करोड़ 83 लाख लोगों की मातृभाषा हिंदी है। उर्दू मातृभाषा का प्रतिशत 4.34 है। इसे हिंदी के साथ जोड़ देने से यह आंकड़ा 48.97 तक पहुंच जाता है। साथ ही भारत सरकार के राजभाषा नियम के अनुसार ‘ख’ क्षेत्र को इसमें जोड़ते हैं तो यह संख्या लगभग 64 प्रतिशत हो जाती है। इसके अलावा हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में भी हिंदी जानने वालों की संख्या काफी है। कुल मिलाकर देश में लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या हिंदी लिख- पढ़ और बोलने में सक्षम है। भारत ऐसे विशाल देश में हिंदी जानने वालों की यह संख्या बहुत बड़ी है। क्षेत्रीय भाषाओं के भी वह करीब है। भारत एक बहुभाषी देश है, जिसकी 22 भाषाएं संविधान की आठवीं अनुसूची में हैं। साथ ही, रिपोर्ट से यह भी उभरकर आया है कि भारत में कुल 19,569 बोलियां हैं। दस हजार से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली बोलियों की संख्या 121 है। 99 ऐसी बोलियां हैं, जिन्हें 10 हजार से कम लोग बोलते हैं। आठवीं अनुसूची के अंतर्गत आने वाली भाषाओं को जानने वालों की संख्या 96.71 प्रतिशत है। इतनी बड़ी जनसंख्या और इतनी भाषाओं के बीच हिंदी का अस्तित्व सर्वथा महत्वपूर्ण है।

हम देखते हैं कि व्यावहारिक दृष्टि से हिंदी को कई भूमिकाएं निभानी होती है। एक-जनसामान्य की भाषा के रूप में, दूसरी- पढ़ाई- लिखाई और साहित्य की भाषा और तीसरी- संविधान द्वारा अपनाई गई राजभाषा के रूप में। इसी तीसरी भूमिका में विज्ञान, तकनीक आदि क्षेत्रों में हिंदी के समावेश को देखा जा सकता है।

हिंदी के जनभाषा के रूप में अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रखा है। वह राजनीति, बाजार, विज्ञापन, मीडिया आदि की भाषा के रूप में अपना वर्चस्व सिद्ध किए हुए है। व्यवहार, व्यापार और विपणन हिंदी के बिना अधूरा-सा लगता है। मनोरंजन की दुनिया पूरे देश में हिंदी से सजती है। फिल्म, सीरियल में हिंदी दर्शकों की संख्या बहुतायत है। मीडिया में हिंदी का बोलबाला है। समाचारों का पहला चैनल हिंदी में ही आया और अब तो दर्जनों चैनल हिंदी समाचारों के हैं। ये चूंकि व्यावसायिक माध्यम हैं, इसलिए हिंदी को अपनाकर देश की अधिक से अधिक जनसंख्या तक पहुंचना चाहते हैं। इस तरह हिंदी की यह व्यावसायिक संप्रेषण शक्ति हिंदी को दूरदराज तक पहुंचाती है। आज हिंदी की अहमियत बाजार में निर्विवाद है। साथ ही, राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में हिंदी ही किसी

दल विशेष के संबोधन-संदेश को बड़ी जनसंख्या तक पहुंचाने में सफल रही है। भारतीय लोकतंत्र में हिंदी ने खूब विचरण किया है।

यदि हम समाचारपत्रों में हिंदी की स्थिति को देखते हैं, तो पाते हैं कि पहले इस (संख्या व प्रसार की दृष्टि से), भारत के अखबारों में पांच हिंदी के हैं। वह भी पहले तीन का स्थान हिंदी को ही मिला है। चौथे क्रमांक पर अंग्रेजी का एकमेव अखबार है। शेष चार क्षेत्रीय भाषाओं के हैं। अर्थात् इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ मुद्रित में भी हिंदी देश में अग्रणी है। निम्न ब्यौरे से और स्पष्ट हो सकेगा-

प्रसार-संख्या के आधार पर पहले दस समाचारपत्र :

क्रम	समाचारपत्र	प्रधान कार्यालय	भाषा	जन.-जुलाई 2017
1.	दैनिक जागरण	कानपुर	हिंदी	3,964,064
2.	दैनिक भास्कर	भोपाल	हिंदी	3,758,949
3.	हिंदुस्तान	नई दिल्ली	हिंदी	2,735,252
4.	टाइम्स ऑफ इंडिया	मुंबई	अंग्रेजी	2,716,201
5.	अमर उजाला	नोएडा	हिंदी	2,662,855
6.	मलयाला मनोरमा	कोट्टायम	मलयालम	2,388,886
7.	इनाडु	विजयवाडा	तेलुगू	1,862,018
8.	राजस्थान पत्रिका	जयपुर	हिंदी	1,784,142
9.	डेली थांथी	चेन्नई	तमिल	1,657,318
10.	मातृभूमि	कोक्सिकोड	मलयालम	1,432,568

(स्रोत : आडिट ब्यूरो ऑफ सरक्यूलेशन, विकिपीडिया)

इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यवहार, व्यापार, बाजार, विज्ञापन, मीडिया और जन-संचार में भाषा का माध्यम मुख्य रूप से हिंदी ही है।

जहां तक साहित्य की बात है- हिंदी देश की भाषाओं के केंद्र में है। जब किसी प्रादेशिक भाषा का अनुवाद होता है, तब उस कृति को शेष भारतीय भाषाओं में प्रवेश के महाद्वार खुलते नजर आते हैं। क्षेत्रीय भाषाओं से हिंदी में बड़ी मात्रा में अनुवाद होते हैं। पंजाबी से मणिपुरी में या असमिया से मलयालम में सीधे अनुवाद की उतनी सुविधा नहीं है, बल्कि हिंदी के माध्यम से यह कार्य सुगम होता रहा है। हिंदी, भारतीय भाषाओं के बीच एक कड़ी का काम करती है, जिसके माध्यम से अन्यान्य भाषाओं के बीच आवागमन आसान होता जाता है। फिल्मों को भी हिंदी में डब करके राष्ट्रीय स्तर पर दिखाया जाता है। हिंदी एक ऐसा बिंदु है, जहां से क्षेत्रीय भाषाएं आवागमन कर राष्ट्रीय स्तर पर अपनी कृतियों को सहजता से ले जा सकती हैं। हिंदी में ऐसी लोच है, जो सभी क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द, शैली और संदेश को अपने भीतर समेट लेती है। क्षेत्रीय भाषाओं के कई दिग्गज साहित्यकार अनुवाद के माध्यम से हिंदी में आए और हिंदी के हो गए। रवींद्रनाथ टैगोर, शरत्चंद्र, महाश्वेता देवी, अमृता प्रीतम, विजय तेंदुलकर, शिवाजी सावंत, अनंतमूर्ति, भालचंद्र नेमाडे, के.एम. मुंशी जैसे कितने ही लेखक अब हिंदी के ही हो गए हैं। मराठी के वि.स. खांडेकर को तमिल और गुजरातीभाषी अपनी ही भाषा के उपन्यासकार मानते हैं। हिंदी, संचार, अनुवाद, संप्रेषण की भी भाषा

बन गई है। अब तक भारतीय ज्ञानपीठ के 52 पुरस्कार प्रदान किए जा चुके हैं। इनमें से सर्वाधिक दस पुरस्कार हिंदी के हिस्से आए हैं। सृजन के माध्यम से हिंदी अपनी भावी यात्रा निरंतर करने में जुटी हुई है।

हिंदी के विकास में शब्दावलियों का भी योगदान रहा है। ‘समांतर कोश’ की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। भाषा के विकास में सामान्य शब्दावलियों, शब्दकोशों के साथ इस प्रकार के कोश विशिष्ट उपयोगिता लिए होते हैं। पिछले दिनों हिंदुस्तानी प्रचार सभा की ओर से डॉ. सुशीला गुप्ता ने ‘क्रिया कोश : हिंदी-अंग्रेजी’ बहुत परिश्रम से तैयार किया, जो भारतीयों के साथ विदेशियों के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। समय और आवश्यकता के अनुसार ऐसे प्रकाशन निरंतर होते रहने चाहिए।

वर्तमान में कई भाषा-विषयक और साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत सार्थक है। इंटरनेट पर पत्रिकाओं की उपलब्धता देश-विदेश के पाठकों के लिए बहुत सहायक सिद्ध हुई है। लघु और अव्यावसायिक पत्रिकाओं की उपादेयता साहित्य और भाषा के प्रसार में उल्लेखनीय रही है। साथ ही, देश में ‘राष्ट्रभाषा प्रचार समितियां’ अनौपचारिक रूप से हिंदी के प्रचार-प्रसार में जुटी हुई हैं। कार्यालयीन मोर्चे पर भारत सरकार का राजभाषा विभाग केंद्रीय हिंदी निदेशालय, केंद्रीय हिंदी संस्थान जैसी संस्थाएँ भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दे रही हैं।

अब मूल प्रश्न राजकाज की भाषा का रहा है- अर्थात् राजभाषा के रूप में हिंदी की स्थिति। सरकार और नौकरशाही पर कई सवाल खड़े होते रहे हैं। 2011 की जनगणना के आधार पर कुल 121 करोड़ जनसंख्या में केवल 0.02 प्रतिशत लोग अंग्रेजी के साथ बेहतर संवाद कर सकते हैं। संख्या की दृष्टि से केवल 254,678 लोगों ने ही, अभिव्यक्ति के लिए अंग्रेजी का विकल्प दिया है। फिर भी, सरकारी कामकाज में पूरे देश में अंग्रेजी की प्राथमिकता है। यह बहुत बड़ी विसंगति है। इसमें सरकार की इच्छाशक्ति और प्राथमिकता का अभाव ही झलकता है। नौकरशाही का अपना गणित है। बहुभाषी देश की सीमाओं का हवाला दिया जाता है, लेकिन क्षेत्रीय भाषाओं को भी अपना स्थान दिलवाने में व्यवस्था असफल ही रही है।

संविधान के 343 से 351 अनुच्छेद राजभाषा हिंदी के प्रावधानों से जुड़े हैं, लेकिन संविधान की भावनाओं का आदर आजादी के इतने चर्चा बाद भी नहीं हो पाया है। जनभाषा और राजभाषा हिंदी के बीच एक चौड़ी खाई बन गई है। संसद में सारी बहसें हिंदी में भी होती हैं, पर जब वह चर्चा विधेयक बनकर कानून के रूप में सामने आता है, तब वह अंग्रेजी में होता है। बाद में हिंदी अनुवाद और अनुवाद की प्रामाणिकता पर सवाल... यह कामकाजी हिंदी की लगभग हर क्षेत्र की स्थिति है।

इसका सबसे बड़ा कारण लोगों के बीच हिंदी के प्रति अनास्था ही लगती है। प्रशासन में उसे उचित आसन नहीं मिल पा रहा और जनता पर अंग्रेजी का दबाव है। यह दबाव अधिकारों, श्रेष्ठता-भाव और हुक्मरानों-सी अभिव्यक्ति से प्रेरित है। हिंदी, राजभाषा आधिकारिक रूप से होने के बावजूद उसकी वास्तविक स्थिति बिलकुल भिन्न है। हिंदी जानने, लिखने, बोलने वाले व्यक्ति। कर्मचारी को उस तरह नहीं लिया जाता, जैसा कि अंग्रेजी से जुड़े व्यक्ति कर्मचारी को सम्मान से देखा जाता है। इसके बहुत गहरे कारण हैं। सबसे बड़ा कारण अनास्था और मनोवैज्ञानिक है, जिसकी जड़ें सरकारी उपेक्षा और नौकरशाहों की लापरवाही है। इसी कारण लगभग 90 प्रतिशत जनमानस

के हिंदी से सुगमता अनुभव करने के बावजूद उस पर अंग्रेजी थोपी जाती है। कुछ क्षेत्रीय राजनीति की भूमिका भी इसमें रही है। वैसे हिंदी के प्रयोग के लिए अनेकानेक नियम-कानून उपलब्ध हैं, पर उनके कार्यान्वयन में उपेक्षा ही दिखाई देती है। यह मामला बहुत पेचीदा हो उठा है। राज्यों में, शिक्षा-नीति उनकी अपनी है। वहां क्षेत्रीय भाषाओं का उल्लेख है। उच्च और तकनीकी-शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। इसमें से बाहर आकर देश की स्पर्धात्मक परीक्षाओं में कुछ स्थानों पर हिंदी विकल्प के रूप में तो है, पर अनिवार्य नहीं है। नौकरी के लिए स्पर्धा परीक्षा में शामिल होते समय उम्मीदवार पर यह मनोवैज्ञानिक दबाव होता है कि हिंदी माध्यम से आगे बढ़ने पर उसे कमतर न समझ लिया जाए। फिर परिश्रम कर जब वह अंग्रेजी के महाद्वार से प्रशासन का अंग बन जाता है, तब उसे आधे-मन से हिंदी के लिए संविधान का हवाला देकर प्रशिक्षण के लिए शामिल किया जाता है। यह औपचारिकता राष्ट्र की अस्मिता के साथ जोड़ने में असफल सिद्ध हो जाती है।

बहरहाल, केंद्र सरकार ने संविधान के प्रावधानों को लागू करवाने के लिए अपने कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन सुनिश्चित करने हेतु राजभाषा विभागों की स्थापना की है। अधिकारियों, अनुवादकों की नियुक्तियां हुई हैं परंतु, इस व्यवस्था को औपचारिकता के भंवरजाल से निकलना होगा। कुछ कामों की शुरुआत तो हो चुकी है। शब्दावली, अनुवाद, जन-सुविधाओं के लिए लेखन-सामग्री, कंप्यूटर, बोर्ड, सूचनाएं, प्रकाशन आदि तो अंग्रेजी के साथ हिंदी में दिखाई देने लगे हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से कर्मचारियों और जनता में हिंदी कार्यान्वयन को लेकर जो उत्सुकता होनी चाहिए, उसमें कोई प्रगति दिखाई नहीं देती, उलटे कई बार उसमें गिरावट दिखाई देती है। राजभाषा विभाग में जहां समर्पित अधिकारी-कर्मचारी हैं, वहां कुछ हरियाली नजर आती है, पर अधिकांश कर्मचारी नौकरी निवाहने लगते हैं। यदि यह सारी मशक्कत रस्म-अदायगी से उबर सके तो कार्यालयीन कामकाज को हिंदी में संपन्न करना बहुत कठिन नहीं है। उनके मनोबल को मजबूत करने और ऊंचा उठाने के लिए उच्च-स्तर से प्रयास होने चाहिए। गंगा हमेशा ऊपर से नीचे की ओर बहती है। हिंदी के उद्गम को बहाव के विरुद्ध, नीचे से ऊपर की ओर ले जाने की अजीबोगरीब कसरत कदमताल करती रह जाती है।

जब कोई भाषा जन, सुजन और प्रशासन का समर्थन पाती है तब उसका चहुंमुखी विकास होता है। जनभाषा और साहित्य की भाषा के रूप में हिंदी का विकास देखते ही बनता है। बस प्रशासन में वह प्रवहमान हो, इस और विशेष ध्यान देने की आवश्यकता व्यवस्था को महसूस होनी चाहिए। जिस भाषा में तकनीक और विज्ञान का चिंतन मूल रूप से होता है, वह भाषा वास्तविक रूप में उस राष्ट्र-विशेष की उपलब्धि होने लगती है। अभी देश में हिंदी और भारतीय भाषाओं को इस सीमा-रेखा को पार करना है। विषय और भाषा का सामंजस्य, प्रवाह और मेल-जोल जितना होगा; अभिव्यक्ति, संप्रेषण और संदेश उतनी ही तेज गति से अपना लक्ष्य हासिल करेंगे। फिर भी, यह आशा करना अनुचित नहीं होगा कि हिंदी ज्ञान-विज्ञान और प्रशासन में भी जनभाषा की तरह एक दिन अवश्य चमकेगी। यह आशा इसलिए भी जगती है कि वर्तमान तकनीकी-युग में हिंदी धीरे-धीरे अपनी जगह बना रही है।

अनौपचारिक रूप से हिंदी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। बड़ी संख्या में भारतीय अमेरिका, इंग्लैंड जैसे देशों में जा रहे हैं। वहां भारतीयों को आप में जोड़ने की भाषा हिंदी ही है, चाहे वे भारत

में कोई भी भाषा-भाषी हों। देश के के बाहर भारतीयों के बीच हिंदी ही जन-भाषा के रूप में प्रचलित है। मनोरंजन, फ़िल्म, सीरियल आदि में हिंदी का भविष्य अधिक स्पष्टता से उभर रहा है।

इंटरनेट और आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में हिंदी को प्रमुखता से देखा जा सकता है। कंप्यूटर, आई-पैड, मोबाइल जैसे संसाधनों में देवनागरी की उपलब्धता और बड़ी संख्या में लोगों द्वारा हिंदी-विकल्प का चयन हिंदी के भविष्य को आश्वस्त करता है। फेसबुक, ट्वीटर, व्हाट्स-एप आदि के माध्यम से संदेशों की आवाजाही हिंदी में सहजता से हो रही है। ब्लॉग, मेल, ई-बुक आदि अब हिंदी में तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। गूगल पर ज्ञान-विज्ञान की सामग्री बड़ी मात्रा में हिंदी में भी उपलब्ध है। टी.वी. के कुछ कार्यक्रम जो पहले अंग्रेजी के लिए जाने जाते थे, वे भी अब हिंदी में भी उपलब्ध हैं- जैसे- डिस्कवरी, हिस्ट्री, एनिमल प्लेनेट आदि।

कई विश्वविद्यालयों और संस्थाओं ने हिंदी के इस महत्व को समझा और अनुवाद, प्रयोजनमूलक हिंदी के पाठ्यक्रमों का निर्माण कर रहे हैं, ताकि कार्यालयीन हिंदी कामकाज के लिए आवश्यक विशेषज्ञ तैयार किए जा सकें। भूमंडलीकरण के कारण बाजार-व्यापार एक-दूसरे देश के निकट आ रहे हैं। परिणामतः हिंदी विज्ञापन के माध्यम से बाजार की भाषा बनती जा रही है। विदेशों में लगभग 153 विश्वविद्यालयों में हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाई जा रही है साथ ही भोपाल में अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना हुई है। विश्व हिंदी सम्मेलन के पहले आयोजन में लिए गए निर्णय के अनुसार वर्धा में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है, जिसमें केवल भारत के ही नहीं विदेशों के छात्र भी हिंदी में निपुणता अर्जित करते हैं। साहित्य के साथ अनुवाद, पत्रकारिता, रेडियो, फ़िल्म आदि विषयों में छात्र पारंगत हो रहे हैं। उत्साहजनक बात तो यह है कि अन्य तकनीकी क्षेत्रों की तरह हिंदी में विशेषज्ञता और विशिष्टता प्राप्त छात्रों का कैंपस चयन होने लगा है। रोजगार की दृष्टि से हिंदी की ओर अब देखा जाने लगा है।

यह निर्विवाद है कि जो भाषा आधुनिक उपकरणों, संसाधनों आदि में जितनी अधिक अपनी उपादेयता सिद्ध करेगी, वह अपना बहुमुखी विकास करेगी। इस दृष्टि से भविष्य की हिंदी के प्रति आशान्वित हुआ जा सकता है। विलंब से ही क्यों न कंप्यूटर में हिंदी ने अपनी जगह बना ली है। जयंत नारलीकर जैसे वैज्ञानिक मूल रूप से हिंदी-मराठी में विज्ञान विषयों पर लेख लिख रहे हैं। अंतरिक्ष विभाग, परमाणु ऊर्जा विभाग जैसे नितांत तकनीकी क्षेत्र में कुछ वैज्ञानिक मौलिक रूप से हिंदी में लिख रहे हैं। यह स्थिति यदि निरंतर बढ़ती जाती है, तो तमाम विसंगतियों, अवरोधों, उपेक्षाओं के बावजूद हिंदी का भविष्य और भविष्य की हिंदी अक्षुण्ण है।



हिंदी : वर्तमान और भविष्य

फणिभूषण दास

विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली तीन शीर्ष भाषाओं में हिंदी अपना स्थान रखती है और यह जानकर एक सामान्य हिंदी सेवक होने के नाते मुझे गर्व होता है। हिंदी अवश्य ही एक समृद्ध भाषा है जिसका भंडार अनेकों उत्कृष्ट उपन्यासों, कथा संग्रहों और काव्य संग्रहों से भरा पड़ा है किंतु उसमें विज्ञान और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान, विशेषकर स्वास्थ्य संबंधी विषयों पर साहित्य का खासा अभाव है और इसके कलेवर में यह कमी एक बड़ी विडंबना है जो इसके भविष्य के संबंध में चिंता उत्पन्न करती है। यह अभाव हिंदी को विश्वव्यापी भाषा बनने की संभावना में अवश्य ही प्रश्नचिह्न लगा देता है। इस अभाव को दूर करने की जिम्मेदारी हम सबों की है जिसे पूरा करने का हर संभव प्रयास करना अत्यंत आवश्यक है।

इस आलेख के माध्यम से भारत में हिंदी की वर्तमान दशा पर प्रकाश डालकर उसके भविष्य पर विचार करना आवश्यक समझा गया है। मैं एक हिंदी प्रेमी प्रवासी भारतीय हूं और अक्सर पर भारत जाता रहता हूं और वहां पर हिंदी की वर्तमान अवस्था देखकर मुझे बहुत कष्ट होता है और उसके भविष्य की चिंता मुझे होने लगती है। आज हिंदी का प्रचार-प्रसार विदेशों में तो अच्छी तरह से हो रहा है किंतु दुर्भाग्यवश भारत में ही इसका दायरा सिकुड़ता हुआ नजर आ रहा है। भारत के संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा, जिसे अब राजभाषा कहा जाने लगा है, का दर्जा प्राप्त है किंतु आजादी के सातवें दशक में भी इसे इस दर्जे से वंचित रखा गया है। भारत के सरकारी कार्यालयों में अब भी लगभग सारे काम अंग्रेजी में ही निपटाए जाते हैं और खानापूर्ति करने के लिए दस्तावेजों का अनुवाद हिंदी में कर दिया जाता है इसलिए अब हिंदी अनुवाद की भाषा बनती जा रही है। इसी तरह भारत में सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। भारत के संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से नौकरी पाने वालों के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक होता है और इसके लिए हिंदी का महत्व तो नहीं के बराबर है। आज भारत में इन स्थितियों से प्रभावित होकर अब ऐसे लोग भी, जो आर्थिक रूप से संपन्न नहीं हैं, अपने बच्चों को अंग्रेजी के माध्यम से स्कूलों में दाखिला करवाने लगे हैं। इन सबों से यही प्रतीत होता है कि भारत में हिंदी का महत्व घट गया है या घटता जा रहा है। आजादी के सातवें दशक में भी भारत के चिकित्सा महाविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है और सारी पाठ्य पुस्तकें भी अंग्रेजी में ही हैं। इसी कारण से समस्त भारतीय चिकित्सा जगत हिंदी के प्रति उदासीन है। उनकी उदासीनता को दूर करना कठिन है और इसे दूर

करने की दिशा में शिक्षा का माध्यम बनाने की दिशा में मैंने लघु प्रयास किया था जिसमें मैं पूरी तरह से असफल रहा। इस संबंध में मैं हिंदी में पाठ्य पुस्तकों लिखने के लिए तैयार था किंतु मुझे उसकी अनुमति नहीं मिली। इस संबंध में मैंने मेडिकल कॉसिल ऑफ इंडिया के अध्यक्ष/निदेशक से बात करने का प्रयास किया, किंतु व्यस्तता का हवाला देकर उन्होंने मुझे मिलने का समय नहीं दिया। इस प्रयास में भारत सरकार के तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री और स्वास्थ्य मंत्रालय के अधिकारियों से भी मैंने बात की जिसका नतीजा नकारात्मक प्रमाणित हुआ। मैंने इन असफलताओं को भुलाकर चिकित्सा विज्ञान से संबंधित विषयों पर साहित्य सृजन करना आरंभ कर दिया और अब तक मैं एक दर्जन पुस्तकों की रचना कर चुका हूं। हिंदी को अपना अधिकार पाने में भारत की वर्तमान सरकार से बहुत उम्मीदें हैं क्योंकि वर्तमान प्रधानमंत्री विदेशों में परंपरागत अंग्रेजी के स्थान पर अपना भाषण हिंदी में देने लगे हैं और वे राजकीय संवादों में भी हिंदी का ही व्यवहार करते हैं। इन संभावनाओं के विपरीत भारत के दक्षिणी राज्यों, विशेषकर तमिलनाडु और कर्नाटक में हिंदी का विरोध आज भी होता है। आजकल कर्नाटक में नामपटों में हिंदी को मिटाने का प्रयास आरंभ हो चुका है।

उपरोक्त हिंदी विरोधी स्थितियों के अलावा हिंदी के स्वरूप और इसकी छवि को बिगाड़ने में आज की तथाकथित हिंदी फिल्मों का भी योगदान मिल रहा है। जहां तक मुझे स्मरण है पहले हिंदी फिल्मों में अच्छी हिंदी हुआ करती थी जिससे हिंदी के प्रचार-प्रसार में इन हिंदी फिल्मों से बहुत सहायता मिली थी और हिंदी फिल्मों के प्रभाव से भारत के दक्षिणी भागों में हिंदी का अच्छा प्रचार हुआ था किंतु अब स्थिति बदल गयी है। आजकल भारत में बनने वाली अंग्रेजी नामों वाली तथा कथित हिंदी फिल्में हिंदी के स्वरूप/छवि को बिगाड़ने का काम कर रही है। आजकल के फिल्म निर्मातागण आर्थिक लाभ के लिए फिल्में तो हिंदी में बनाते हैं लेकिन वे अपनी फिल्मों का और उनमें काम करने वाले अभिनेताओं और अन्य कार्यकर्ताओं के नाम हिंदी में देने से कतराते हैं क्योंकि ऐसा करने में उन्हें शर्मिदगी होती है। इसीलिए इन फिल्मों का नाम अंग्रेजी में देकर उन्हें गर्व होता है क्योंकि वे एक भ्रामक धारणा से ग्रसित होते हैं जिसके अनुसार फिल्मों के हिंदीभाषी दर्शक प्रायः गंवार होते हैं इसलिए उन पर अंग्रेजी का धौंस पड़ता है। वैसे भी आजकल की इन तथाकथित हिंदी फिल्मों की हिंदी ठीक नहीं होती है जिसे हिंगलिश या हिंग्रेजी कहना उपयुक्त होगा क्योंकि इन फिल्मों में अंग्रेजी के विकृत शब्दों का बहुत व्यवहार होता है। इस स्थिति का निराकरण करने के लिए हिंदी भाषी दर्शकगण अगर ऐसी फिल्मों का बहिष्कार करने लगे तो इसका प्रभाव इन फिल्म निर्माताओं पर अवश्य पड़ेगा। हिंदी के स्वरूप/छवि को बिगाड़ने में हिंदी फिल्मों के अलावा हम सभी हिंदीभाषी भी एक बड़ी सीमा तक जिम्मेदार हैं। हम सभी आपस में या भित्रों/परिवार के सदस्यों के साथ और अन्य माहौल में विकृत हिंदी यानी मिलीजुली भाषा व्यवहार करते हैं। इस प्रकार जाने-अनजाने में एक विकृत भाषा, जिसे हिंगलिश या हिंग्रेजी कहना उपयुक्त होगा, को विकसित कर रहे हैं जिसमें अंग्रेजी के विभिन्न शब्दों का व्यवहार होता है। इस तरह हम लोग एक नयी विकृत भाषा यानी हिंगलिश/हिंग्रेजी को जन्म दे रहे हैं जैसे संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से खड़ी बोली/हिंदी की उत्पत्ति हुई थी। अब इसी तरह हिंगलिश/हिंग्रेजी के रूप में एक नयी भाषा की उत्पत्ति की बड़ी संभावना उत्पन्न हो गयी है।

आज हिंदी के स्वरूप/छवि को अक्षुण्ण रखने के लिए और इसकी उन्नति के लिए उपरोक्त

विभिन्न बाधाओं से निपटने की आवश्यकता हो गयी है। इसलिए हिंदी के उत्थान के पथ को प्रशस्त करने में सभी हिंदी विद्वानों/लेखकों और हिंदी प्रेमियों को जागरूक होकर हर संभव प्रयास करने की आवश्यकता हो गयी है और इसके लिए उन्हें सरकार पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं है। हिंदी को समृद्ध और संपन्न बनाकर इसे उत्थान के शिखर पर पहुंचाना हमारा पावन कर्तव्य है। हिंदी के उत्थान के लिए भारत के साथ विदेशों में भी बहुत काम हो रहा है। इर सबों के साथ हिंदी की प्रगति के पथ को अत्यधिक प्रशस्त करने में हर ओर से योगदान प्राप्त करने की आवश्यकता है। इस दिशा में भारत में तो काम हो ही रहा है साथ ही विदेशों में भी कई हिंदी संस्थाएं उल्लेखनीय काम कर रही हैं जिन्हें प्रोत्साहन और भरपूर समर्थन की आवश्यकता है। इस दिशा में विदेशों में संलग्न संस्थाओं में ‘अखिल विश्व हिंदी समिति’ (न्यूयार्क), ‘अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति’ एवं विलायत में ‘पुरवाई’ मुख्य हैं जिनके तत्वावधान में हिंदी की विभिन्न विधाओं पर साहित्य सृजन हो रहा है और उनके माध्यम से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है। उपरोक्त संस्थाओं में ‘अखिल विश्व हिंदी समिति’ (न्यूयार्क) के तत्वावधान में हिंदी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय काम हुए हैं जिनमें इसके संस्थापक- अध्यक्ष दिवंगत अशांतजी, दिवंगत वेदप्रकाश सिंह, वर्तमान अध्यक्ष डॉ. विजय कुमार मेहता, उपाध्यक्ष के रूप में खुद मैंने हिंदी की विभिन्न विधाओं पर साहित्य सृजन करके हिंदी को समृद्ध/संपन्न बनाने में अथक प्रयास किया है। इन सबों में डॉ. विजय कुमार मेहता ने महाकाव्यों, खंड काव्यों और अनेक काव्य संग्रहों की रचना करके हिंदी की बड़ी सेवा की है और मेरे द्वारा चिकित्सा विज्ञान से संबंधित विषयों पर लागभग एक दर्जन पुस्तकों की रचना करके हिंदी के कलेवर में मौजूद इस अभाव को पूरा करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार के साहित्य सृजन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते रहने के लिए इन लेखकों को प्रोत्साहन/समर्थन की आवश्यकता है और हिंदी को विश्वव्यापी भाषा बनाने की दिशा में इन लेखकों के साथ हम सभी हिंदीभाषियों को प्रयासरत रहने की आवश्यकता है ताकि हिंदी की गणना सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा के स्थान पर विश्व की तीन समृद्ध/संपन्न भाषाओं में होने लगे।



हिंदी का विश्वव्यापी परिप्रेक्ष्य

ओम निश्चल

किसी भी भाषा की इमारत एक दिन में खड़ी नहीं होती। इसके विकास में सदियों का समय लगता है। हिंदी भाषा का आज जो व्यापक विस्तार देश-देशांतर तक है, वह एक-दो दशक की कमाई नहीं है; उसके पीछे एक लंबी परंपरा और साधना छिपी है। हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास अतीत और आधुनिकता की लंबी यात्रा का प्रतिफल है।

हिंदी की बहुभाषिता और जन-संप्रेषणीयता इस बात से सिद्ध होती है कि वह आज भारत में ही नहीं, बल्कि पूर्वी एशिया के अनेक देशों में बोली व समझी जाती है। अमेरिका, रूस, चीन, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, बल्गारिया, जर्मनी और जापान आदि देशों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की सुव्यवस्थित सुविधाएं मौजूद हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सबसे अधिक प्रयोग की जाने वाली भाषाओं में हिंदी का स्थान विश्व की भाषाओं की तुलना में तीसरा है। भाषा के विकास की दृष्टि से अंग्रेजी भले ही अपने व्यापारिक संपर्कों के कारण अनेक देशों के बीच संपर्क-संप्रेषण का अनन्य माध्यम हो, परंतु हिंदी भारत जैसे बहुभाषी देश में जो जनभाषा है ही, विश्व के अनेक देशों में यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान का विशिष्ट माध्यम बनी है। यद्यपि अपने देश में भी हिंदी को शैक्षणिक और जीविकोपयोगी दृष्टि से अंग्रेजी के मुकाबले गरिमामयी दृष्टि से न देखने वालों की तादाद कम नहीं है तथापि भारत में हिंदी और भारतीय संस्कृति का अध्ययन करते विदेशी छात्रों को देखने पर इसकी महत्ता का परिचय मिलता है। वास्तव में हिंदी को सांप्रदायिक नजरिए से देखने की जो कुत्सित प्रवृत्ति भारत में पनपी है वह आतुरता की सीमा तक अंग्रेजी को समस्त ज्ञान भंडार और मानवीय विकास का स्रोत मान लेने के दुराग्रह के कारण है तथा अपनी ही भाषा के तिस्कार का विरल उदाहरण है; जबकि भारत के बाहर मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद, मलेशिया, थाईलैंड, कीनिया आदि देशों में हिंदी को मातृभाषा का-सा सम्मान प्राप्त है। भारत भूमि देव भूमि मानी जाती है, इस मिथ को अटूट धारणा और थाती के रूप में संजोए सूरीनाम, फिजी और मॉरीशस जैसे देश इस बात का परिचायक है कि देश-देशांतर के पार पहुंचकर भी मनुष्य अपनी और जातीय पहचान नहीं भूलता। इन देशों में आये भारतीय मूल के निवासियों ने सदियों बाद भी अपनी संस्कृति, जातीय पहचान और विरासत में मिली भाषा को व्यवहार में जीवंत बनाए रखा है। सूरीनाम के लिए तो यह कहा जाता है कि यह एक ऐसा देश है जहां सङ्क से लेकर संसद तक, सामान्य जन से लेकर राष्ट्रपति तक हिंदी का प्रयोग दैनंदिन जीवन में करते हैं और यह क्रम आज एक सदी से भी अधिक समय से निर्बाध गति से चल रहा है।

हिंदी की विश्वव्यापकता

किसी भी भाषा की उर्वरता और व्यापकता को भूगोल की सीमा में बांधकर नहीं रखा जा सकता। बहते हुए नीर की तरह भाषा अपना मार्ग तलाश लेती है। हिंदी सदियों से विकास पाती हुई आज देश के भीतर तथा देश की चौहड़ी से परे विश्व के अनेक देशों में अपनी पहचान और गरिमामयी छवि के साथ उपस्थित है। शताब्दियों पहले दुनिया के अनेक देशों में भारत मूल के लोग गए और वहीं बसते गए। इस तरह भारत की भाषा व संस्कृति इन देशों में आज भी अपने अक्षुण्ण प्रभाव के साथ कायम है। हिंदी यहां जन सामान्य के व्यवहार की भाषा है। इसके अलावा इंग्लैंड, रूस, चीन, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, बल्गारिया, अमेरिका, जर्मनी और जापान के विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन एवं शोध की सुविधाएं मौजूद हैं। अनेक देशों में हिंदी की पत्रिकाएं भी निकलती हैं जो समूचे विश्व परिदृश्य में हिंदी की लोकप्रियता का परिचायक है। हिंदी को विश्वव्यापी प्रचार दिलाने में विश्व हिंदी सम्मेलनों की भी महती भूमिका है। इन सम्मेलनों में दुनिया भर के अनेक देशों के प्रतिनिधियों का एक मंच, एक प्रांगण और एक समारोह में शामिल होकर हिंदी के प्रचार-प्रसार के मुद्दों पर विचार-विमर्श करना हिंदी के उभरते हुए उज्ज्वल भविष्य का परिचायक है।

भारत सांस्कृतिक विविधताओं का देश है। देश के अनेक भू-भाग में अनेक भाषाएं बोली जाती हैं। स्वरूप भिन्नता के कारण ये भाषाएं भले ही बाहर से पृथक अस्तित्व रखती प्रतीत होती हों परंतु इनकी आंतरिक चेतना, संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं से अनुप्राणित है। संस्कृत न केवल हिंदी बल्कि सभी भारतीय भाषाओं की जननी है। संस्कृत के तत्त्वों को ही आत्मसात् कर हिंदी व्यावहारिक प्रयोग के वर्तमान विशद धरातल तक पहुंची है। यह किसी प्रदेश-प्रांत की भाषा नहीं है। यह संपूर्ण भारत की भाषा है। कन्याकुमारी से हिमालय तक देश की जनता ने इसे एक स्वर से राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया है। असम, बंगाल, उड़ीसा, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, सौराष्ट्र से लेकर सुदूर हिमालय की तलहटी तक सभी काल में नए विचारों के प्रवर्तन और प्रसार की यह भाषा रही है। हिंदी देश की भाषाओं के बीच आज एक ऐसा 'आईना' बन गयी है, जिसमें समूचे भारत की सांस्कृतिक छवि प्रतिबिंबित होती है। आज विश्व में हिंदी को जो मान-सम्मान मिल रहा है, या उसके अध्ययन-अनुसंधान के क्षेत्र विकसित हो रहे हैं, वह इस कारण है कि हिंदी भारत को जानने-समझने, भारतीय संस्कृति, वाइमय, दर्शन, व अध्यात्म के अवगाहन का एक मात्र सशक्त माध्यम है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि यदि अंग्रेज और मुसलमान शासकों के शासनकाल में हमारी संस्कृति को छिन्न-भिन्न कर नष्ट कर गुलामी की भाषा थोपने के नियोजित घड़यांत्र नहीं किए गए होते तो हिंदी और भारतीय भाषाएं विश्व में सिरमौर होती। इस तथ्य का प्रमाण ग्रियर्सन के 'Linguistic Survey of India' के पहले खंड में दी गयी यह टिप्पणी है कि 'हिंदी के पास देश शब्दों का विशाल भंडार है और द सूक्ष्म विचार व्यक्त करने के लिए सम्यक् शब्द तंत्र है। हिंदी में ऐसा शब्द भंडार और ऐसी अभिव्यंजना शक्ति है जो अंग्रेजी से घटकर नहीं है।'

यही नहीं 1806 में दिल्ली के सहायक रेजीडेंट सी.टी. मेटकाफ ने जे.बी. गिलक्राइस्ट को लिखा था कि 'हिंदुस्तानी (हिंदी) ही एक ऐसी जबान है जो आम तौर से उपयोगी साबित होती है और मेरी समझ में संसार की किसी भाषा की अपेक्षा उसका व्यवहार बहुत बड़े पैमाने पर होता है।' यह पत्र गिलक्राइस्ट की 'A vocabulary, Hindustani & English-English & Hindustani'

शीर्षक कृति में उद्धृत है। हालांकि ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण में हिंदी भाषियों की संख्या की गणना करने में बिहार के मैथिली भाषियों की हिंदी को सम्मिलित नहीं किया गया है तथा उसे पूर्वी हिंदी से पृथक बिहारी भाषा के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इसी तरह 1958 में प्रकाशित मारिओ पेर्इ नामक विद्वान के 'Language for Everybody' शीर्षक ग्रंथ में हिंदुस्तानी अर्थात् हिंदी बोलने वालों की संख्या 16 करोड़ दर्शायी गयी है। इसी पुस्तक में पेर्इ द्वारा दिए गए एक भाषिक मानचित्र में बिहारी को हिंदी से पृथक भाषा के रूप में दिखाया गया है। यह विडंबना ही है कि आज भी हिंदी विश्व में तीसरे दर्जे पर है। जबकि दोनों अंग्रेज भाषाविदों ने यदि हिंदीभाषियों में बिहार के भोजपुरी व मैथिली भाषियों, मॉरीशस, फिजी, त्रिनिदाद, सूरीनाम, नेपाल, पाकिस्तान तथा अन्य देशों में बसे हिंदी-भाषियों की तादाद भी शामिल की होती तो निश्चित रूप से हिंदी भाषियों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से ज्यादा निकलती। कहना न होगा कि आज यदि ईमानदारी से अंतरराष्ट्रीय फलक पर हिंदी भाषियों की संख्या का ताजा सर्वेक्षण कराया जाए तो निश्चित रूप से हिंदीभाषियों की संख्या अंग्रेजी से ज्यादा निकलेगी। फिर भी संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी का स्थान नहीं है। अब तक हुए भाषा सर्वेक्षणों में हिंदीभाषियों से मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानीभाषियों को पृथक दिखाया जाता रहा है। यही कारण है कि आज भी हिंदी अंग्रेजी से अधिक बोली जाने वाली भाषा होने के बावजूद विश्व के तीसरे स्थान पर है। कहना न होगा कि ये सर्वेक्षण कई दृष्टियों से अधूरे तथा पूर्वग्रहों से ग्रस्त हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के बावजूद हिंदी की महत्ता असंदिग्ध है। उसकी विश्वव्यापकता पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता। शिक्षा, राजनीति, कारोबार, संपर्क-संबंध तथा वैचारिक संप्रेषण के माध्यम के रूप में हिंदी विश्व के विशद प्रागंण में अपनी महत्ता के साथ विद्यमान है।

विभिन्न देशों में हिंदी

विश्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार का एक लंबा इतिहास है। हिंदी दुनिया के देशों में जिस रूप में फैली और फली-फूली है, उसका बड़ा श्रेय उन प्रवासी भारतीयों को है जिन्होंने अपनी मातृभाषा को विदेशी भूमि पर भी जीवंत बनाए रखा है। इसका श्रेय उन भारतीय मूल के विदेशी नागरिकों को भी है जो जीविका की तलाश में मजदूरी या कारोबार के लिए विदेशों में गए और वहाँ के होकर रह गए; परंतु वे अपने देश, जमीन की भाषा व संस्कृति नहीं भूले; हिंदी की महत्ता को घटने, तथा विश्व की दृष्टि में विस्मृत नहीं होने दिया। यही कारण है कि विरोध के बातावरण में भी हिंदी अबाध गति से प्रवाहमान है। हिंदी का प्रचार-प्रसार विदेशों में प्रायः तीन रूपों में हुआ है, हो रहा है। पहले वर्ग में वे देश आते हैं जहां भारतीय मूल के निवासियों की संख्या बहुतायत में है। इनकी मातृभाषा हिंदी होने के कारण परस्पर संपर्क और बातचीत में ये हिंदी का प्रयोग ही करते रहे हैं। ऐसे देशों में फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना, नेपाल, बर्मा, श्रीलंका, भूटान, थाईलैंड, मलेशिया, दक्षिण अफ्रीका, केन्या, इंडोनेशिया तथा सिंगापुर आदि देश आते हैं। दूसरे वर्ग में ऐसे देश आते हैं जहां भारतीय प्रवासी अधिकांश संख्या में रहते हैं और जिनके हमारे देश से सौहार्दपूर्ण राजनैतिक, सांस्कृतिक संबंध हैं। इन देशों में शैक्षिक स्तर पर भी हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्थाएँ हैं। इनमें अमेरिका, इंग्लैंड, रूस, फ्रांस, इटली, चेकोस्लोवाकिया, बेल्जियम, चीन, जापान, मेक्सिको, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि देश आते हैं।

विश्व में हिंदी एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार का तीसरा सबसे प्रभावी माध्यम है विदेशों में स्थापित भारतीय दूतावास तथा अन्य संस्थाएं। दूतावासों में भारतीय वाड़मय की सभी भाषाओं की पुस्तकों का अच्छा संग्रह होता है तथा इनके द्वारा समय-समय पर किए जाने वाले आयोजनों में भारतीय संस्कृति को हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के जरिए प्रतिबिंबित किया जाता है। इन दूतावासों पर विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का दायित्व भी है ताकि भारत की राजभाषा के रूप में हिंदी को पर्याप्त प्रोत्साहन एवं आधार मिले।

विदेशों में मॉरीशस ऐसा देश है जिसका हिंदी तथा हिंदुस्तान से संबंध सदियों पुराना है। आज से लगभग डेढ़ सदी पहले यानी 1834 से 1915 तक बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के भोजपुरी-भाषी श्रमिकों का जत्था मजदूरी के लिए मॉरीशस गया था जो वहाँ का होकर रह गया। इन मजदूर भारतीय नागरिकों ने मॉरीशस में अपने पुरखों की भाषा, संस्कृति एवं रीति-रिवाजों को जीवंत बनाए रखा। ये अपने देश से विदा होते समय अपने साथ रामचरितमानस एवं गीता जैसी धार्मिक पुस्तकें भी लेते गए थे। मॉरीशस में हिंदी का प्रचार-प्रसार इन्हीं भारतीय मजदूरों ने किया। धीरे-धीरे आज मॉरीशस में हिंदी की जड़ें इतनी गहरी होती गयी हैं कि उसे इस देश की सांस्कृतिक विरासत से काटकर विलग नहीं किया जा सकता। मॉरीशस में घर-घर में रामायण, हनुमान चालीसा, गीता प्रेस की धार्मिक पुस्तकें पढ़ी जाती हैं। हिंदी पत्र-पत्रिकाएं भी यहां पढ़ने के लिए सुलभ हैं। मॉरीशस में आज भी पूर्वी उत्तर प्रदेश का माहौल जीवंत है। मॉरीशस में आजादी के बाद से लगभग 200 पुस्तकें हिंदी में लिखी गयी हैं। यहां से अभिमन्यु अनंत, सोमदत्त बखोरी, रामदेव धुरंधर, प्रो. विष्णुदयाल, मुनीश्वरलाल चिंतामणि एवं प्रह्लाद रामशरण जैसे हिंदी के बड़े लेखक उभरे हैं जो हिंदी साहित्य में अपने कृतित्व से अलग ही पहचाने जाते हैं। यहां आर्य समाज ने हिंदी को फैलाने में काफी मदद की। आर्य समाजी हिंदी को आर्यभाषा कहा करते थे। यहां से 1911 में इन्होंने ‘हिंदुस्तानी’ अखबार भी निकाला। आर्य समाज के माध्यम से यहां वैदिक संस्कृति का प्रचार आरंभ हुआ। अनेक आर्य समाजी विद्वानों ने हिंदी के प्रसार में अहम भूमिका निभाई। धीरे-धीरे यहां कई संस्थाओं का उदय हुआ। यहां से तालीम के लिए लोग विदेश गए तथा मॉरीशस लौट कर नए मॉरीशस के निर्माण में अहम भूमिका निभाई। इनमें पंडित काशी नाथ किष्टो, पं. रामावध शर्मा, वैरिस्टर राम खेलावन बुधन, डॉ. शिवसागर रामगुलाम, आदि उल्लेखनीय हैं। यहां गीता मंडल व हिंदू महासभा की स्थापना से भी हिंदी पढ़ने का मार्ग प्रशस्त हुआ। 1925 में भारत से पढ़कर लौटे वेणिमाधव सतीराम भी वर्षों तक रेडियो पर वैदिक वाणी का प्रसारण करते रहे। हिंदी शिक्षण की दिशा में मोहनलाल मोहित के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने ‘आर्योदय’ नामक अखबार भी निकाला। 1935 तक यहां आर्य समाज की 75 शाखाएं खुल गयीं जहां हिंदी की पढ़ाई होती थी। 1926 में यहां हिंदी प्रचारिणी सभा का भी गठन हुआ जिसने हिंदी की प्रारंभिक परीक्षाओं का बीड़ा उठाया। इसके माध्यम से हजारों छात्रों ने परीक्षाएं दीं और हिंदी सीखी।

हिंदी का यहां की राजनीति से भी गहरा वास्ता रहा है। 1948 के पहले तक जहां केवल 11 हजार लोगों को मताधिकार था, आर्य समाज व स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से 1948 के आम चुनाव में 71 हजार लोगों ने मतदान किया। इससे भारतीय मूल के लोग चुनाव में विजयी हुए। डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने मॉरीशस की बागडोर संभाली जो भारतीय मूल के थे। हिंदी के प्रचार प्रसार में प्रो. रामप्रकाश के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता। मिनी भारत कहे जाने वाले मॉरीशस

में हिंदी के पठन पाठन में लेखन का मार्ग भी प्रशस्त किया। उनके ही मार्गदर्शन के परिणामस्वरूप उनके शिष्यों में अभिमन्यु अनत, राम देव धुरंधर, पूजानंद नेमा, प्रह्लाद रामशरण, राज हीरामन, इंद्रदेव भोला, ब्रजेंद्र कुमार भगत, सोमदेव बखोरी, सत्यदेव प्रीतम आदि बहुतेरे लेखक उभरे जिनकी हिंदी जगत में पहचान है। अभिमन्यु अनत हिंदी के अनेक पुरस्कारों से समावृत हैं तो रामदेव धुरंधर को इफको श्रीलाल शुक्ल स्मृति सम्मान से विभूषित किया गया है। आजादी के पश्चात भारत के सहयोग से मॉरीशस में हिंदी का अनुकूल वातावरण बनना शुरू हुआ। डॉ. शिवसागर रामगुलाम के प्रधानमंत्री बनने के बाद सभी विद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई शुरू हुई। भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी अपने कार्यकाल में दो बार मॉरीशस गई और वहां महात्मा गांधी संस्थान की स्थापना की। इस संस्थान के जरिए हिंदी भारतीय संस्कृति व भारतीय भाषाओं के शिक्षण को अहमियत दी गयी। यहां से बसंत जैसी हिंदी की पत्रिका निकलती रही है जिसका साहित्यिक हल्के में सम्मान रहा है।

विश्व हिंदी सम्मेलन : प्रचार-प्रसार का अंतरराष्ट्रीय मंच

विश्व हिंदी सम्मेलनों ने देश-विदेश में हिंदी की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। 1975 में पहले विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन नागपुर में, दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन 1976 में मॉरीशस में तथा तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन 1983 में दिल्ली में तथा 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन भारत में भोपाल में सितंबर 2015 में किया गया था। अब तक 10 विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं तथा 11वां विश्व हिंदी सम्मेलन पुनः मॉरीशस में आयोजित किया गया है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा का इन आयोजनों में बड़ा हाथ है। इन सम्मेलनों में मॉरीशस, फ़िजी, रूस, पश्चिम जर्मनी, त्रिनिदाद, अमेरिका, थाईलैंड, जापान, कनाडा, चेकोस्लोवाकिया, श्रीलंका, गुयाना, सूरीनाम आदि देशों के प्रतिनिधि उपस्थित रहे हैं। सम्मेलन में अनेक अन्य प्रस्तावों के साथ जिस प्रमुख मुद्दे को प्राथमिकता से उठाया गया, वह था संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी को मान्यता देने के लिए उठाये जाने वाले कदम। अन्य प्रस्ताव थे कि दूतावासों के कर्मचारियों को हिंदी का पर्याप्त ज्ञान दिया जाना चाहिए ताकि वे विदेशों में भारत की बेहतर छवि प्रदर्शित कर सकें। विदेशी अध्ययन केंद्रों को भारत से ऐसी पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध करायी जाएं जिनसे भाषा ज्ञान के अलावा भारतीय संस्कृति और जन-जीवन की झलक भी मिले। विदेशों में हिंदी के सूचना केंद्र बनाए जाएं जो हिंदी के विभिन्न पक्षों पर प्रामाणिक जानकारी दे सकें। विदेशों में हिंदी के योग्य शिक्षक भेजे जाने की व्यवस्था हो। भारत में शिक्षा व दैनिक, व्यवहार में हिंदी का व्यापक रूप से प्रयोग हो ताकि स्वाभाविक रूप से विदेश में भी हिंदी का उपयुक्त वातावरण पैदा हो। मॉरीशस में हुआ सम्मेलन भारत से बाहर आयोजित पहला सम्मेलन था जहां बड़ी संख्या में विश्व के अनेक देशों के हिंदी विद्वान पधारे थे। दिल्ली व भोपाल का सम्मेलन सर्वाधिक विराट था। भारत की राजधानी दिल्ली व भोपाल के चौक-चौराहे कुछ दिनों के लिए पूरी तौर पर हिंदीमय हो उठे थे। इस बीच विश्व हिंदी सम्मेलनों की एक बड़ी उपलब्धि मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना है जो कि 2008 से काम करना शुरू कर चुका है।

हिंदी शब्दों की विश्वव्यापकता

हिंदी के विकास का सफर बहुआयामी है। भाषा वही विकास पाती है जिसमें संग्रहण की क्षमता होती है। अंग्रेजी यदि आज समृद्ध भाषा के रूप में दिखायी पड़ती है तो इसका कारण यह है कि

इसने लैटिन, ग्रीक और अन्य भाषाओं से अपने शब्द-भंडार को बढ़ाया है। अंग्रेजी साहित्यकारों की कृतियों में अनेक विदेशी शब्द मिलते हैं। हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अभी जो समस्या है, वह यह कि किसी भी भाषा में दूसरी भाषाओं के शब्द लेखन प्रवाह या बोलचाल में आ जाते हैं तो भाषा के शुद्ध प्रयोग के हिमायतियों के लिए यह असह्य हो उठता है। हिंदी के शुद्ध प्रयोग के समर्थक इसी बद्धमूल धारणा के चलते हिंदी में छिटके-बिखरे उद्धू, फारसी, अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के आम-फहम शब्दों के प्रयोग का भी विरोध करते हैं। थोड़ी-सी ठीक भाषा बोलने पर लोग कहने लगते हैं, ‘आप तो ‘शुद्ध हिंदी’ बोल रहे हैं।’ अंग्रेजी बोलने पर कोई यह नहीं कहता कि आप शुद्ध अंग्रेजी बोल रहे हैं, जबकि यह पाया गया है कि अंग्रेजी में विदेशी शब्दों की संख्या लगभग 80 प्रतिशत है जिनमें स्कैडेनेवियन, फ्रैंच और लैटिन भाषाओं के शब्दों की संख्या सर्वाधिक है। इस संदर्भ में हम हिंदी शब्दों की आवश्यकता पर विचार करें तो पाते हैं कि एशियाई भाषाओं में भारतीय भाषाओं तथा विशेषकर हिंदी शब्दों की संख्या सर्वाधिक है क्योंकि हिंदी केवल भारत की ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, पश्चिमी एशिया, उत्तर पूर्व अफ्रीका के व्यापारिक केंद्रों की सार्वभाषिक भाषा रही है तथा अंग्रेजी भाषियों के लिए ग्राह्य भी रही है। एक अनुमान के मुताबिक ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में हिंदी भाषा के मिलने वाले शब्दों की संख्या लगभग तीन हजार है। इन शब्दों का समावेशन अंग्रेजी शब्द रचना और भाषा विज्ञान की अपनी विशिष्ट व्यवस्था के अनुसार हुआ है। उदाहरण के लिए, हिंदी और अंग्रेजी में प्रयुक्त अलमारी (Almirah) और तूफान (Typhoon) शब्द क्रमशः पुर्तगाली और अरबी भाषाओं के हैं। अंग्रेजी का ‘Near’ शब्द अवधी और भोजपुरी में प्रचलित ‘नियर’ शब्द से मिलता-जुलता है। इनके अर्थ में समानता संयोग मात्र है। परंतु बनियान, डाक, पैसा, तांगा, बरामदा जैसे शब्द हिंदी से अंग्रेजी में आगत हैं।

शब्दों के आदान-प्रदान में व्यापारिक संपर्कों की भी खासी भूमिका रही है। ईरान, यूरोप, अरब, चीन तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से भारत का व्यापारिक संबंध बहुत पुराना रहा है। कहते हैं, अरबों के उदय से पहले व्यापार के समुद्री मार्गों पर भारतीयों का एकाधिकार था। वे नावों में समान लादकर इन देशों में जाते थे तथा अनेक जगहों पर बस भी जाते थे। इनके जरिए हिंदी व भारतीय बोलचाल के शब्द भी उपर्युक्त देशों तक फैले। यहां आए यात्रियों तथा लेखकों हेरोडोटस, मेगस्थनीज, प्लिटी आदि ने भारत के बारे में काफी कुछ लिखा है। उनके आलेखों में अनेक भारतीय तथा बोलचाल के शब्द, पदार्थों के नाम इत्यादि प्रयुक्त हुए हैं। इनके माध्यम से भारतीय शब्द ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी तथा यूरोप की अन्य भाषाओं में पहुंचे हैं। अरबों ने भारत पर समुद्री हमले किए तथा पश्चिमी तट पर बस्तियां बसायी और हिंद महासागर का सारा व्यापार अपने हाथों में केंद्रित कर लिया। इस तरह व्यापार के साथ-साथ वे भारतीय समाज में व्यवहृत शब्दों के प्रसारक भी बने। भार, बनिया, बाजार, बैंगन, जोगी, खिचड़ी, काजी, किमखाब आदि शब्द अरबों ने ही दक्षिण पूर्व एशिया तथा यूरोप के देशों में फैलाए। पुर्तगालियों के भी यहां व्यापार के लिए पहुंचने का परिणाम यह हुआ कि यहां हिंदी मिश्रित ‘इंडोपुर्तगीज’ बोली का विकास हुआ। इस बोली के माध्यम से पालकी, मंत्री, मानसून, तूफान, कढ़ी, छाप, कंधी, नवाब तथा खोपड़ा आदि अनेक शब्द यूरोप की भाषाओं में पहुंचे। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ ही अंग्रेजी के पांच जमने लगे थे। कंपनी अधिकारियों के भारतीय माहौल में रहने का प्रभाव यह पड़ा कि वे इंग्लैंड के प्रधानमंत्री एडमंड वर्क को जो भी

भारत विषयक पत्र लिखते थे, उसमें भारतीय शब्दों का बाहुल्य होता था। एक बार तो ऐसे किसी पत्र को प्रधानमंत्री ने यह कहकर पटक दिया था कि इसमें भारतीय शब्दों के बाहुल्य के कारण यह संसद सदस्यों के लिए बोधगम्य नहीं है। चूंकि अंग्रेजी का ध्येय सत्ता पर काबिज रहने के साथ भारत के व्यापारिक स्रोतों पर भी अधिकार बनाए रखना था, अतः व्यापार संबंधी शब्दावली का अंग्रेजी में प्रचुर संख्या में समावेश हुआ।

इन शब्दों में छिंट (chint), पंच (chint), खाट (Cot), बंगला (Bunglow), धोती (Dhoti), पगड़ी (Puggaree), घी (Ghee), मसक (Mussuck), डोली (Doolie), करोड़ (Crore), लाख (lac&lakh), पैसा (Pice), चौकी (Chowky), कच्चा (Kutcha), पक्का (Pucka), दरबार (Durbar), कचहरी (Cutcherry), घाट (Ghat), आदि प्रमुख हैं। अंग्रेजी की राजनीतिक गतिविधियां भारत में बढ़ने के साथ अंग्रेजी में हिंदी के राजनीतिक, प्रशासनिक तथा सेना संबंधी शब्दों की संख्या बढ़ती गयी। अंग्रेजों के पूर्व चूंकि यहां मुगल शासक सत्ता में थे, अतः अंग्रेजी में फारसी, अरबी के शब्द भी बहुतायत में शामिल हुए। जैसे सुलतान (Sultan), हाकिम (Hakim), हमाम (Hammam), रिसालदार (Ressaldar), निजाम (Nizam), मुंशी (Moonshee), बाबू (Baboo), जूट (Jute), जंगल (Jungle), डैकैत (Dacoit), ठग (Thug), लुट (loot), पायजामा (Pyjama), सिपाही (Sepoy), चटनी (Chutney), चिक (Chik), जनाना (Zenana), पर्दा (Purdah), कारवां (Carvan), मिर्जा (Mirza), कहवा (Coffee), आदि।

भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद अंग्रेजों का ध्यान इस देश की सांस्कृतिक संपदा, धर्म, दर्शन व साहित्य की ओर गया। इस दिशा में अनेक यूरोपीय विद्वानों विलियम जोन्स, गेटे, श्लेगल, रुडोल्फ राथ, मैक्समूलर, मैकडॉनल, विल्सन तथा मोनियर विलियम्स आदि ने महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। जर्मन विद्वान मैक्समूलर की 'ईंडिया व्हाट कैन इट टीच अस' कृति की सराहना आज भी की जाती है। अंग्रेजी में हुए आध्यात्मिक अनुसंधानों के कारण आत्मा, अवतार, देव, असुर, अविधा, भक्ति, निर्वाण, स्तूप, मंत्र, तंत्र, योग, माया, कर्म, स्वास्तिक, वेद, बुद्ध, शंख, मठ, तीर्थ, यज्ञोपवीत आदि शब्द ज्यों के त्यों अंग्रेजी में लिए गए। आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता के लिए चलाए गए आंदोलन के दौरान स्वराज, सत्याग्रह, स्वदेशी, गांधीवाद, खदर, हड्डताल, धरना, जिन्दाबाद, अहिंसा जैसे शब्द अंग्रेजी में अपनाये गए। अंग्रेजी में हिंदी के शब्द कई स्रोतों से पहुंचे हैं। इनकी संख्या हजारों में है। आज इन शब्दों के मूल स्रोतों का निश्चित रूप से पता लगा पाना भी कठिन है। परंतु प्रचलन के लिहाज से इनमें से कम शब्द ही अंग्रेजी की स्थायी शब्दावली का अंग बन सके हैं। ज्यादातर एक विशिष्ट कालावधि के बाद प्रचलन में नहीं रहे तो भी हिंदी, फारसी, अरबी व अन्य भाषाओं से हिंदी तथा तदनंतर अंग्रेजी आगत में शब्दों की संख्या काफी है जिन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी

हिंदी के इस विश्वव्यापी फलक के बावजूद यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा नहीं है। 1947 में विश्व शांति बनाए रखने के उद्देश्य से स्थापित संयुक्त राष्ट्रसंघ की संप्रति छह भाषाएं हैं। फ्रांसीसी, अंग्रेजी, स्पानी, रूसी, चीनी तथा अरबी। इस भाषाओं में हिंदी के शामिल न होने का कारण चाहे जो हो, परन्तु यह स्पष्ट तौर पर विश्व की तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा की उपेक्षा है।

जो भाषाएं यहां सम्मिलित हैं, उनमें या तो उनके बोलने वालों की संख्या अधिक है या वे किसी महाशक्ति की भाषाएं हैं। हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ के मंच पर लाने की कोशिशें एकाधिक बार हुई हैं परन्तु किसी दृढ़ इच्छा के अभाव में यह मुहिम सफल नहीं हुई है। हिंदुस्तान की गुटनिरपेक्ष देशों के मध्य एक अग्रणी भूमिका रही है तथा दुनिया के विकासशील देशों के मध्य भारत की आवाज अलग से पहचानी जाती है। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच पर विश्व के इस सबसे बड़े लोकतंत्र की राष्ट्रभाषा की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

बेहतर भविष्य की ओर

विश्व में हिंदी की वर्तमान स्थिति यह दर्शाती है कि यह भाषा भारत के ही निवासियों की न होकर उन हजारों लाखों प्रवासी भारतीयों एवं विदेशियों की भी है जो किसी न किसी उद्देश्य से इसे व्यवहार में लाते हैं। परंतु एक सशक्त विश्व भाषा के रूप में हिंदी के विस्तार की परिकल्पना तभी साकार होगी जब इसका सम्मान स्वयं भारत भूमि पर होगा। जब भारत के सभी प्रदेश अंग्रेजी को इसके हितों के आड़े नहीं आने देंगे तथा अपनी राज्य भाषाओं को इसकी सहोदरा मानते हुए दोनों के सम्यक विकास के लिए प्रयत्नशील होंगे। यह संभव हो सकता है, यदि अंग्रेजी हटाने के लिए सभी भारतीय, सभी प्रदेश एकजुट होकर आगे आएं तथा अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारतीय संसद के गौरव की रक्षा करते हुए तथा संसद-सदस्य तथा राजनयिक हिंदी में ही संभाषण करें। देश की 80 करोड़ आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाले राजनीतिज्ञों को यह समझना ही होगा कि जब तक शिक्षा व्यवस्था व शासन तंत्र से अंग्रेजी केंचुल को उतार कर फेंका नहीं जाता तथा भारतीय भाषाओं व हिंदी को उनके गौरव के साथ उभरने नहीं दिया जाता, समाजवाद का स्वप्न एक उबाऊ नारे की तरह अप्रासांगिक रहेगा। हिंदी को दुनिया के देशों में मान-सम्मान दिलाने के लिए एक बार भारतीयों को इस यक्ष प्रश्न का उत्तर देना ही होगा कि आखिर किस राष्ट्रवाद के स्वप्न की आकांक्षा उन्हें अंग्रेजी उपनिवेशवाद की ओर पुनः ढकेल रही है। विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित नए संकल्पों के अनुपालन से विश्व की भाषाओं के मध्य हिंदी की अपनी वैश्विक पहचान पुख्ता होगी, इसमें सदैह नहीं।



वैशिवक हिंदी का भविष्य

पुष्पिता अवस्थी

‘भाषा’ सजल हार्दिकता और सजल चेतना की सजग संवाहिका है। धारणाओं के सृजन और विध्वंस में इसकी सक्रिय भूमिका रहती है जो व्यक्ति के ज्ञान और विवेक की सचेतन शक्तियों को अनवरत सम्मोहित करती है। इसलिए ‘भाषा’ सम्मोहन शक्ति का पर्याय भी है। ‘भाषा’ जाने और अनजाने, मन तथा मस्तिष्क में अपना तरल और आर्द्र प्रभाव छोड़ती रहती है। इसकी सघन अनुभूति प्रायः विदेश प्रवास के दौरान होती है।

मातृभाषा में मातृसंस्कृति के साथ-साथ मातृभूमि की सोंधी संकल्पमयी सुगंध भी अनुस्यूत रहती है। उसी तरह राष्ट्र भाषा में राष्ट्र की छवि प्रतिबिंबित होती है। वैशिवक हिंदी भाषा के परिदृश्य में यह सत्य मार्मिकता के साथ उद्घाटित होती है। विदेश की परायी धरती में अपनी राष्ट्रभाषा की गूंज संवाद के अवसरों पर अनुभव होता है। उस भाषा में अपनी धरती का सोंधापन और संस्कृति की आत्मीयता मानस में तरंगित होते हुए अनुभव होती है इसलिए विदेश में अपने देश का अजनबी भी हिंदी बोलते ही अपना और अपने वतन का अनुभव होने लगता है। भाषा में पराए व्यक्ति से भी नाभिनाल आबद्ध करने की विलक्षण शक्ति होती है इसलिए विदेशों में अपनी संस्कृति और भाषा के अनेकानेक मंचीय और उत्सवी संगठन बन जाते हैं जो विदेश प्रवास के सूनेपन और सन्नाटे को तिरोहित करते रहते हैं।

वस्तुतः भाषा जनमानस की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है तो बोलियां, जन-मन की संपर्क और संबंधों की शक्ति का अद्भुत स्रोत है। जन-समाज की सांस्कृतिक एकता से ही विशिष्ट और वैशिष्ट्य पूर्ण समाज बनता है। किसी भी राष्ट्र की भाषा-व्यक्तित्व के दो प्रमुख आधार हैं। प्रथम भाषा जो राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित होते हुए देश की अस्मिता का मूल होती है और दूसरी वहां के जनपदों की लोकभाषाएं जिनमें आम जनजीवन की वाणी होती है जिसमें उनकी लोकसंस्कृति की धड़कनें सुनाई देती हैं।

राष्ट्रभाषा, समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। विश्व स्तर पर हिंदी भाषा अपना यह दायित्व बखूबी निभा रही है। भारतवर्षियों और प्रवासी भारतीयों के लिए हिंदी भाषा उनकी अपनी सांस्कृतिक भाषा है उनके घर, मंदिर, मस्जिद, दुकानें और रेस्तरां आदि भारतीय संस्कृति से सुसज्जित हैं तो उनके मन-प्राण भारतीयता की शक्ति से समृद्ध हैं। हिंदी भाषा, विदेशों में बसे प्रवासी भारतवंशी और भारतीयों के हृदय की हथेली है जिस पर धर्म, दर्शन और भारतीय संस्कृति की रेखाएं जीवन का सत्य बनकर उभरती हैं।

भारतीय संस्कृति हिंदी महासागर है विश्व की अनेकानेक संस्कृतियां इसमें समाहित हो गयी हैं। अनेकानेक धर्मों, सभ्यताओं और संस्कृतियों को अपने में समेटे हुए भारतीय संस्कृति हिंदी भाषा में अपनी निजता के साथ हिंदी भाषा में समाविष्ट है। इस तरह से वैश्विक स्तर पर हिंदी की सामासिक संस्कृति का प्रभावशाली, आर्विभाव होता हुआ दिख रहा है। समन्वय की प्रक्रिया हजारों वर्षों से सक्रिय है। वस्तुतः हिंदी भाषा और उसके परिवार की बोलियां ही विश्व स्तर पर भारतीय संस्कृति की संवाहिका है।

विश्व में भारतीयता की जो भागीरथी प्रवाहित हुई है। उसके भागीरथ, मुख्य रूप से वे प्रवासी भारतवंशी रहे हैं जो गत शताब्दियों में रोजी-रोटी की खोज में उपनिवेशकर्ताओं द्वारा विश्व के अन्य देशों में बसाए गए। भारत सहित, विश्व भर में दासताओं की चादरें बदलती रहीं। शोषण की लगामों के साथ परिवर्तित होते रहे। शासकों के झड़े बदलते रहे लेकिन विश्व के भारतवंशियों के जनजीवन और मानस से हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति की ध्वजा कभी नहीं उतरी। सामान्य जनजीवन में व्रत-त्योहार, रीति-रिवाज, शादी-ब्याह की रस्मों का सिलसिला वैसे ही चलता रहा है जैसे गंगा की अजम्ब धारा प्रवाहित है। हिंदी और भारतीय संस्कारों से रचे-बसे हिंदुस्तानी मजदूर, किसान जब ब्रिटिश, फ्रेंच और डच सत्ताधारियों द्वारा फिजी मॉरीशस, गुयाना, अफ्रीका, सूरीनाम, त्रिनिदाद और ट्रिबैगो एवं कैरीबियाई देशों में ले जाए गए जहां इन्होंने अपने को जिलाए रखने के भारतीय संस्कार बचाए रखे। आज भी विश्व के भारतवंशियों को जीने की संजीवनी शक्ति अपनी भारतीय लोक संस्कृति, हिंदुस्तानी जीवन संस्कृति, हिंदी भाषा परिवार की बोलियों और सार्वभौम आर्य और सनातन धर्म से प्राप्त होती है।

जिस तरह से किसी भी वृक्ष की शाखाएं अपने तने, वृक्ष और जड़ों की पहचान नहीं खोती हैं बल्कि उसी से वे फूलती, फलती और बनती हैं। इसी तरह से विश्व में हिंदी भाषा अपना प्रचार-प्रसार बनाए हुए है। लोकभाषाएं, हिंदी भाषा परिवार की बोलियां, विश्व की संस्कृतियों और अन्य देशों की भाषाओं से समायोजन करके, भारतीय संस्कृति की जड़ों को फैलाने और सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। हिंदुस्तान के किसान-मजदूर अपनी मातृभूमि के मातृत्व भाव को भारतीय संस्कृति के रूप में अपने साथ ले आए। इनमें वाचिक संस्कार और वाचिक संस्कार के माध्यम से लोकवित्त के संस्कार प्रबल रहे। विदेश प्रवास के दौरान इनमें प्रबुद्ध होने का भाव तिरोहित हो गया क्योंकि भारतीय संस्कृति के निर्माण में हर पेशे के लोगों का योगदान रहा है। कबीर जुलाहे थे, दादू धुनिया थे, रैदास जूते गांठते थे, छीपा दर्जी थे, धर्मदास पंसारी थे। इससे स्पष्ट है कि हिंदी भाषा में खुलेपन होने का अपना इतिहास है। इसके सीमांत खुले हुए हैं- मुक्त हैं- विश्व में हिंदी के पनपने और विकसित होने का यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है जिससे सच्चे अर्थों में वैश्विक हो सकी। भारतीयों के जीवन जीने का सार्थक माध्यम बन सकी यह इसलिए भी विश्व में हिंदी भाषा भारतीय संस्कृति की संवाहिका बनी हुई है क्योंकि बिना भारतीय संस्कृति को जिए और अपनाए विदेशी में प्रवासी भारतवंशी और भारतीयों का जीवन असंभव की सीमा तक दुसाध्य है।

विश्व में संघर्षरत भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों की मजदूर संस्कृति में ‘मां’ ही प्रधान थी और मां ही प्रधान है। दिन रात खट्टे हुए अपनी अक्षय और अपराजेय संस्कृति को पूजने के लिए समय निकालते रहे थे और निकाल रहे हैं। त्योहारों की खातिर एकत्रित होते हैं। दोहा, चौपाई, निर्गुण

और भजन से अपनी साधना करते हैं। हिंदुस्तानी भक्तों ने शिवजी से तपने की साधना का सबक लिया और विष्णुजी से भारतीय संस्कृति की उपासना और रावण के वध के संघर्ष का पाठ ग्रहण किया। श्रीकृष्ण के अवतार से अनपढ़ रहते हुए भी गीता ज्ञान के सार की शिक्षा ग्रहण की। धर्म के बोझिल शब्दों का प्रयोग किए बिना धर्म की आत्मा का पोषण किया। वेद और उपनिषद की चर्चा की। मंदिर बनवाए। हवन-यज्ञ की नींव रखी। आर्य समाज दर्शन की ध्वजा फहराई और यह सब हिंदी भाषा और बोलियों के बूते सध सका। हिंदी वैश्विक हुई और इसके साथ-साथ भारतीय संस्कृति वैश्विक हुई और प्रवासी भारतीय तथा भारतवंशी वैश्विक हुआ।

हिंदी के वैश्विक होने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि भारतवंशी बहुल देशों और द्वीपों की प्रकृति और हिंदुस्तानी वाशिंदों की संस्कृति का चरित्र और अस्मिता समानधर्मी है। फिर वह मौरीशस हो या फ्रेंच गुयाना, ब्रिटिश गुयाना हो या डच गुयाना (सूरीनाम), दक्षिण अफ्रीका के क्षेत्र हो या फिर त्रिनिदाद या टुबैगो या फिर दक्षिण अफ्रीका के क्षेत्र हो या फिजी द्वीप समूह की धरती हो। इन देशों की वसुधा में एक जैसे फल, फूल, फसल और प्रकृति है। वैसे ही भारतीय संस्कृति में रची-पकी हिंदुस्तानियों का जीवन संस्कृति भी एक जैसी है। सूर्योपासना, गंगा पूजा, शिवरात्रि, नवरात्रि, हनुमत जयंती, देवी देवताओं की पूजा तुलसी का चौरा, गणेश चतुर्थी, हवन-यज्ञ, तीज त्योहार रस्मो-रिवाज, खानपान और जीवन शैली में एक जैसी समानता है। विवाह के अवसर पर मर्तवान, लावा भुजाई, लौड़ा का नाच आदि रस्मोरिवाज सहित शादी-ब्याह संपन्न होता हैं वह चाहे सूरीनाम हो या मौरीशस। भौगोलिक दूरी के बावजूद भारतवंशी बहुल देशों के हिंदुस्तानियों में न तो हार्दिक दूरी है और न ही भाषाई विविधता है। वैश्विक स्तर पर स्थापित हिंदी का स्वरूप इन्हीं कारणों से हिंदी भाषा परिवार की समर्थ बोलियों पर आश्रित है।

लोककथाओं, लोकगीतों, लोककलाओं, लोकनाट्य और खानपान की प्राणवान शक्ति भी हिंदी भाषा की अक्षुण्ण वैश्विकता के कारण जीवंत और स्थायी है। लोककथाएं, लोकगीतों और लोककलाओं से आज भी संबद्धता के कारण वे भारतीय संस्कृति से नाभिनाल संबद्ध हैं। लोककथाएं अपने समय और समाज की सच्चाइयों की कोख से जन्म लेती हैं इसलिए आज भी वे अपने अतीत से, अतीत के भारत से, भारतीयता से संबद्ध हैं। लोककथाओं और लोकगीतों ने हिंदुस्तानी बोलियों के माध्यम से ही संपूर्ण विश्व के भारतवंशियों के हृदय में अपना घर बना लिया है इसलिए भी, इनके लगन और हिंदुस्तानी संस्कृति के प्रति समर्पण के कारण भी हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति वैश्विक बनी हुई है।

लोक का महत्व शास्त्र से कम नहीं है दोनों संपूरक हैं। लोक के समक्ष सहज रूप में जो चरम सत्ता प्रदर्शित होती है वही लोक-संस्कृति है। भारत के हिंदुस्तानी क्षेत्र में जिसकी अभिव्यक्ति और जीने का माध्यम हिंदी भाषा परिवार की बोलियाँ हैं। भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों ने अपने श्रम, लगन और साहस की साधना से जो अद्भुत शक्ति उपर्जित की है कि पूरे विश्व में भारतीयता और भारतीय संस्कृति की शक्ति की ध्वजा लहरा रही है। विश्व के चाहे वह जिस भी कोने में हो उनकी सांस्कृतिक अस्मिता एक है क्योंकि उनके आधार स्रोत एक हैं। उनका जीवन-जगत एक है।

समुद्रतटीय तीसरी दुनिया के अविकसित राष्ट्रों की धरती पर जिस तरह से भारतवासियों की चार पीढ़ियाँ अपनी अंजुलि में भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा परिवार की बोलियों का प्रकाश दीप

लिए हुए खड़ी हैं। उसी तरह अमेरिका इंग्लैंड, कनाड़ा, पुर्तगाल, स्पेन जैसे विकसित राष्ट्रों और पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, थाईलैंड, इंडोनेशिया, चीन और जापान तथा रूस आदि देशों में भी भारतवासियों की पीढ़ियां भारतीय संस्कृति और हिंदी अस्मिता को अपना जीवन बनाए हुए जी रही हैं। यूरोप सहित विश्व के अन्य देशों में भारतवंशी बहुल देशों की अग्रतर पीढ़ियां अपनी जड़ें जमा चुकी हैं। जिस तरह से फ्रेंच गुयाना मॉरीशस की अग्रतर पीढ़ी दक्षिण अफ्रीका, फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैंड आदि देशों में व्यापार, रिश्तों तथा नौकरियों के कारण पहुंच रहे हैं। त्रिनिदाद, ब्रिटिश गुयाना और भारत की अग्रतर पीढ़ियां इंग्लैंड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में अपना बसेरा बना रहे हैं। सूरीनाम के भारतवंशियों की नयी पीढ़ी सन् 1975 के बाद से हॉलैंड नीदरलैंड में अपना घर-द्वार बना-बसा रही है। इस तरह से पूरे विश्व में भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। विभिन्न देशों में सत्ता समीकरण के बावजूद संपूर्ण भारतीयों और भारतवंशियों के जीवन का आधार भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा है जिसका संबंध उनके मन-मानस से ही नहीं अपितु आत्मा से भी है। भारत से बाहर फिजी, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, दक्षिण अमेरिका कैरेबियाई देश, यूरोप और अमेरिका के कुछ भारतवंशी बहुल देशों के बीच में भोजपुरी, मैथिली, मगही, अवधी हिंदुस्तानी आदि बोलियां ही संपर्क भाषा, सांस्कृतिक भाषा और संबंधों की भाषा के रूप में विकसित हो रही हैं। भारत के बाहर विकसित यह बोलियां- हिंदुस्तानी भाषा के रूप में जानी जाती हैं क्योंकि यह हिंदुस्तानी समुदाय की संपर्क और सांस्कृतिक भाषा है जैसे- जर्मनी में जर्मन, फ्रांस में फ्रेंच, स्पेन में स्पेनिश आदि। यह सुखद आश्चर्य है कि प्रयोग के स्तर पर हिंदी भाषा परिवार की बोलियों को जो सम्मान और दर्जा बोलियों के रूप में अपनी मातृभाषा भूमि में नहीं प्राप्त है जबकि यूरोप और अन्य देशों में इसे फ्रेंच, डच और जर्मन की तरह भाषा का दर्जा प्राप्त है। यह हिंदी भाषा की संजीवनी शक्ति का धोतक है जो हिंदी की वैशिकता का डंका बजाते हुए सुविस्तृत और व्यापक भविष्योन्मुखी जीवंत संपर्क भाषा होने की घोषणा करती है। यह गर्व की बात है कि विदेशों में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति अपनी गुणवत्ता और शक्ति के बूते लोगों के मन में जगह बनाकर फैल रही है।

यद्यपि भारत देश में स्कूलों, कॉलेजों-विश्वविद्यालयों, बैंकों, सरकारी कार्यालयों, दूतावासों और हिंदी अधिकारियों के बावजूद राष्ट्रभाषा हिंदी... व्यवहार और जीवन की भाषा नहीं बन पा रही है। भारत में हिंदी भाषा नौकरी पाने की भाषा के कारण भी पढ़ी और बचाई जा रही है फिर भी वह जीवन और आचरण की भाषा नहीं बन पा रही है। विदेशों में नौकरी पाने के उद्देश्य से हिंदी भाषा पढ़ने और विकास करने का सीधा कोई कारण नहीं नजर आता है। बावजूद इसके सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद, मॉरीशस, फिजी की तरह ही नीदरलैंड, फ्रांस और जर्मनी में हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण की सैकड़ों संस्थाएं हैं। सभी उम्र में विद्यार्थी अपने क्षेत्र के सुनिश्चित जगह पर सप्ताह में दो-तीन बार हिंदी पढ़ने के लिए जुटते हैं और वहां स्वेच्छा से बिना किसी वेतन के हिंदी अध्यापक शिक्षण के लिए आते हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के सहयोग से वर्ष में एक बार परीक्षाएं आयोजित होती हैं और प्रमाण-पत्र वितरित किए जाते हैं। नीदरलैंड के सूरीनामी भारतवंशी श्री नारायण मथुराजी ने बताया कि इस वर्ष एक हजार विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र वितरित किए जाएंगे।

विदेशों में सन् 1834 ई. से भारत से निकले हुए गिरमिटिया और कन्ताक के माध्यम से गए हुए पुरुखों की नयी पीढ़ियों में भी भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा परिवार के संस्कार और उसके

प्रति जुड़ाव का भाव बचा हुआ है। इन्हीं भारतवंशियों की संगत में रहते हुए उनके साथ जीते हुए नीदरलैंड सहित विश्व के अन्य विदेशियों में भी हिंदी सीखने की उत्सुकता बढ़ी हुई है जिससे स्पष्ट है कि विदेशों में हिंदी संस्कृति के बढ़ने और फैलने की सम्मानपूर्ण संभावनाएँ हैं। जिसका विकास गत सौ वर्षों में लक्षित हो चुका है इसके लिए किसी प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है।

विदेशों में हिंदी लगाव की एक और भी आश्चर्यजनक स्थिति है कि वे जन्म से, कर्म से, जीवन से विदेशी होने के बावजूद हिंदी से प्रेम करते हैं। हिंदी से प्रेम होने के बाद ये लोग हिंदीभाषी देश भारत जाते हैं। अपने घर में जगह देकर वे हिंदी की कक्षाएँ चलाते हैं। स्त्रियां माथे में हिंदी की बिंदी लगाकर धूमती हुई मिल जाएंगी। हृदय में, वाणी में जगह देकर सर्गव हिंदी भाषा में बातें करते हैं जबकि विदेशों में भारतीय- भारतीयों से मिलने पर वे अंग्रेजी भाषा में ही अपना मुँह खोलते हैं। ऐसे में देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरूजी का कथन याद आता है जिसमें उन्होंने कहा था कि हमारा सिर शर्म से झुक जाता है जब कोई भारतीय विदेश में किसी अन्य भारतीय से मिलने पर अंग्रेजी में बातें करता है। विदेश में विदेशी हिंदी सीखकर हिंदी भाषा बोलते हैं जबकि अधिकांश भारतीय हिंदी भाषा जानते हुए भी न जानने का व्यवहार करते हैं और अंग्रेजी में बातें करते हैं। संभवतः यह जानने के लिए वे ज्यादा पढ़े-लिखे हैं और विदेशों में रहते हैं जबकि सूरीनामी भारतवंशी या तो इस देश की राष्ट्रभाषा ‘डच’ में बातचीत करते हैं या फिर अपनी ‘महतारी भाषा सरनामी’ में बतियाते हैं।

भारतवंशी बहुल देशों- मॉरीशस, फिजी, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद आदि देशों में पीढ़ियों से रहे रहे और इन देशों के विकास और पहचान में योगदान करते रहे भारतवंशियों की अग्रतर पीढ़ियां- अमेरिका, इंग्लैंड, हालैंड, फ्रांस, जर्मन, स्पेन, पुर्तगाल, आस्ट्रेलिया जैसे विकसित राष्ट्रों में रहने के बावजूद वे सर्गव हिंदी भाषा परिवार की बानगी बोलते हैं। हिंदी अब विश्व के अन्य भाषाओं के नागरिकों के परिवार की भाषा बन चुकी है। विदेशों में भी वे फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश और पुर्तगाली भाषा की तरह ही भोजपुरी, सरनामी, हिंदुस्तानी और फिजी बात में निःसंकोच, बेहिचक बिना शर्म और हीनता भाव के फराटी से बात करते हैं जैसे- नीदरलैंड देश में टर्की और मोरकी अपनी मातृभाषा में संवाद करते हैं।

वस्तुतः विश्व में हिंदी भाषा प्रेम, अपनेपन और भारतीय संस्कृति की भाषा बनी हुई है इसलिए विदेशों में हिंदी संस्कृति पसर रही है। विदेशों में हिंदी के प्रति यह प्रेम और लगाव वस्तुतः भारतीय संस्कृति के प्रति गहरे जुड़ाव के कारण ही संभव हो पा रहा है। दरअसल गत शताब्दी से विश्व के संवेदनशील बुद्धिजीवी यह अनुभव करने लगे हैं कि जीवन की जीवनदायी जीवंत कला को जानने अपनाने के लिए भारतीय संस्कृति से गुजरना आवश्यक है जो हिंदी और संस्कृत भाषा से ही संभव है। योग और ध्यान की पुस्तकों तथा पत्रिकाएँ तकरीबन विश्व की सभी भाषाओं में छप रही हैं जिनमें भारत की प्राकृतिक चिकित्सा और आयुर्वेद का ही ज्ञान समाया रहता है। साहित्य और संस्कृति की हिंदी पुस्तकों का मर्म और महत्व की अब विदेशी समुदाय समझने लगा है।

दरअसल, इसमें भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों की महत्वपूर्ण भूमिका हैं भारतवंशियों के प्रत्येक देश में उनकी हिंदुस्तानी भाषा की अपनी पहचान है उनकी अपनी निजी बोली और भाषा है जो हिंदी भाषा-परिवार का एक हिस्सा है जिसमें भारतीय संस्कृति और उनके पुरखों की भाषाई

प्रेम की अनुगूंज है। विश्व में भारतवंशी बहुत देशों की अपनी हिंदी भाषाई और सांस्कृतिक पहचान है जो भारत से भिन्न है और उसकी हिंदी को वैश्विक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका है।

भाषा के बिना साहित्य नहीं होता है और समाज के बिना भाषा नहीं होती है। विश्व भर में गए हुए हिंदुस्तानी और उनकी पीढ़ियां हिंदुस्तानी जाति के रूप में भी जानी जाती हैं जिससे उनकी हिंदुस्तानी और हिंदी संस्कृति का बोध होता है। हिंदी भाषा के सांस्कृतिक आदान-प्रदान में ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मण्डी और हिंदुस्तानी बोली की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस तरह वैश्विक हिंदी और प्रवासी भारतीयों के द्वारा हिंदी वंशियों का भी अभ्युदय हो रहा है जिससे विश्व में हिंदी-संस्कृति के प्रचार-प्रसार में सार्थक सहायता हो रही है।

सूचना

बहुवचन के पाठकों के लिए पत्रिका प्राप्त करने का डिटेल कि ‘आज की कहानी’ अंक उनको कैसे मिले उसकी जानकारी प्रस्तुत है।

बहुवचन की एक साल की सदस्यता कहानी विशेषांक के साथ चाहने वाले सदस्य 500.00 (पांच सौ मात्र) रुपये की धनराशि बैंक खाते से भुगतान करें-

ऐसे पाठक जो ‘आज की कहानी’ विशेषांक पाने के इच्छुक हैं वे सदस्य 200.00 की धनराशि निम्नलिखित खाते में जमा करें-

वित्त अधिकारी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
बैंक आफ इंडिया, हिंदी विश्वविद्यालय शाखा

खाता संख्या - 972110210000005

BKID 0009721

MICR CODE No. : 442013003

धनराशि खाते में जमा करने के उपरांत अपने नाम और पूरे पते सहित - सुरेश कुमार यादव
को जमा धनराशि की स्लिप ईमेल पर भेजकर बात करें उनका मो. 9730193094,
ई-मेल- s.ujala@gmail.com

फोन न. 07152-232943 है। इस प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात सभी को अंक मिल सकेगा।

धरोहर बचाने की चुनौती

प्रेम जनमेजय

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर की काव्याभिव्यक्ति है-

घर कइनु बाहिर, बाहिर कइनु घर
पर कइनु आपन, आपन कइनु पर।

यह पंक्ति गिरमिटिया, प्रगासी या जहाजी भाई, जो भी कहें, उन पर सटीक बैठती है। व्यापक अर्थ में इसे, किसी भी कारण से अपनी जमीन छोड़कर गए मनुष्य पर लागू होती है। यह मनुष्य की प्रकृति है कि जिससे आप जितना दूर होते हैं, उतना ही उसके करीब होते हैं। विदेश में देश की माटी की गंध तरसाती है तो देश लौटने पर विदेश की सुविधाएं। मां के पास वाली संतान उतना महत्व नहीं रखती जितनी विदेश में रची-बसी संतान। विदेशी धरती को अपना देश बनाने वाली संतान को सब कुछ मिलता है पर बहुत ढूँढ़ता है, मां की गोद नहीं मिल पाती। इस दर्द को वही जान सकता है जिसकी पैर बिवाई फटी है। आप कितने भी संपन्न हो जाएं शरीर सुखी हो जाता है पर मन- जैसे जहाज को पांछी उड़ि जहाज पे आवे। और वो मन जो बरसों पहले अनजाने द्वीप में गिरमिटिया मजूदर के रूप में गया हो, आज कितना भी कुलीन या संपन्न हो गया हो पर अपनी जड़ों को खोजता है और बार-बार अपनी माटी की गंध लेने को तरसता हैं।

हम भारतीय इतने ‘मोबाइल’ कभी नहीं रहे जितने पिछली दो तीन शताब्दियों में रहे। (मोबाइल भी तो इतना मोबाइल कहां था जितना पिछले दो-तीन दशकों में हुआ है) हमने समुद्र -मंथन अवश्य किया पर समुद्र पार की यात्रा शास्त्रों में वर्जित सी- थी। मान लिया जाता था कि सात समुंदर पार करने वाला बचकर नहीं आएगा। ऐसा वर्णन मिलता है कि महाभारत युद्ध में मृत्यु के भय या हार जाने पर अपमानित महसूस करने पर आत्मगलानी के और श्रीकृष्णजी के स्वर्गारोहण से पूर्व हुए यादवी संघर्ष के फलस्वरूप भी बहुत से लोग भागकर देश के बाहर गए थे। यही नहीं, कभी-कभी स्वेच्छा से व्यापार, भ्रमण, धर्म प्रसार और उपनिवेश-निर्माण के हेतु भी भारतीयों ने प्रव्रजन किया है। पर वो आटे में नमक के बराबर है। इतिहासकार भारतीयों को घर घुस्सु और ज्ञान-विज्ञान से विहीन भी मानते रहे हैं। पर आज विश्व के बड़े-बड़े विद्वान इस बात पर सहमत हो चुके हैं कि आदि काल में मानव का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव भारत में ही हुआ था। इस संदर्भ में फ्रांस के क्रूजर और जैकालिट, अमेरिका के डॉ. डान, इंग्लैंड के सर वाल्टर रेले के साथ-साथ इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड, भू-वैज्ञानिक, मेडलीकट, ब्लम्फर्ड आदि के कथन भी उल्लेखनीय हैं।

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीति के खेल ने भारतीयों के लिए समुद्र पार के द्वार खोले और ऐसे खोले की बाढ़ आ गई। सूरीनाम, फिजी, गुयाना, जैमैइका, मॉरीशस, त्रिनिदाद और टुबैगो आदि देशों में, कोई पहले या बाद में पहुंचा पर जीवन उसने लगभग एक -सा जिया। केन रामचंद इस अनुभव के बारे में कहते हैं- And the whole diasporic experience begins the moment we are expelled from the security of the oneness from the source, from the moment we are expelled from the womb, we are in the Diaspora अच्छे जीवन के लालच में ले जाए गए ये भारतवंशी भिन्न जहाजों से, अपने ही परिचित देश के अपरिचित ‘संगी साथियों’ संग अनजाने द्वीपों में पहुंचे। सबके नाम अलग अलग थे पर उन्हें कुली कहकर पुकारा जाता था। त्रिनिदाद और टुबैगोवासियों की सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अपने अध्ययन के दौरान में मुझे एक पुस्तक मिली, गेराड बेसेन और ब्रिजेट बेरेटन द्वारा संपादित, ‘द बुक ऑफ त्रिनिदाद’। इस पुस्तक में जे.एच. कॉलेंस के एक लेख को पढ़कर मैं हतप्रभ रह गया। लेखक ने भारतीय मूल के निवासियों के खान-पान, रहन-सहन, भाषा और संस्कृति आदि का भरपूर मजाक बनाया है। भारतीय दर्शन का मजाक बनाते हुए लेखक लिखता है- ‘इस उपनिवेश में रह रहे भारतीय कुलियों के पास वही दर्शन है जो इनके पूर्वजों ने आज से 2500 साल पहले अपनाया था। पुराण अनेक अंतर्विरोधों से भरे हुए हैं। त्रिनिदादियन कुली अपने को इन दर्शनों से युक्त ज्ञानी-ध्यानी मानते हैं। खेत में काम करने वाला एक मजदूर भी बहुत ज्ञानी होने का दावा करता है। शाम को सब बैठकर, जो कुछ बंध इन्हें याद हैं, उन्हें गाकर दोहराते हैं और सोचते हैं कि वह बहुत ज्ञानी हो गए।’ साधुओं का मजाक बनाते हुए यही लेखक लिखता है- ‘भारत में सही मायनों में जो साधु होते हैं या तो वे गुफाओं और कंदराओं में रहते हैं या फिर अपने ही साधु-समाज के बीच में रहते हैं। त्रिनिदाद के साधुओं के लिए यह संभव नहीं है। जब भी कोई साधु बन जाता है तो वह गांजा पीने लगता है, नकारा हो जाता है, दूसरों की कमाई पर जीता है। ऐसे ही एक साधु ने धर्म परिवर्तित लोगों को बताया कि थोड़ी-सी दक्षिणा देकर वह पुनः हिंदू धर्म ग्रहण कर सकते हैं और इस तरह उसने हजारों रूपए बनाए।’

तथाकथित कुलियों के रहन-सहन, रीति-रिवाजों, परंपराओं, वेश-भूषा आदि का भी इस लेखक ने उपहास किया है। उसके अनुसार, देखने में कुली सामान्य-से हैं जो शारीरिक ताकत में अन्य समुदायों से कमजोर दिखते हैं। अपनी बचाने की प्रवृत्ति के कारण अपने खान-पान में भी बचाव की मुद्रा में रहते हैं। कुली-पति ईर्ष्यालु तथा निहायत ही शक्की मिजाज का होता है। अपनी पल्ली को बेवफा का शक होने मात्र से उसकी हत्या तक कर डालता है। इस समुदाय में तीन चौथाई हत्याएं इसी कारण होती हैं। औरतें सामान्य कद-काठी से कम होती हैं, तथा बहुत ही छोटी आयु में घर-गृहस्थी का बोझा ढोने लगती हैं। जिस उम्र में सामान्य अंग्रेज लड़की फ्रॉक जैसी ड्रेस पहनती हैं, उसमें यह अपने को ओढ़कर रखती हैं और तीस तक आते-आते बूढ़ी-सी लगती हैं।

इन जहाजियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती पेट की आग थी। यह उनकी गरीबी ही थी जिसने इनके भविष्य को अनजाने हाथों में सौंप दिया था। अपने देश और अपनों से दूर जो विवशता लेकर आई थी, उससे संघर्ष ही तो पहली प्राथमिकता थी। औपनिवेशिक राज्य में, जहां शोषण प्रमुख था, ऐसी व्यवस्था में आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाने की सोचना ही अपने आपमें एक बहुत बड़ी चुनौती

थी। यही पेट की आग थी जिसने उन्हें अनेक विरोधों के बावजूद यहां रहने को विवश किया जब स्वदेश जाने का भी विकल्प इन्हें दिया गया तो, चाहे अपनी मातृभूमि के प्रति अथाह प्रेम इनके मन में था, फिर भी अधिकांश ने देश नहीं छोड़ा। इसके विपरीत यहां आने वालों का सिलसिला जारी रहा। चाहे ये एक ‘काला पानी’ था पर उन्होंने इसे स्वर्णभूमि बनाया था। जिस मिट्टी को सोना बनाया हो उसे छोड़कर जाना कठिन ही होता है। जीवनयापन के अतिरिक्त सबसे बड़ी चुनौती इनके सामने थी अपनी अस्मिता की रक्षा की।

ये कुली से कुलीन बने। कुली से कुलीन बनने के पश्चात् इन्होंने पाया कि इस प्रक्रिया में अपनी अस्मिता, अपनी संस्कृति, अपनी परंपराएं अपनी भाषा तो बहुत पीछे छूट रही हैं। नई पीढ़ी नए और सामाजिक स्तर के मोह में पाश्चात्य झुकाव में आ रही है। इस चुनौती का मुकाबला करने के लिए अपनी शिक्षा ही सहायक सिद्ध हो सकती थी। इस चुनौती से निपटने के लिए 1928 में ऑल इंडिया हिंदू महासभा नामक संगठन बना। भारतीय परंपराओं को जीवित रखने, धर्म के बचाव तथा सांस्कृतिक उत्थान के लिए शिक्षा को आवश्यक समझा गया और इसके लिए रात्रि स्कूलों की व्यवस्था की गई। इन द्वीपों के ‘निवासी’ बनने वाले भारतवंशियों का चरित्र बहुत कुछ एक जैसा है। आर्थिक परिस्थितियों की विवशता में अपनों से दूर गए इन भारतवंशियों ने इन देशों में एक ऐसे लघु भारत का निर्माण किया है तथा भाषा और संस्कृति को जो जिंदा रखा है, इसके कारण इन पर गर्व होता है।

आज वे कुली से कुलीन बन गए हैं। आज उनके पास सुख-समृद्धि है। आज अपनी अस्मिता की पहचान की सारी सुविधाएं उपलब्ध हैं। आज अपने जड़ों की खोज में भारत आना-जाना बहुत सरल है। वर्तमान सुखद है पर इस सुखद वर्तमान को बनाए रखना एक बड़ी चुनौती है।

यूनिवर्सिटी ऑफ वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष जब अपनी जड़ों से जुड़े संग्रहालय, प्रदर्शनी सांस्कृतिक कार्यक्रमों और अपनी धरोहर को बचाने के लिए कार्यक्रम आयोजित करते हैं तो उसमें एक महत्वपूर्ण बात कहते हैं- *It is very important for those of you who are parents or teachers to ensure that their children come to the exhibitions and participate in the larger project we have of making a Caribbean Heritage Museum- I want to make a public appeal on behalf of the NCIC to all of you who might have artifacts, something that your parents and grandparents used, things like the dhenki, the khatiya, the jhoola, things that you might not need.* क्यों वे इस बात पर जोर दे रहे हैं कि ये महत्वपूर्ण है कि माता-पिता और अध्यापक निश्चित करें कि बच्चे इस आयोजन में अवश्य आएं।

मुझे याद है कि प्रवासी मन के चित्तेरे कथाकार तेजेंद्र शर्मा से उनके लंदन स्थित आवास में उनके साहित्येतर प्रवासी अनुभवों, वहां के समाज में उनकी स्थिति के बारे में जिज्ञासा प्रकट कर रहा था तो तेजेंद्र ने अनेक विचारणीय गंभीर चुनौतियों की चर्चा की थी। प्रवासियों की संतान निवासियों के लिए एलियन सी होती है। वे घर से बाहर तक के ही संबंध बनाते हैं। युवा लड़के अपने निवासी मित्रों को तो घर पर पार्टी आदि में बुला लेते हैं पर बाकियों को नहीं। हम तो अपनी भाषा, संस्कृति, तीज-त्योहार को बचाए रखें हैं पर हमारे बच्चे इस धरोहर को बचा पाएंगे, शक है।

नई पीढ़ी का महत्वपूर्ण प्रश्न होता है कि आज हमारी संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि की प्रसांगिकता क्या है? ये हमें क्या 'पे' करती है?

मुझे याद है मार्च का महीना था और मैं वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय में अपनी कक्षा समाप्त कर यहां के छात्रों की मानसिकता समझने के लिए उनसे बतिया रहा था। एक छात्र गणेश ने कहा, 'गुरुजी क्या आप हमें इस फिल्मी गीत का अर्थ समझा सकते हैं?' भारत में वैसे तो मेरा कोई विद्यार्थी ऐसी बात करने का साहस करता ही नहीं और यदि करता भी तो डांट खाता। पर यह तो त्रिनिदाद और टुबैगो है जहां हिंदी फिल्मी गानों की हिंदी विकास में एक अहम भूमिका है। अनेक एफ.एम. स्टेशन से 24 घंटे फिल्मी संगीत चलता है। लोग दिल से गाते हैं, गुनगुनाते हैं पर उनके अर्थ नहीं जानते। यह भाषा अध्ययन का एक दूसरा पक्ष है। अपनी भावना के विरुद्ध मैंने उन्हें उस गाने का अर्थ समझाया और अर्थ सुनते ही उनका चेहरा खिल भी गया। मैंने पूछा, 'क्या तुम इस गीत के संगीतकार, गायक और फिल्म का नाम जानते हो?' उनका फिल्मी ज्ञान अद्भुत और मुझसे अधिक था। तुलसी गिरमिटिया देशों में संस्कृति, धर्म और अस्मिता पर होने वाले हमलों के कवच हैं। यहां तुलसी का सृजन न केवल मात्रा धर्म ग्रंथ है और न ही कोई साहित्यिक कृति अपितु भारत से दूर अपनी मिट्टी की गंध ढूँढ़ते अनेक अकेलों का सहारा है। यह अस्मिता की पहचान का प्रतीक तो है ही अपसंस्कृति के विरुद्ध लड़ने का एक हथियार भी है। जब गिरमिटिया मजदूर इन द्वीपों में उतरे तो उनका किसी संस्कृति से परिचय था तो वह भारतीय संस्कृति से और किसी भाषा से परिचय था तो वह भोजपुरी से। उनके पास अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए कवच के रूप में अपनी भाषा और तुलसी का मानस था। उनके धार्मिक/साहित्यिक ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए मैंने पूछा 'क्या तुम जानते हो कि रामचरितमानस किसने लिखी?' दो विद्यार्थियों ने तुलसी का नाम बताया पर जब मैंने पूछा उनके बारे में कुछ और जानते हो, कोई दोहा या चौपाई याद है तो एक सन्नाटा छा गया। मैंने व्यंग्य से कहा- 'तुम फिल्मी गीत याद कर सकते हो उसकी फिल्म का नाम जान सकते हो पर तुलसी के बारे में कुछ नहीं जानते।' मेरे इतना कहने पर नलिनि ने पूछा- 'तुलसी को जानने से क्या लाभ है? रामायण हमारी धार्मिक पुस्तक है इसके अलावा हमें इससे क्या मिलता है? आज इसका क्या रेलेवेंस है?'

हर युग में नई पीढ़ी ने अकसर ऐसे ही प्रश्न किए हैं। प्रश्न करना एक अच्छी आदत भी है। मैं स्वयं ही अनेक बार स्वयं को अनेक प्रश्नों के बीच खड़ा पाता हूँ। त्रिनिदाद एवं टुबैगो में तुलसी संस्कार देने में रविजी के 'गार्जियन' समाचार पत्र में प्रकाशित रविवारीय स्तंभ 'लैंडस्केप' ने पर्याप्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है। रविजी अपनी धाराप्रवाह अंग्रेजी के बीच हिंदी के शब्दों के जितनी खूबसूरती से प्रयोग करते हैं उससे एक भाषा का संस्कार भी उनके पाठक ग्रहण करते हैं। तुलसी के बारे में जब वह अपने स्तंभ में लिखते हैं-- 'जनभाषा में तुलसी की कृति 'रामचरितमानस' की रचना मात्र धर्म भाषा संस्कृति एवं समाज तक सीमित नहीं है। वस्तुतः उसका एक महत्वपूर्ण शक्तिशाली एवं ऐतिहासिक पक्ष भी है,' तो इस पर चिंतन की आवश्यकता महसूस होती है। रविजी जब अपने स्तंभ में ये लिखते हैं कि कैरेबियन जैसे क्षेत्र में असामंजस्य को सामंजस्य आकार देने के लिए आंदोलन की आवश्यकता है तो लगता है, धरोहर को बनाए रखना एक बड़ी चुनौती है जिसके लिए आंदोलन आवश्यक है।

अपनी धरोहर को बचाने और युवा पीढ़ी से उसका निरंतर संपर्क रखने की इस चुनौती से निपटने के लिए वर्तमान सजग है पर उसे और सजग होना होगा। आने वाले पीढ़ी को अपनी धरोहर से जोड़ने के लिए गिरमिटिया देशों में प्रयत्न किए गए हैं और किए जा रहे हैं। यहाँ के मंदिर केवल पूजा पाठ का केंद्र नहीं हैं अपितु संस्कृति उत्सवों और हिंदी शिक्षण के भी केंद्र हैं। मॉरीशस में गंगा तलाब में, शिव की मूर्तियां स्थापित हैं और आरती होती है। त्रिनिदाद के बलांचीशायर में गंगा की धारा बहती है। यहाँ गंगा दशहरा के अवसर पर मुंडन का भी आयोजन किया जाता है। ‘दीवाली नगर’, त्रिनिदाद के भारतीय मूल के लोगों का सांस्कृतिक स्थल है। नाम दीवाली नगर है पर यहाँ होली भी खेली जाती है। दीवाली नगर के द्वार पर पहुंचते ही द्वार से लगभग तीस गज दूर, मध्य में स्थित शिव की मूर्ति आने वाले को समझा देती है कि वह कहाँ आ रहा है। दीपावली के आने से एक माह पहले ही त्रिनिदाद दीपावलीमय होने की प्रक्रिया में बंध जाता है। नवरात्र आरंभ होते ही एक माह के ब्रत आरंभ हो जाते हैं। यहाँ अधिकांश के लिए ब्रत का अर्थ है एक माह के लिए मांसाहार को तिलांजिल। फिजी में श्री शिवा सुब्रह्मनय सूरीनाम में कृष्ण सनातन धर्म मंदिर आदि ऐसे ही सांस्कृतिक केंद्र हैं जो युवा पीढ़ी को उनके अतीत से जोड़ने के माध्यम हैं।

मॉरीशस में हिंदी साहित्य को प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, अभिमन्यु अनत, प्रस्ताव रामशरण, सोमदत्त बखौरी, अजामिल माताबदल, रामदेव धुरंधर आदि पचास से अधिक सक्रिय भाषाविद् एवं साहित्यकार हैं। यहाँ के विश्वविद्यालय में हिंदी में शोधकार्य होता है। फिजी में चंद्रदेव सिंह, पं. गुरदयाल शर्मा, पं. अमीचंद, जे एस कमल, माता प्रसाद डॉ. सुब्रमणि, विवेकानन्द आदि रचनाकारों का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

पर... एक बहुत बड़ा पर है। स्वर्णम साहित्यिक परंपरा को चुनौती वाला कोई युवा साहित्यकार उभरकर नहीं आ रहा है। धर्म, संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि की धरोहर को बचाए रखना बड़ी चुनौती है तो सबसे बड़ी चुनौती ये है कि उसे नई पीढ़ी के लिए प्रासंगिक कैसे बनाया जाए। एक बहुत बड़ा प्रश्न चुनौती के रूप में किसी विशाल डायनासोर-सा खड़ा है। जब भारतीय युवा के मन में अपने समृद्ध भविष्य के लिए अमेरिका प्रभु की मूर्ति स्थापित है तो ऐसे में गिरमिटिया देशों या प्रवासी देशों के युवा मन में उसकी अस्मिता की पहचान के रूप में भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषिक मूर्ति कैसे स्थापित की जा सकती है?



वैशिवक हिंदी की चुनौतियां

उमेश चतुर्वेदी

नई परंपराएं और नए मूल्य न तो एक दिन में गढ़े जा सकते हैं और न ही उन्हें कुछ महीनों में मान्यता दिलाई जा सकती है। संस्कृति, राजनीति या प्रशासन जैसा विषय नहीं होती, जिसे कुछ हफ्तों में बदला जा सके। भाषाएं भी संस्कृति के नवाचार और बदलाव से जुड़ी विषय होती हैं, इसलिए उनके जरिए कुछ महीनों में नई संस्कृति रची नहीं जा सकती लेकिन संस्कृति के लिए 41 साल का समय भी कोई कम नहीं होता। 4 अक्टूबर 1977 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा को भारत के विदेश मंत्री के तौर पर हिंदी में संबोधित करते हुए अटल बिहारी वाजपेयी ने दुनिया को संदेश दिया था कि अब हिंदी को वैशिवक पटल पर अपनी दमदार मौजूदगी दर्ज कराने के दिन शुरू हो गए। तब से लेकर अब तक की अवधि में बेशक हिंदी वैशिवक मंच पर स्थापित नहीं हो पाई, लेकिन उसकी मजबूत उपस्थिति दिखनी जरूर चाहिए थी।

इसकी बड़ी वजह भारतीय राजनीति और अफसरशाही की मानसिकता को माना जा सकता है। लंबे वक्त तक अंग्रेजी शासन का प्रभाव ही है कि स्टील फ्रेम कहीं जाने वाली भारतीय नौकरशाही को राष्ट्रीय नीतियां बनाने के लिए सबसे पहले अंग्रेजी की ही याद आती है। भारतीय राजनीति के चमकदार चेहरों को तो राष्ट्रव्यापी छवि के लिए हिंदी की जरूरत महसूस तो होती है, लेकिन जब प्रशासन की बात आती है तो वे हिंदी को पीछे छोड़ आते हैं। हिंदी के विरोध के लिए विख्यात तमिलनाडु तक के नेताओं की मान्यता है कि उन्हें अखिल भारतीय व्यापिनि दिलाने में हिंदी जुबान ही सहायक हो सकती है। जब शासन की बात आती है तो उन्हें हिंदी दोयम नजर आने लगती है। हिंदी की वकालत करने वाले संगठन भी जब ताकत में आते हैं या सत्ता में उनकी भागीदारी बढ़ती है तो हिंदी को भूलना वे श्रेयस्कर समझते हैं। जब देश में ही हिंदी की पूजा नहीं होगी तो विदेशी भला उसे क्यों पूजने लगेंगे।

नई आर्थिकी ने समाज और सत्ता के सभी अंगों को अपने शिकंजे में कस लिया है। चूंकि कारोबारी तंत्र को सबसे बड़ा बाजार हिंदी में उपलब्ध है, उसे यह भी पता है कि अपने उत्पाद के लिए वह अच्छी मार्केटिंग हिंदी में ही कर पाएगा, इसलिए भारी मन से ही सही, उसने हिंदी का सहयोग लेना शुरू कर दिया है लेकिन नई आर्थिकी के बड़े तंत्र कारपोरेट की हालत वैसी ही है, जैसी हिंदी के सिनेमा जगत की है। सिनेमा की कमाई का बाजार हिंदीभाषी है, इसलिए वह फिल्में हिंदी में ज्यादा बनाता है, लेकिन उसे अपनी अंदरूनी व्यवस्था, नीतियां, काम और यहां तक की

स्क्रिप्ट तक के लिए उसे अंग्रेजी भाषा या रोमन लिपि ही सहज लगती है। सिनेमाकार, कलाकार और निर्देशक बेशक हिंदी के विस्तारित बाजार से मोटी कमाई करते हैं, लेकिन हिंदी उनके लिए सिर्फ और सिर्फ कमाई यानी नोट छापने की मशीन भर है। जब विमर्श की बारी आती है तो अंग्रेजी का ही सहारा सिनेमा की दुनिया को नजर आता है। ठीक उसी तरह नई आर्थिकी के बड़े औजार बड़े-बड़े कॉर्पोरेट अपनी कमाई, अपने उत्पाद की खपत के लिए हिंदी के विस्तारित बाजार पर निर्भर तो हैं, लेकिन उनकी भी नीतियों, विमर्श और योजनाओं की मूल भाषा अंग्रेजी है। इसलिए नई आर्थिकी से हिंदी के विस्तार की उम्मीद तो की जा सकती है, लेकिन उससे न तो प्रतिष्ठा की आस की जा सकती है और न ही हिंदी की प्रतिष्ठा भी बढ़ाई जा सकती है।

आर्थिकी के सूत्र सदियों से संस्कृतियों और सभ्यताओं को प्रभावित करते रहे हैं। भूख मिटाने, कपड़े जुटाने जैसी बुनियादी जरूरतों के पूरी होने के बाद मनुष्य का अगला सोपान समृद्धि की तलाश रहा है। इस तलाश ने उससे अंतहीन यात्राएं जो शुरू कराई, वे युगों-युगों से अनवरत जारी हैं। इस यात्रा में मनुष्य अपनी भाषा को साथ लेकर चलता तो जाता है। उसकी स्मृतियों और जुबान के साथ की यह यात्रा एक तरह से स्वत्व का तीर्थाटन भी होता है। स्वत्व की इस अनवरत यात्रा में जब भी कोई पड़ाव आता है, मनुष्य वहां आराम करता है, कुछ नई राह तलाशता है और उस तलाश के साथ उसके स्वत्व में कुछ अनुभव और उस अनुभव के सहारे नई संस्कृति और उस संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम स्थानीय भाषा भी जुड़ जाती है। दुनिया की सभी भाषाओं की समृद्धि में मानव की इस स्वत्व यात्रा का गहन योगदान रहा है। हर पड़ाव पर भाषिक संस्कृति में नया अध्याय जुड़ता रहा है और इस तरह संस्कृतियां भी यात्राएं करती रही हैं। भाषा को लेकर भारतीय दर्शन में कहा जाता रहा है, भाषा बहता नीर। बहता नीर इसलिए कि उसमें जीवंतता रहती है और यही उसका जीवनी तत्व भी होता है। जीवंतता को बनाए रखने की यह यात्रा सांस्कृतिक तौर पर सायासिक कम, आर्थिकी से उत्पन्न मजबूरी कहीं ज्यादा होती है।

नई आर्थिकी में चूकि गतिशीलता ज्यादा है, सूचना क्रांति ने उसे नई गति दी है, इसलिए भाषा और संस्कृतियों का प्रवाह कुछ ज्यादा ही बढ़ गया है। जिस तरह मंथर गति से लगातार प्रवहमान नदी ही जीवनदायिनी होती है, उसी तरह स्वत्व की सांस्कृतिक यात्रा ही भाषा को जीवन देती है। जब नदी सहजता की बजाय कुछ ज्यादा वेगवती हो जाती है तो वह अपने किनारों तक को बहा ले जाती है, आस-पास के इलाकों को तहस-नहस कर देती है, नई आर्थिकी की वजह आजकल हिंदी के लिए उसी वेगवती बाढ़ के जैसी हो गई है इसलिए वह लगातार व्याकरण रूपी किनारों को तहस-नहस कर रही है। अपने वेग में वह सहज शब्दों तक को तिरोहित करती जा रही है।

2009 के आसपास स्वीडन के दूतावास के संस्कृति सचिव ऑस्कर फुयाल ने अपना जो अनुभव बयान किया, वह हिंदी की वैश्विक चुनौती को समझने में मददगार साबित हो सकता है। इक्कीसवीं सदी को एशिया की सदी माना जा रहा है। पिछली सदी से ही जापान की अर्थव्यवस्था का दुनिया में डंका है जबकि इक्कीसवीं सदी में चीन और जापान की अर्थव्यवस्था लगातार तेजी से आगे बढ़ रही है। जब आर्थिकी का इतना बोलबाला नहीं था, तब तो अर्थ की चाहत में लोग कहां से कहां तक चले जाते थे, अब तो आर्थिकी का ही बोलबाला है। इसलिए दुनिया का रुझान इन तीनों देशों की ओर बढ़ा तो है ही, और बढ़ेगा। यही देखते हुए ऑस्कर फुयाल ने स्वीडन में चीनी, जापानी और

हिंदी के लिए यूरोपीय लोगों कारोबारियों के लिए अल्पकालिक क्रैश कोर्स शुरू किया। उस पाठ्यक्रम में शामिल होने लोग आए, लेकिन ज्यादातर लोगों का उद्देश्य जापानी और चीनी सीखना था। हिंदी सीखने एक-दो लोग ही आए। इसकी जब उन्होंने वजह पूछी तो लोगों का जवाब था कि चीन में बिना चीनी और जापान में बिना जापानी जाने काम भले ही न चल पाए, लेकिन भारत में बिना हिंदी के अंग्रेजी में काम चल जाता है। साफ है कि दुनिया भी मानती है कि भारत में अंग्रेजी में काम चल सकता है, तो भला हिंदी की ओर आकर्षित हुआ ही क्यों जाए।

हिंदी की वैश्विक व्याप्ति में स्थानीय स्तर की यह सोच ही कहीं ज्यादा जिम्मेदार है। यह सोच ही है कि ऑक्सफोर्ड में व्याख्यान देते वक्त देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री अंग्रेजी को भारत की सबसे अच्छी देन बताने में नहीं हिचके। हिंदी की वैश्विक व्याप्ति में उसे लेकर जारी राष्ट्रीय हीनताबोध कहीं ज्यादा जिम्मेदार है। हिंदी इन दिनों शब्द संकोचन का भी शिकार बन रही है। युवाओं के लिए हिंदी के नाम पर अंग्रेजी के शब्दों को जबर्दस्ती ठूंसा जा रहा है। विदेशी और बाहरी शब्दों को लेने में कोई हर्ज नहीं है। उन्हीं शब्दों को स्वीकार किया जाना चाहिए, जो सहज ढंग से आ रहे हैं। इतना ही नहीं, उन शब्दों के लिए विदेशी या बाहरी शब्दों को भला क्यों स्वीकार किया जाए, जिनके लिए हिंदी में भी पहले से ही ग्राह्य और सहज शब्द मौजूद हैं।

यह सच है कि हिंदी की पढ़ाई दुनिया के करीब 180 विश्वविद्यालयों में हो रही है, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के बैनर तले आदान-प्रदान के तहत दुनिया के तमाम विश्वविद्यालयों में पढ़ाने जा रहे हैं या पढ़ा रहे हैं। ब्रिटेन के रूपर्ट स्नेल, रस के पीए बारान्निकोव, सेनेगल के ओदोलेन स्मेकल, पोलैंड के क्षितोफ मॉरिया ब्रिस्की, जर्मनी के लोठार लुत्से और बारबरा लोत्स जैसे विद्वानों के होने के बावजूद हिंदी की वैसी व्याप्ति अगर दुनिया में नहीं बन पाई है, तो इसकी बड़ी वजह हिंदीभाषियों की राजनीतिक ताकत की वैसी व्याप्ति नहीं हो पाना, जैसा अंग्रेजी, फ्रांस या स्पेनिशभाषियों का रहा है। आज अंग्रेजी अगर दुनिया भर में फैल चुकी है तो उसकी बड़ी वजह एक दौर में तकरीबन पूरी दुनिया पर रहा अंग्रेजों का शासन रहा। जिन देशों में ब्रिटेन का शासन रहा, उन उपनिवेशों में अंग्रेजी बड़ी तो जिन देशों में फ्रांस या स्पेन का शासन रहा, वहां फ्रेंच और स्पेनिश का बोलबाला है। इससे सावित होता है कि भाषाओं के विस्तार में राजनीति भी बड़ा औजार बनती है। फिर ताकतवर लोगों की भाषाएं भी ताकतवर मानी जाती हैं इसीलिए उन्हें सीखने के लिए लोग आकर्षित होते हैं, ताकि उस भाषा के जरिए राजनीतिक और अर्थिक ताकत हासिल की जा सके।

हिंदी में श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विदेश मंत्री के तौर पर भाषण देकर उम्मीद जताई थी कि हिंदी की भी वैसी ही ताकत बढ़ेगी, जैसी आज अंग्रेजी, फ्रेंच या स्पेनिश की है। उसे संयुक्त राष्ट्रसंघ के स्तर पर वैसी ही मान्यता मिलेगी, जैसी बाकी छह भाषाओं को प्राप्त है लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। यह बात और है कि प्रधानमंत्री रहते संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा को अटल बिहारी वाजपेयी ने साल 2000 और 2002 में भी हिंदी में संबोधित किया और प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी भी 2014 में संयुक्त राष्ट्रसंघ को हिंदी में संबोधित कर चुके हैं। 24 सितंबर 2017 को विदेश मंत्री सुषमा स्वराज भी हिंदी में संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में भारत का पक्ष रख चुकी हैं। सुषमा प्रभावशाली वक्ता हैं, असरदार राजनेता हैं इसलिए उनकी बात वैश्विक पटल पर सुनी भी गई। मौजूदा प्रधानमंत्री हिंदी में ही विमर्श और चर्चा पर जोर देते हैं चाहे वे न्यूयार्क जाएं या लंदन या मेलबर्न

या कहीं और, हर जगह वे भारतीयों को हिंदी में ही संबोधित करते हैं। चूंकि अब भारत परमाणु महाशक्ति है, तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था वाला देश है, इसलिए प्रवासी भारतीयों के बीच हिंदी में दिए भारतीय प्रधानमंत्री के भाषणों को भी गंभीरता से कवर करता है। भारत की बढ़ती महत्ता ही है कि अमेरिका के लोकप्रिय राष्ट्रपति तक नमस्कार, और सेनेरिटा, बड़े-बड़े देशों में...जैसे हिंदी शब्दों का इस्तेमाल करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। ऐसे माहौल में उम्मीद बढ़ना स्वाभाविक है कि हिंदी की ताकत बढ़ेगी, उसकी स्वीकार्यता भी बढ़ेगी। लेकिन ऐसा होता नजर नहीं आ रहा है। हिंदी की व्याप्ति बढ़ाने में मददगार उसका संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनना ही होगा। इसके लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में संशोधन कराना होगा और इसके 193 सदस्य देशों में से आधे से अधिक यानी करीब 97 देशों का समर्थन चाहिए होगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ का कामकाज हिंदी में करने के लिए कम से कम 100 करोड़ रुपये की आर्थिक सहायता भी संयुक्त राष्ट्रसंघ को देनी होगी हालांकि इसका फायदा भारत के साथ मॉरीशस, सेनेगल, फिजी, नेपाल, पाकिस्तान और त्रिनिदाद जैसे हिंदी मूल वाले देशों को भी होगा। यह बात और है कि अपनी छोटी और कमजोर अर्थव्यवस्थाओं के चलते उनका इसमें सहयोग देना संभव नहीं है लेकिन उनका समर्थन हिंदी की ताकत बढ़ाने में सहयोगी हो सकता है।

वैसे जिस तरह हिंदी की तरफ दुनिया का ध्यान जा रहा है, उससे उम्मीद भी बनती है। वेगवती बाढ़ के बाद ज्यादातर बार पीछे उपजाऊ मिट्टी छोड़ जाती है जिसमें बगैर खाद-पानी के बंपर पैदावार होती है। उम्मीद की जानी चाहिए कि नई आर्थिक जिस तरह अपने लिए नई-नई तकनीकें खोज लाई और इन तकनीकों ने दुनिया को बदल डाला, वैसा ही कुछ हिंदी के साथ भी होगा और वह हिंदी की ताकत, वैश्विक व्याप्ति बढ़ाने में मददगार होगा।

●

भाषा, सूचना प्रौद्योगिकी, कोशकारिता और अनुवाद

अरविंद कुमार

मानव का उद्भव पहले कहां हुआ इस पर बहस हो सकती है, लेकिन यह निर्विवाद है कि भाषा के आविष्कार ने उसे संसार का सबसे शक्तिशाली जीव बना दिया। विशाल और हिंसा जीवों पर हमारी विजय में भाषा का योगदान नकारा नहीं जा सकता। आज की शब्दावली में हम कह सकते हैं कि भाषा का आविष्कार सूचना प्रौद्योगिकी की ओर मानव का पहला सशक्त चरण था।

भारत को और संस्कृत भाषा को संसार के सब से पहले दार्शनिक ग्रंथ वेदों का रचयिता होने का गौरव प्राप्त हुआ। आरंभ में वेद मौखिक थे। वेदों के एक एक शब्द का सही उच्चारण और हर शब्द का सही अर्थ पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखने के लिए एक नितांत अनोखी प्रणाली विकसित की गई- समाज का एक पूरा वर्ग (वेदज्ञ ब्राह्मण) इस महा उद्यम के लिए मनोनीत कर दिया गया! इस वर्ग को ‘सूचना प्रौद्योगिकी’ की पहली जैव मशीन और स्मृति चिप’ कहना अनुचित न होगा।

तभी से शब्द संकलन और कोश निर्माण की आवश्यकता सर्वमान्य हो गई। संसार के पहले थिसारस प्रजापति कशयप के ‘निघंटु’ में अठारह सौ वैदिक शब्द विषय क्रम से संकलित थे। महर्षि यास्क ने ‘निरुक्त’ में ‘निघंटु’ सहित अन्य वैदिक शब्दों की विशद व्याख्या की। यह संसार का पहला शब्दार्थ कोश और तत्कालीन समाज का विश्वकोश यानी इनसाइक्लोपीडिया है।

लिपि का अन्वेषण सूचना प्रौद्योगिकी का और भाषाओं के विकास का अगला युगांतरकारी चरण था। मिस्र की ‘जन’ और ‘धर्म’ लिपियां, चीन और जापान की चित्रलिपियां प्रतीकों पर आधारित थीं। उनसे बढ़कर यूरोप और मध्य एशिया की ग्रीक, सिरिलिक, रोमन और हिन्दू लिपियां अक्षरों पर आधारित थीं। उन्हीं की तरह की लेकिन दाहिने से बाएं लिखी जाने वाली अक्षर लिपि खरोष्ठी का प्रादुर्भाव गांधार में हुआ। इन सभी अक्षर लिपियों में प्रत्येक वर्ण किसी धनि का प्रतीक तो होता है, लेकिन इनके कई स्वरों और व्यंजनों का उच्चारण परिवर्तनशील होता है, जैसे रोमन के ‘सी’ या ‘जी’ अक्षर। यही नहीं, इनकी वर्णमालाओं में वर्णों का कोई पारस्परिक सुनिश्चित वैज्ञानिक क्रम भी नहीं है।

ब्राह्मी लिपि का प्रादुर्भाव विश्व को भारत की एक अन्य महान देन है। इसमें हर वर्ण का उच्चारण सुनिश्चित था। पाणिनि ने सभी स्वरों ‘अ आ इ ई उ ऊ ऋ ल ए ऐ ओ अं अः’ और व्यंजनों को ‘कवर्ग’, ‘चवर्ग’ आदि ‘कचटतप’ वर्गों में और उन के बाद के ‘यरलव’ और ‘शषसह’ क्रम से संकलित कर के वर्णमाला को वाचा तंत्र में उच्चारणानुसार सुनिश्चित आधार प्रदान किया। इसी से निकलीं देवनागरी सहित भारतीय तथा तिब्बती से थाई तक सभी लिपियां।

यह सूचना प्रौद्योगिकी का अगला बड़ा चरण था। इस लिपि के ही आधार पर ही इसकी भाषाओं में डाटाबेस बनना संभव हुआ, तथा ये सभी लिपियां यूनिकोड में समाई जा सकीं।

लिपि काल में बने कोशों में शिरोमणि ग्रंथ के तौर पर आया- अमरसिंह कृत ‘नामलिंगानुशासन’ या ‘त्रिकांड ।’ अपनी विलक्षणता के कारण आरंभ से ही यह थिसारस अपने रचेता के नाम पर ‘अमरकोश’ ही कहलाया। उस समय हस्तलिखित प्रतिलिपियां आसानी से नहीं मिलती थीं इसलिए सभी छात्रों को ग्रंथ कंठस्थ करने होते थे। स्मरण में सुविधा के लिए ऐसे सभी कोश छंदबद्ध होते थे। किसी श्लोक का एक पद या शब्द याद आते ही तत्संबंधी पूरा प्रकरण जबान पर आ जाता था। इस तरह याददाश्त ही अनुक्रम खंड का काम करती थी।

‘अमरकोश’ की शैली से प्रभावित हो कर ही अमीर खुसरो ने फारसी-हिंदी ‘खालिकबारी’ की रचना की। शायद यह संसार का पहला द्विभाषी थिसारस है। इसमें हिंदी के साथ साथ अरबी फारसी के शब्द समूह विषय क्रम से आते थे। इस तरह यह सूचना प्रौद्योगिकी का एक और कदम कहा जा सकता है।

लिपि के अन्वेषण के बाद सब से बड़ी क्रांति हुई : 1450 में जर्मनी में लुहार जोहानिस गुटेनबर्ग द्वारा मुद्रण तकनीक का अन्वेषण और परिष्कार। इसे हम सूचना प्रौद्योगिकी की लंबी छलांग कह सकते हैं। इस का दूरगामी परिणाम हुआ अकारादि क्रम पर आयोजित अनेक कोशों का उद्भव।

- इंग्लैंड में 1755 में सैमुअल जानसन का पहला इंग्लिश कोश ‘ए डिक्शनरी आफ द इंग्लिश लैंग्वेज’ छपा।
- 1828 में इससे कहीं आगे बढ़कर और बड़ा नोआह वैब्स्टर का ‘ऐन अमेरीकन डिक्शनरी आफ द इंग्लिश लैंग्वेज’ छपा।
- 1852 में आया आधुनिक संसार का रोजेट का ‘थिसारस आफ इंग्लिश वड्स ऐंड फ्रेजेज क्लासीफाइड ऐंड अरेंज सो ऐज टु फैसिलिटेट द ऐक्सप्रैशन आफ ऑइडियाज ऐंड ऐसिस्ट इन लिटरेरी कंपोजीशन ।’

भारत में आरंभिक पुस्तकें बाइबिल के अनुवाद थे। मैं बात कोशों तक ही सीमित रखूँगा। कुछ बहुत महत्वपूर्ण मुद्रित भारतीय (संस्कृत तथा हिंदी और इंग्लिश) कोश इस प्रकार हैं :

- ‘शब्द कल्पद्रुम’ (संस्कृत कोश- आठ खंड), राजा राधाकांत देव, पहला भाग 1822; आठवां अंतिम 1856
- ‘संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी’, सर मोनिअर मोनिअर-विलियम्स (1872)
- ‘अ प्रैक्टिकल संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, वामन शिवराम आप्टे (1889)
- ‘संस्कृत-हिंदी कोश’, वामन शिवराम आप्टे
- ‘हिंदी शब्द सागर’ (ग्यारह खंड), श्याम सुंदर दास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा
- ‘बृहत् हिंदी कोश, ज्ञानमंडल वाराणसी, पहला संस्करण 1954-55 : तब से इसके कई संस्करण होते रहे हैं और अनेक प्रधान संपादक। मेरी राय में हिंदी वर्तनी के लिए यह मानक कोश है। अरबी फारसी शब्दों के नुक्ते इसके मुख्यशब्द में बोल्ड टाइप के कारण नहीं छपे हैं, लेकिन लाइट टाइप में हैं। नुक्ते वाले शब्दों के लिए प्रामाणिक कोश है-
- उर्दू-हिंदी शब्दकोश, मुहम्मद मुस्तफा खां ‘मदाह’, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ।

- हिंदी विश्वकोश, कमलापति निपाठी तथा सुधाकर पांडेय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा
- Comprehensive English-Hindi Dictionary, डॉ. रघुवीर
- केंद्रीय हिंदी निदेशालय के बीसियों तकनीकी शब्दकोश
- अंग्रेजी-हिंदी कोश, फादर कामिल बुल्के
- इंग्लिश-हिंदी कोश, डॉ. हरदेव बाहरी
- मीनाक्षी हिंदी-अंग्रेजी कोश, डॉ. ब्रजमोहन- डॉ. बदरीनाथ कपूर
- Oxford Hindi-English Dictionary, आर.एस. मैकग्रेगर

मेरे अपने कोश सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा निर्मित हैं। ये आधुनिक भारत के पहले थिसारस हैं। कोश में हर शब्द अकारादि क्रम से छपा होता है, जैसे- कक्ष, कक्षा, कगार। थिसारस में शब्दों का संकलन अकारादि क्रम से न होकर कोटि क्रम से होता है, जैसे इंद्रिय के बाद ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय या फिर कड़वा स्वाद के बाद कसैला स्वाद, खट्टा स्वाद, चरपरा स्वाद, नमकीन स्वाद और मीठा स्वाद। यह शब्दों के अर्थ तो नहीं देता, लेकिन किसी एक शब्द के अनेक पर्यायवाचियों से शब्द का अर्थ आसानी से समझ में आ जाता है।

शब्द संकलन और अंकन का काम सबसे पहले मैं ने कार्डों पर शुरू किया था। साठ हजार कार्डों पर हम लगभग दो लाख साठ हजार शब्द या अभिव्यक्तियां रिकार्ड कर चुके थे। इस तरह से काम करते करते कई समस्याएं खड़ी हो जाती थीं। पहली समस्या थी कि कई बार हम पहले किया काम फिर से दोहराने लगते थे- क्योंकि सारा काम याद रख पाना आसान नहीं था। हम पहले भी यह काम कर चुके हैं, यह जांचने का कोई तरीका नहीं था। इस दोहराव से बचने के विकल्पों पर मैं विचार करता रहता था। छपाई की समस्या भी मेरे सामने सुरक्षा की तरह मुंह बाए खड़ी रहती। मैं छापेखाने में काम कर चुका था। छापेखाने में जो समस्याएं आ सकती हैं, उनका ध्यान आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते।

1992 में एक दिन मेरे बेटे डॉ. सुमीत कुमार ने कहा- ‘इन सभी समस्याओं का एकमात्र हल है कंप्यूटर- यानी आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी।’

सूचना प्रौद्योगिकी से तात्पर्य है कंप्यूटर हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेअर के अनुप्रयोग से आंकड़ों के संकलन, प्रबंधन, संपादन, सुरक्षण, परिवर्तन, पुनर्प्राप्ति और मैनिपुलेशन द्वारा बांछित रूप में आउटपुट अथवा उसके द्वारा प्रदत्त आदेशों के द्वारा कार्रवाई या फिर दूरसंचार माध्यमों (जैसे ईमेल, इंटरनेट, आदि) से विश्व स्तर पर सूचना का आदान-प्रदान।

सुमीत ने तय किया कि थिसारस बनाने के लिए डाटाबेस बनाना होगा। तब हिंदी में डाटाबेस बनाने की परिकल्पना तक किसी ने नहीं की थी। उन दिनों कंप्यूटर के लिए आरंभिक किस्म के हिंदी फोटों से टाइपसैटिंग तो होती थी, लेकिन डाटाबेस नहीं बन सकते थे। पता चला कि कुछ महीने पहले पुणे स्थित सी-डैक ने जिस्ट कार्ड (gist card) नाम का उपकरण बनाया है। इसकी सहायता से ब्राह्मी आधारित सभी लिपियों में डाटाबेस बन सकता है। इसे कहते हैं तकनीक और विचार का संगम और सुसंयोग! सही समय पर सही कर्मियों के हाथ सही तकनीक लग जाना!

तकनीकी संकट : मेरे काम में बाधाएं पहले भी आ चुकी थीं- जैसे, घर में बाढ़, मेरा दिल का दौरा, पीलिया का आक्रमण आदि। पर काम पूरा होते होते तकनीकी संकट हमारे लिए सबसे भारी था।

तब हम लोग बैंगलुरु में थे। अंतिम समय हमें सुमीत से तकनीकी सहायता प्रतिदिन आवश्यक होती थी। वहाँ हमने ड्रोला भारी संकट। कंप्यूटर पर संकट हो सकते हैं। उनमें से सबसे बड़ा है डाटाबेस वाली हार्ड डिस्क भ्रष्ट हो जाना। इससे बचने के लिए बैकअप करते रहना चाहिए। तब ऐन ड्राइव या एक्टर्नल डिस्क पर बैकअप का प्रावधान नहीं था और मेरा डाटा इतना बड़ा था कि सवा पांच इंची 19 (उन्नीस) फ्लौपियों पर बैकअप हो पाता था इसलिए मैं हर रोज बैकअप करने से कठराता रहता था। हुआ यह कि काम पूरा होने से तीन चार दिन पहले हमारी हार्डडिस्क फेल हो गई! कई कंप्यूटर विशेषज्ञों की शरण में गए। डाटा के पुनरुद्धार की कोई संभावना नहीं निकली। मेरी तो जान ही निकल गई। ऊपर का दम ऊपर, नीचे का दम नीचे। चौबीस साल का काम चौपट! फिर से यह सब करने की हिम्मत नहीं थी। लगा कि अब मेरा सारा काम गया!

अब तलाश हुई पुराने बैकअपों की। पांच छह दिन पहले का एक बैकअप मिल गया। नई हार्डडिस्क पर वह डाला गया। पिछले कुछ दिन जो किया था- वह सब मैं भूल गया था। वह क्या था, अब पता नहीं। जो बचा था वही काफी था। मेरी जान में जान आई।

याददाश्त से कुछ नई कोटियाँ और शब्द डाले। डाटा को पुस्तक रूप में परिवर्तित करने की विधि सुमीत तैयार कर चुका था। आदेश देने पर कंप्यूटर ने डाटा में से चयनित 1,68,000 शब्दों का आउटपुट करके ‘समांतर कोश’ के संदर्भ खंड और अनुक्रम खंड तैयार कर दिए। कुल मिला कर अठारह सौ पेज। प्रकाशक के सामने न कंपोजिंग की इल्लत, न प्रूफ रीडिंग का झांझट! कैमरा वर्क कराओ... और छाप दो। 24-25 सितंबर 1996 को दोनों खंडों के प्रिंटआउट नेशनल बुक ट्रस्ट के हवाले किए गए। 13 दिसंबर 1996 की पूर्वाह्न हम ने तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के करकमलों में दोनों खंड प्रस्तुत कर दिए!

अब हम डाटा को द्विभाषी बनाने में जुट गए। अकेली हिंदी के लिए लिखी गई फाक्स-प्रो ऐप्लीकेशन में इंग्लिश शब्द जोड़ने के लिए मूल प्रविधि में सन् 1997 में परिवर्तन किया गया। आधार बना हमारा हिंदी वाला डाटाबेस। जिस तरह हिंदी थिसारस बनाने के लिए रोजेट में अनेक शब्दकोटियाँ नहीं थीं, उसी तरह हमारे डाटा में अनेक इंग्लिश शब्दकोटियाँ नहीं थीं। वे किस प्रकार कहाँ जोड़ी जाएं, इसके लिए भी काफी सोच-विचार किया गया? इंग्लिश शब्दों के स्रोत के लिए ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी और वैक्स्टर के कोश चुने गए। उनका एक एक शब्द परखकर हमारे पुराने डाटा में उपयुक्त जगह शामिल करने के लिए प्रावधान किया गया। 2007 में यह काम पूरा हुआ। उसी साल पेंगुइन इंडिया की ओर से ‘द पेंगुइन इंग्लिश-हिंदी/हिंदी-इंग्लिश थिसारस एंड डिक्शनरी’ नाम से तीन विशाल खंडों में प्रकाशित हुई।

इस बीच हमारे दो और हिंदी कोश आ चुके थे- (1) ‘अरविंद सहज समांतर कोश’- अकारादि क्रम से संयोजित थिसारस, और (2) ‘शब्देश्वरी’- भारतीय पौराणिक नामों का थिसारस।

और सितंबर 2013 में आया ‘समांतर कोश’ का परिवर्धित-परिष्कृत संस्करण ‘वृहत् समांतर कोश’। प्रकाशक वही नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया।

सफर की पांचवीं मंजिल की ओर हमारा प्रयाण था : इंटरनेट पर अरविंद लैमिसकन पहुंचाने की तैयारी। 2008 में सुमीत ने तय किया कि डाटा को फाक्स-प्रो से निकालकर विजुअल बेसिक की सहायता से माइक्रोसाफ्ट नैट प्लैटफार्म में लाना चाहिए। अतः डाटाबेस को ऐमएस ऐक्सैस

(MS Access) में इस तरह परिवर्तित किया गया कि वह ऐसक्यू लाइट (SQLite) में ढाला जा सके। यह डाटा ऐमएस विंडोज और लाइनक्स (Linux) ही नहीं हर प्लेटफार्म पर चलता है।

जून 2011 में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की हिंदी अकादमी ने मुझे शलाका सम्मान प्रदान किया। उसी दिन सुमीत ने अरविंद लैक्सिकन (www.arvindlexicon.com) लांच कर दिया।

बाद में इसी तकनीक के सहारे आए मेरे कोश ‘अरविंद वर्ड पावर : इंग्लिश-हिंदी’ और ‘अरविंद तुकांत कोश’।

थिसारस के लिए डाटाबेस संदर्भ क्रम से संयोजित शब्दों का संकलन मात्र होता है। वे शब्द किसी लेख या पुस्तक के रूप में नहीं होते। इसके लिए डाटाबेस में हर ‘कोटि’ और ‘शब्द’ के साथ अनेक प्रकार के चयनांक डालने होते हैं।

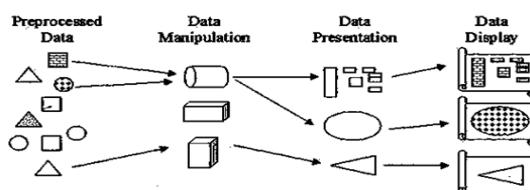
किसी एक प्रकार के या बिलकुल भिन्न प्रकार के थिसारस के लिए डाटा का आउटपुट की अलग और पेचीदा विधियां बनानी होती हैं। शीर्षक, उपशीर्षक तथा शब्दों के फौट व पैराग्राफ विधि के संकेत भी इंसर्ट किए जाते हैं। इन सब के लिए अलग अलग कंप्यूटर प्रोग्राम लिखे जाते हैं।

उदाहरण के लिए ‘समांतर कोश’ का प्रथम खंड संदर्भ क्रम सामान्य पुस्तक के रूप में है। इस के आउटपुट के लिए लिखित विधि (कार्यक्रम) अलग है। और उसी डाटा से ‘समांतर कोश’ का द्वितीय खंड इडैक्स है। यह ‘अनुक्रम खंड’ बनाने की विधि भिन्न है या फिर ‘अरविंद सहज समांतर कोश’ का आउटपुट पूरी तरह अकारादि क्रम (कोशक्रम) से है। उसकी विधि बिलकुल ही अलग तरह की है। ‘तुकांत कोश’ के लिए विधि लिखते समय पहले हर शब्द जाती है।

अब द्विभाषी कोश की बात लें। ‘पेंगिन’ वाला तीन भागों का कोश बनाया तो उसके तीनों भागों के लिए तीन विधियां बनाई गईं। और ‘अरविंद सहज समांतर कोश’ के ढर्णे पर ‘अरविंद वर्ड पावर : इंग्लिश-हिंदी’ की विधि और भी अलग थी।

डाटा मैनिपुलेशन क्या होता है, एक ही डाटाबेस से किस प्रकार कई तरह के आउटपुट लिए जा सकते हैं, यह दर्शाने के लिए ग्राफिक दिखाना जरूरी है।

तो देखिए कंप्यूटर में हमारे डाटा के आधार पर उसके विभिन्न प्रकार के आउटपुट। हर चित्र के लिए एक शब्दकोटि- सफलता- को चुना है, ताकि बात आसानी से समझ में आ जाए।



प्रसंस्कृत डाटा → डाटा मैनिपुलेशन → डाटा प्रस्तुति → डाटा प्रदर्शन

अब देखिए कंप्यूटर में हमारे डाटा के आधार पर उसके विभिन्न प्रकार के आउटपुट। हर चित्र के लिए एक शब्दकोटि- सफलता- को चुना है, ताकि बात आसानी से समझ में आ जाए।

512. सफलता

- १ न सफलता, अभियुक्ति, अर्थ सिद्धि, इत्याप्त, उद्देश्य वृत्ति, प्राणि, कामवादी, कामरानी, कृतकार्यता, कृतर्थता, चरितार्थता, पहुँच, प्रयोजन सिद्धि, प्राणि, प्रताड्यावी, फल प्राप्ति, फल सिद्धि, रिक्षे, लक्ष्मी, लक्ष्य सिद्धि, लाभ, विजय, वृद्धि, शावकामी, श्री, संकल्प सिद्धि, सिद्धकार्यता, सिद्धि, सौभाग्य, समर्पण सिद्धि.
 - २ कर्मजीवन, अभूतपूर्व सफलता, अभूतपूर्व सिद्धि, झंडा, रिकार्ड (अं).
 - ३ क्षे सफल होना, उद्देश्य पूरा होना, काम निकलना, काम बनना, काम होना, खेल बनना, जब मिलना, पुजना, फलना, फलीभूत होना, बनना, झंडा पार होना, मतलब पूरा होना, लक्ष्य प्राप्त होना, सफलता मिलना.
 - ४ कर्मजीवन स्वाधीन करना, झंडा गाढ़ना, रिकार्ड बनाना.
 - ५ वि सफलताप्रद, काटार, सिद्धिकर, सिद्धिद, सिद्धिपृष्ठ.
 - ६ सफल, कामगार, कामवाद, कामरान, कृतकार्य, कृतकृत्य, कृतर्थ, चरितार्थ, धन्य, निहाल, पूर्णकाम, पूर्णमनोरथ, प्राप्तकाम, प्राप्तार्थ, प्रताड्यंद, परिता, बासुपाद, लक्ष्यकाम, लक्ष्यलक्ष्य, विजयी, शावकाम, संपर्य, सफलमनोरथ, सिद्ध, तिर्थार्थ.
 - ७ सफलताकारी, सफलकाम, सफलतार्थी.
 - ८ क्षेवि सफलतापूर्वक, अकृता, पूरी तरह.

513. असाफलता

- | | | |
|---|--------|---|
| 1 | मं | असरकलता, अझूतकार्या, अनुप्राणि, अर्थ धंडा, आसेडि, कार्प आसेडि, नाकामयाची, नाकामी, निराशा, निष्पक्षता, महामी, विषकलता, व्यर्थाता, विडिलिनता, स्फुरन, डान, डार. |
| 2 | छि | असरक छाना, तिडि न पिलाना. |
| 3 | | असरक लौटना, द्याली धाय लौटना, बैरंग लौटना. |
| 4 | वि | असरक, अझूतकार्य, अझूतकार्य, असेतार्य, कोरा झोरेंदे, ड्राली, नाकाम, नाकामयाच, नामुदा, निराश, निष्पक्षावाद, निष्पक्षल, वंकार, वंकायादा, गमननारेथ, मदहम, व्यंय, विषकल, विडिन, व्यर्थ, सूना (सूनी), स्फुरित, डारा (डारे), डॉन, हीनार्थ. |
| 5 | क्षिवि | असरकलत, वंकार, मूगा, दूधा, व्यर्स, व्यर्घता. |

↑ समांतर कोश में सफलता- तब सफलता और असफलता दो अलग शीर्षक थे।

द्विभाषी द पेंगुइन इंग्लिश-हिंदी हिंदी-इंग्लिश थिसारस ऐड डिक्शनरी में से सफलता

subterranean *adj* below ground, beneath the surface, *deep*, *nether*, *underground*, underneath.
भूगर्भस्थ विअंतर्राम, अधोतलस्थ, गहरा/गहरी, धरती के नीचे, धरतल के नीचे, धीम।
subterranean = hypogeal (**भूगर्भीय**).
subterranean world = nether realm (पाताल सोक).
subterrene = earth's interior (**भूगर्भी**).
subtext = mention (उल्लेख), proviso (परंतुक).
subtle = crafty (move) (कूटनीतिपूर्ण), crafty (person) (शास्त्रीय).
subtle move = masterstroke (उस्तादी हाथ).
subtlety = craftiness (कूटनीतिज्ञता).
subtract *v* decrease, deduct, lessen, take away.
बटाना कि कम करना, बटान करना, बैलेंस निकालना.
subtracted *adj* deducted, minus.
बटाया [बटाई] कि बटा [बटी], चिलोपित.
subtraction *n* deduction, reduction.
बटान कर्म संबटा, बटान.
suburb *n* outlying district, outskirts, ▲weekly market, ▼midtown.
उपनगर सं नगरोपांत, शाखा नगर, सर्वां, ▲नगर, ▲पैठ, ▼नगर मुख्य भाग.
suburban *adj* away from the city, beyond the city limits.
उपनगरीय विउपनगर विषयक, उपर्योगिक.

उपनगरीय विउपनगर विषयक, उपर्योगिक करना, सिर छड़ना, ▲आंदे मनाना, ▲कर दिखाना, ▼अनुचीर्ण होना, ▼असफल होना.
succeed = achieve (कर दिखाना), fulfil one's ambition (महत्वाकांक्षा पूरी करना), inherit (उत्तराधिकार में मिलना), pass an examination (उत्तीर्ण होना), prosper (समृद्ध बनना), win (जीतना).
succeed in finding out = discover (बोल पाना).
succeeding *adj* coming behind, following, going behind, ▼preceding.
अनुगामी वि पञ्चगामी, पञ्चामी, ▼पुरोगामी.
succeeding = latter (उत्तरवर्ती).
succeed to = inherit (उत्तराधिकार में मिलना).
success *n* accomplishment, achievement, attainment, breakthrough, favourable outcome, fruition, fulfilment, successfulness, triumph, victory, ▲good luck, ▲hard work, ▲plaudit, ▲prize, ▲successful person, ▲victory, ▲way to success, ▼defeat, ▼failure.
सफलता सं अभीष्ट सिद्धि, उपलब्धि, कामयाची, कामरानी, प्रयोजन सिद्धि, फलहसाची, फलसिद्धि, मनोरथपूर्ति, लक्ष्यप्राप्ति, विजय, संकल्पपूर्ति, साकल्य, सिद्धकार्यता, ▲परिग्रम, ▲पुरस्कार, ▲विजय, ▲शावाशी, ▲सफलता मार्ग, ▲सफल व्यक्ति, ▲सौभाग्य, ▼असफलता, ▼पराजय.
success = successful person (सफल व्यक्ति), victory (विजय).
successful *adj* blessed, fortunate, going great guns, made, on top, on top of the world,

↑ सफलता का इंग्लिश के ऐल्फाबैटिकल क्रम से आउटपुट 'Arvind Word Power: English-Hindi' से।

succeed in improvisation
succeed in improvisation (जुगत सफल ढाना) 508.20
succeed to
inherit (उत्तराधिकार में मिलना) 589.14
success
big deed (कारनामा) 502.26
mastery (सिद्धि) 325.11
passing an examination (उत्तीर्णता)
334.30
success (सफलता) 507.1
successful person (सफल व्यक्ति)
507.2
victory (विजय) 837.1
wish fulfilment (इच्छापूरण) 380.1
success failure 507
successful
fortunate (सौभाग्यशाली) 67.34
pass (उत्तीर्ण) 334.62
profitable (लाभप्रद) 607.22
prosperous (समृद्ध) 255.11
reached the destination (गंतव्यप्राप्त)

सफलता
इच्छापूर्ति (wish fulfilment) 380.1
उत्तीर्णता (passing an examination)
334.30
जीज प्राप्ति (discovery) 758.8
विजय (victory) 837.1
सफलता (success) 507.1
सिद्धि (mastery) 325.11
सफलता अवश्यभावना
सफलता अवश्यभावना (surety of success) 507.4
सफलता अवश्यभाविता
सफलता अवश्यभावना (surety of success) 507.4
सफलता असंभावना
असफलता अवश्यभावना (surety of failure) 507.9
सफलता असफलता 507
सफलताकांक्षा
कैरियरिज्म (careerism) 613.9
सफलताकांक्षी
कैरियरिस्ट (careerist) 613.10

↑ उसी डाटाबेस में से इंग्लिश-हिंदी और हिंदी-इंग्लिश संस्करणों के इडेक्स :

लता, आलता, तत्कालता, मुगालता, दाघालता, विशालता, रसालता,
पंकिलता, कुटिलता, जटिलता, शिथिलता, स्वजिलता, निद्रिलता, तंद्रिलता, स्नेहिलता,
अशीलता, मर्यादाशीलता, रथनाशीलता, कल्पनाशीलता, सुशीलता,
आकुलता, शोकाकुलता, व्याकुलता, पृथुलता, मृदुलता, विपुलता, बहुलता,
प्रतिकूलता, अनुकूलता, स्थूलता,
विकलता, पुष्कलता, सकलता, खलता, उच्छ्रुखलता, विशृखलता, अनर्गलता, अधलता,
विघलता, धंघलता, संघलता, निश्छलता, सधलता, राह घलता, निर्जलता, सजलता,
अटलता, शीतलता, समतलता, चपलता, कल्पलता, विफलता, निष्फलता, सफलता,
असफलता, |
निर्वलता, दुर्बलता, प्रबलता, शबलता, अम्लता, श्यामलता, शस्यश्यामलता, विमलता,
कोमलता, निर्मलता, विरलता, तरलता, सरलता, प्रफुल्लता, केवलता, उज्ज्वलता,
शाङ्कलता, धूपलता, नवलता, कशलता, सक्षलता, वृत्सलता, मासलता.

↑ सफलता का अकारांत यानी तकांत क्रम से आउटपट- ‘अरविंद तकांत कोश’ से :

Arvind Lexicon - Professional Edition

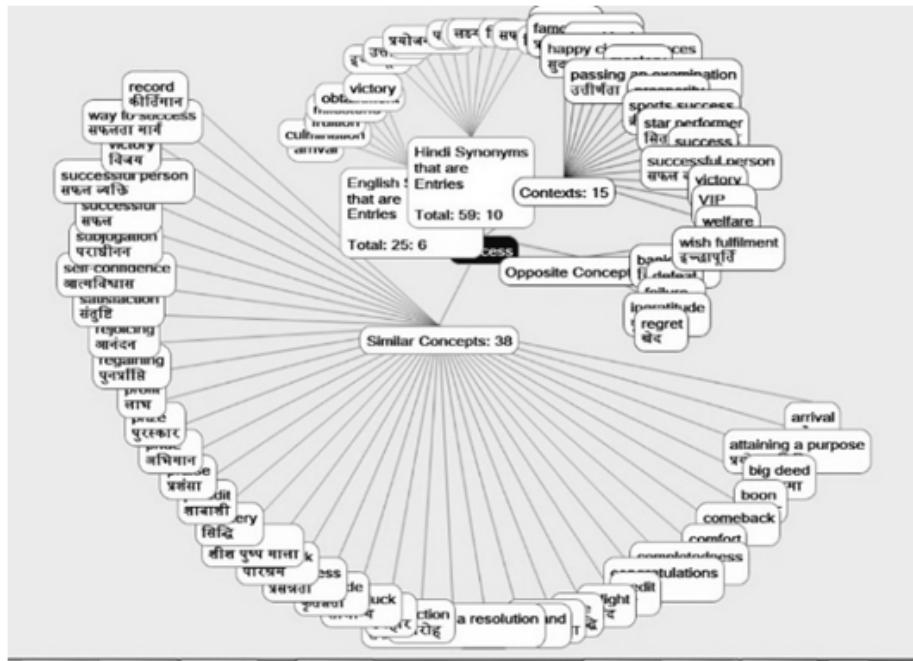
Select Subscription: Arvind Lexicon - Professional Edition ▾

Select Languages: Hindi English Hindi (Roman Script) Set Languages

Search for in language Hindi ▾

Rapid Dictionary सफलता सफलता - success - saphalatA समृद्धि - prosperity - samriddhi शिदि - mastery - siddhi सोबायर्ग - good luck - saubhAgya सफलता उपाय सफलता मार्ग - way to success - saphalatA mArya सफलता की कुंजी सफलता मार्ग - way to success - saphalatA	Synonyms Hindi सफलता अंश Synonyms सिद्धि, अर्थसिद्धि, आलचिय, इच्छापूर्ति, इन्द्रलभ, उत्तरव्यपूर्ति, उपलक्षिय, बहिर, कामयादी, कामरानी, कृतकार्यता, कृतार्थता, चरितार्थता, घनभावत्य, यूर्यु, पूर्वता, प्रयोजन सिद्धि, प्राप्ति, कृतहायादा, फलप्राप्ति, कलसिद्धि, करीभूतता, मनोरवपूर्ति, लक्ष्यपूर्ति, लक्ष्यान्ति, लक्ष्यवेष, लक्ष्यसिद्धि, लक्ष्यि, विजय, विजय सिद्धि, शिखर प्राप्ति, संकल्पपूर्ति, संकलन सिद्धि, सत्सिद्धि, सकलता, सर्वसिद्धि, साकलन, सिद्धकार्यता, सिद्धि सुखरुद्धे, स्वार्थसिद्धि, हर्ष विचय. Similar Entries कीर्तिमान, अभिमान, अत्मविश्वास, आनंद, आनंदन, इच्छापूर्ति, उत्तरव्यपूर्ति, उपहार, कर्मांक, कारणामा,	Entries सफलता success saphalatA कीर्तिमान record kirtmAna सफल होना succeed saphala honA सफल successful saphala सजाहता unsuccessful asaphala जसफल sahajatA	Headings सफलता और असफलता success & failure saphalatA aura asaphalatA रीति method ritii रीतिहीनता methodless ritihinata महजता ease sahajatA
--	---	---	---

↑ इंटरनेट पर अरविंद लैविसकन में सफलता



↑एक कमांड देने पर कंप्यूटर दिखा रहा है हमारे डाटा के आधार पर सफलता के भाषाई संदर्भ :
मशीनी अनुवाद : संसार की ताल्कालिक आवश्यकता

सूचना प्रौद्योगिकी की बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। दुनिया में सैकड़ों भाषाएँ हैं। आज मानव चाहता है संसार के सभी बाशिंदों से तत्काल संपर्क। इसके लिए जरूरी है तात्कालिक अनुवाद-इंस्टैट ट्रांसलेशन!

इसकी जरूरत द्वितीय विश्व युद्ध 1939-1945 के समय पैदा हुई।

एक तरफ जर्मनी की फौजें थीं। दूसरी तरफ तमाम मित्र राष्ट्रों की सेनाएं इंग्लिश चैनल लांघ कर जर्मनी पर हल्ला बोल रही थीं। सेनाएं क्या थीं, चूं चूं का मुरब्बा थीं। फ्रेंच, डच, इटालियन, स्पेनी, हिंदी, गोरखाली, तमिल... सभी को बोलने वाले सैनिक कंधे से कंधा मिलाकर लड़ रहे थे। समस्या यह थी कि अफसरों के आदेश सभी सैनिकों तक ठीक समय पर ठीक तरह कैसे पहुंचाए जाएं तब समझ में आया कि अंतरराष्ट्रीय संप्रेषण में भाषाओं की विविधता दीवार बनकर खड़ी हो जाती है।

इसी तरह जब संसद में पूरा भारत आमने सामने हो... या संयुक्त राष्ट्र संघ में दुनिया आपस में बात कर रही हो, तब भाषाएं बर्लिन की दीवार बनकर खड़ी हो जाती हैं। ऐसे में अनुभवी अनुवादकों को काम पर लगाया जाता है। वेशकीमती मशीनों के जरिए हर वक्ता के भाषण का ताल्कालिक अनुवाद श्रोताओं तक उन की भाषा में पहुंचाया जाता है।

तात्कालिक अनुवाद की जरूरत आज अंतर्राष्ट्रीय, राजनीतिक या सामरिक स्तर से आगे बढ़ कर आम आदमी तक पहुंच गई है। इसकी जरूरत व्यापक और तात्कालिक, अर्जेंट, इंपोर्टेंट, क्रिटिकल हो गई है। इंटरनेट ने सारी दुनिया के सभी जागरूक लोगों को कंप्यूटर के सामने बैठा दिया है। करोड़ों अरबों लोग तत्काल सब कुछ जानना चाहते हैं।

ऐसे में अनुवाद की और अनुवाद में तकनीकी क्रांति के बारे में बात करना जरूरी हो गया है- यानी मशीन के जरिए अनुवाद की संभावनाओं पर बात।

कुछ साल पहले तक मशीन से अनुवाद करवाने की बात करने वालों को पागल समझा जाता था- क्योंकि अनुवाद जैसे कामों के लिए मानवीय बुद्धि बेहद जरूरी होती है। अच्छे अनुवादक को दोनों भाषाओं के शब्दों के सांसारिक और सांस्कृतिक संदर्भ पता होते हैं। एक ही हिज्जे वाले शब्द के कई अर्थ होते हैं- यह वह जानता है। जैसे अंग्रेजी शब्द minute को लें। एक अर्थ यानी मिनट का अर्थ है घंटे का 60वां भाग। माइन्यूट के माने हो जाते हैं सूक्ष्म। शब्दों का यह भेद मशीनी अनुवाद में तभी सही हो सकता है जब कंप्यूटर का सांसारिक ज्ञान संपूर्ण हो।

अभी तक मशीनी अनुवाद बहुत अधिक चरे हैं। कुछ उदाहरण पेश हैं :

प्रसिद्ध इंटरनेट खोज साइट गूगल ने जो अनुवाद प्रक्रिया विकसित की है, मैंने उससे कुछ अंग्रेजी वाक्यों के हिंदी अनुवाद करने चाहे, एक बार बहुत पहले, फिर अब। परिणाम इस प्रकार रहे। पहले पैराग्राफ में है मूल वाक्य, उसके बाद वाला पैरा है उस का पिछला अनुवाद, फिर उस का अब का अनुवाद :

Once upon a time there was a beautiful jungle and it had lots of different nice animals living in it. The animals were happy and they didn't fight with each other.

पांच छह साल पहले : 'एक बार एक बार पर एक खूबसूरत जंगल था और यह विभिन्न अच्छा पशुओं में रहने का बहुत सारे थे। पशुओं खुश थे और वे एक दूसरे के साथ झगड़ा नहीं था।'

अब : 'एक समय की बात है कि वहां एक खूबसूरत जंगल था और यह उस में रहने वाले विभिन्न अच्छा जानवरों के बहुत सारे थे। जानवरों खुश थे और वे एक दूसरे के साथ लड़ाई नहीं थी।'

Once upon a time there lived an old man and his wife who had no children, and were very lonely. One day, the old man shaped a piece of wood and the old woman wrapped it up and rocked it like a baby.

पांच छह साल पहले : एक बार वहां पर है, और बहुत अकेले थे, जो नहीं बच्चों था एक बूढ़ा आदमी और उसकी पत्नी रहते थे। एक दिन, बूढ़े आदमी इसे लिपटे और एक बच्चे की तरह इसे हिल, लकड़ी का एक टुकड़ा और बूढ़ी औरत आकार।

अब : एक समय की बात वहां कोई बच्चे नहीं थे, जो एक बूढ़ा आदमी और उसकी पत्नी रहते थे, और बहुत अकेला थे। एक दिन, बूढ़े आदमी लकड़ी का एक टुकड़ा आकार का है और बूढ़ी औरत इसे लिपटे और एक बच्चे की तरह यह हिल।

Once upon a time in the country of Japan there lived two frogs.

पांच छह साल पहले : जापान के देश में एक बार वहां दो मेंढ़कों जिया।

अब : एक बार जब जापान के देश में एक समय पर वहां दो मेंढ़क रहते थे।

रुड्यार्ड किपलिंग की मूल इंग्लिश भाषा से हिंदी :

There was a time, when the elephant's nose was no bigger than a boot.

पांच छह साल पहले : एक समय था, कोई एक बूट से भी बड़ा है जब हाथी की नाक था।

अब : हाथी की नाक एक बूट से भी बड़ा था जब एक समय था।

अब देखिए हिंदी से अंग्रेजी मशीनी अनुवाद का उदाहरण :

‘मुझे एक अनोखी पुस्तक के बारे में पता चला । पुस्तक का पूरा नाम था रोजेट्स थिसारस आफ इंग्लिश वर्ड्स एंड फ्रेजेज’ ।

पांच छह साल पहले : ‘A unique book I came to know about. Full name of the book was Rojts Thisaras Af ,saM Frejhejh English Words.’

अब : "I found out a unique book about the course. Here is the full name of the book was a thesaurus of English Words and Frejhejh Rojts."

अब फेसबुक पर थाई भाषा से इंग्लिश अनुवाद :

“Have you ever seen purple mangoes. It’s the pollination of Nam Dok Mai mango and Hong Ju mango from Taiwan. Each purple Nam Dok Mai mango weights around 1kg. You can eat it raw (sour) with sweet & sour dip, or eat it ripe (sweet) with coconut milk sticky rice. Photo Cr : SongSirisak— via kapook dot com” (Automatically Translated)

आपने देखा कि धीरे-धीरे मशीनी अनुवादों में सुधार आ रहा है । तत्काल अनुवाद आज सभी देशों की जरूरत है ।

अमेरिका चाहता है सारे संसार के रेडियो टीवी अखबारों में किसी भी भाषा में छपे समाचार तुरंत इंग्लिश में मिल जाएं, टेलिफोनों पर एसएमएस पर कोई क्या खुफिया जानकारी भेज रहा है वह तत्काल प्रोसेस होकर काम की बात पलक झपकते मिल जाए ।

भारत चाहता है (एक) हम अपनी तमाम भाषाओं को एक साथ जोड़ सकें । (दो) इंग्लिश के आसरे न रहकर हम संसार के सभी देशों से अपनी हिंदी या अन्य भाषाओं के जरिए सारा वैज्ञानिक सामाजिक साहित्यिक ज्ञान बटोर लें ।

सबसे अच्छा रास्ता तो मशीन और आदमी का संगम है । साहित्यिक अनुवादों का काम आदमी के बिना चलना मेरी राय में असंभव है । इसमें जरूरत होती है एक रचनात्मक कल्पनाशील मस्तिष्क की । साहित्यिक या पेचीदा कानूनी दस्तावेजों के अनुवादकों को अपने कंप्यूटर पर मूल तथा लक्ष्य भाषाओं का कोई समृद्ध डाटाबेस उपलब्ध होना चाहिए, ताकि वह मूल भाषा के समकक्ष लक्ष्य भाषा के अनेक शब्दों में से अपनी पसंद का शब्द चुन सके लेकिन इंटरनेट पर हमें यंत्रकृत यानी मशीनी अनुवाद पर ही निर्भर रहना पड़ेगा ।

विशेषज्ञ स्टीव मैन (Steve Mann) ने कहा है- ‘आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महाअभियान चल रहा है । नई तरह के कंप्यूटरों को चलाने वाले प्रोग्रामों साफ्टवेयरों की परिकल्पना की जा रही है । ये सब भाषा की दीवारें ध्वस्त कर डालेंगे । जरा सी भी देरी से देशों और राष्ट्रों की तकदीर बदल सकती है । वह वक्त दूर नहीं जब मशीन अनुवाद करेगी । कुछ देर लगेगी- इसमें कोई संदेह नहीं ।’

हिंदी चली ‘निकष’ की ओर

अशोक चक्रधर

‘निकष’ परियोजना पर भोपाल में संपन्न 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन की अनुशंसा अनुपालन समिति की प्रत्येक बैठक में चर्चाएं हुईं। मॉरीशस में आयोजित होने वाले 11 वें विश्व हिंदी सम्मेलन में सूचना प्रौद्योगिकी से संबंधित विभिन्न मुद्राओं पर चर्चा करने के लिए माननीय विदेश मंत्री महोदया की अध्यक्षता में 28 जून 2018 को नई दिल्ली में आयोजित बैठक में अन्य मुद्राओं के अलावा ‘निकष परियोजना’ पर विस्तृत और गहन चर्चा की गई।

‘निकष’ की परिकल्पना को साकार करने की दिशा में आरंभ में केंद्रीय हिंदी संस्थान में पहल हुई थी। गगनांचल के 2015 के अंक में ‘निकष’ की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया था। अपनी प्रस्तुति में प्रो. अशोक चक्रधर ने स्पष्ट किया था कि ‘निकष’ अंग्रेजी और दूसरी विदेशी भाषाओं के समकक्ष हिंदी दक्षता परीक्षण का कार्यक्रम है। इसके माध्यम से परीक्षार्थियों के हिंदी भाषा से संबंधित चारों भाषाई कौशलों (श्रवण, भाषण, वाचन, लेखन) की दृष्टि से उनके आधारभूत भाषा ज्ञान और कौशल का परीक्षण किया जा सकता है और अंतरराष्ट्रीय भाषा दक्षता मानकों के अनुरूप उन्हें क्रेडिट्स प्रदान किया जा सकता है। निकष के माध्यम से निर्धारित परिसीमा में उनके हिंदी ज्ञान और कौशल की दक्षता का मूल्यांकन किया जा सकता है। दुनिया भर में विभिन्न विदेशी भाषाओं के अनेक अन्य भाषा दक्षता परीक्षण कार्यक्रम प्रचलित हैं, जैसे अंग्रेजी में TOEFL, IELTS, फ्रेंच में DELF / DILF DALF, स्पेनिश के DELE आदि।

दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन की एक महत्वपूर्ण अनुशंसा के अनुपालन के रूप में निकष परियोजना पर पिछले तीन वर्ष से चिंतन-मनन चल रहा है। अनुशंसा अनुपालन समिति में ‘संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी’ विषय का संयोजक होने के नाते प्रो. अशोक चक्रधर ने समय-समय पर प्रो. सुरेंद्र गंभीर, डॉ. विमलेश कांति वर्मा, डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा, डॉ. गिरीश्वर मिश्र, डॉ. आनंद वर्धन शर्मा, आदित्य चौधरी, डॉ. वशिनी शर्मा, अनूप भार्गव, डॉ. नंद किशोर पांडे, अनुपम श्रीवास्तव, डॉ. पुष्पक भट्टाचार्य एवं राजभाषा विभाग तथा आईटी मंत्रालय के अनेक विद्वानों से औपचारिक और अनौपचारिक चर्चाएं कीं। सीडैक के इकतीसवें स्थापना दिवस समारोह के बाद पुणे में ‘निकष’ के निर्माण को लेकर औपचारिक बैठक रखी गई जिसमें डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा भी थे। ‘निकष’ की संकल्पना पर सीडैक के महानिदेशक डॉ. हेमंत दरबारी और उनकी टीम के डॉ. अजय कुमार और

डॉ. करीमुल्लाह ने सघन रूचि दिखाई और सीडैक द्वारा बनाए गए अनेक सॉफ्टवेयर्स से परिचित कराया। अब लगने लगा कि सीडैक के प्रांगण में ‘निकष’ को साकार रूप मिल सकता है। केंद्रीय हिंदी संस्थान और महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, वर्धा से अकादमिक सहयोग का आश्वासन पहले ही मिल चुका था। पुणे से लौटकर विशेषज्ञों की एक समिति का गठन करने के बाद कार्य तेज गति से होने लगा।

माननीय विदेश मंत्री महोदया की अध्यक्षता में 28 जून 2018 को नई दिल्ली में आयोजित बैठक में डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा ने ‘निकष’ की विकास-यात्रा पर बहुत अच्छी तरह प्रकाश डाला और स्पष्ट किया था कि हिंदी ‘निकष’ के अंतर्गत तीन आयामों की परिकल्पना की गई है। शिक्षण, परीक्षण और प्रमाणीकरण। विदेशी भाषा के रूप में विदेशियों के लिए हिंदी शिक्षण के लिए विशेषज्ञ समिति ने चार पाठ्यक्रम रखने का प्रस्ताव किया था, लेकिन समयसीमा को देखते हुए माननीय विदेश मंत्री ने फिलहाल बोलचाल की हिंदी के आरंभिक पाठ्यक्रम (Beginners^{*} Conversational Course in Hindi) पर तत्काल काम शुरू करने पर अपनी सहमति प्रदान की। साथ ही इस बात पर भी सहमति प्रकट की थी कि, विदेश मंत्रालय द्वारा नामित विशेषज्ञ समिति सीडैक के तकनीकी सहयोग और ‘भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद’ के प्रशासनिक सहयोग से ‘निकष’ की विभिन्न गतिविधियों का संचालन करेगी।

इसका उद्देश्य विदेशियों को विदेशी भाषा के रूप में बोलचाल की हिंदी सिखाना होगा ताकि भारत में आने वाले विदेशी पर्यटक, व्यापारी और तीर्थयात्री भारत के तीर्थस्थानों और दर्शनीय स्थलों पर घूमते-फिरते आम लोगों से संवाद कर सकें। हिंदी के गीत-संगीत और बॉलीवुड की लोकप्रिय हिंदी फिल्मों और टी.वी. हिंदी सीरियल देखकर उनका आनंद लेते हुए उन पर चर्चा भी कर सकें।

इसके अलावा, माननीय विदेश मंत्री ने यह संकल्प भी प्रकट किया था कि भारत में छात्रवृत्ति लेकर आने वाले छात्रों को भारत में प्रवेश करने से पूर्व बोलचाल की हिंदी का कोर्स उत्तीर्ण करने के लिए आवश्यक निर्देश जारी करने पर विचार किया जाएगा।

बोलचाल की हिंदी की निर्धारित परीक्षा क्रेडिट पद्धति के आधार पर उत्तीर्ण करने पर सफल प्रतिभागियों को ऑनलाइन प्रमाण-पत्र दिए जाएंगे। राजभाषा विभाग और सी डैक द्वारा संचालित प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ की ऑनलाइन पद्धति के अनुरूप सीडैक के तकनीकी सहयोग से उक्त पाठ्यक्रम से संबंधित शिक्षण और परीक्षा ऑनलाइन होगी। स्काइप के माध्यम से बोलचाल की हिंदी का शिक्षण और परीक्षण किया जाएगा। आवश्यकतानुसार शिक्षण का माध्यम प्रारंभ में अंग्रेजी रखना होगा।

देवनागरी के अक्षर पहचान कर पढ़ने और लिखने का वैकल्पिक पैकेज होगा। इसके लिए राजभाषा विभाग और सीडैक द्वारा लीला हिंदी प्रबोध के लिए विकसित ट्रेसर मॉड्यूल का उपयोग किया जाएगा।

इस पाठ्यक्रम में सभी पाठ रोमन और देवनागरी दोनों ही लिपियों में होंगे। साथ ही उनका अंग्रेज़ी में अनुवाद भी होगा। मल्टी-मीडिया का व्यापक उपयोग किया जाएगा।

शिक्षण को रोचक बनाने के लिए EDUTAINMENT (अर्थात् Education through Entertainment) की तकनीक के माध्यम से हिंदी फ़िल्मों एवं हिंदी धारावाहिकों के गीतों और संवादों का भरपूर उपयोग किया जाएगा।

पाठ्यक्रम के विभिन्न पाठों को विभिन्न सामाजिक परिवेशों में संवाद शैली में क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाएगा। इन पाठों को तैयार करने के लिए हमने देश-विदेश के अनेक हिंदी विद्वानों और शिक्षाविदों से गहन संपर्क किया है।

1. सामग्री-निर्माण के लिए हमने पेन्सिल्वेनिया विवि के दक्षिण एशिया विभाग के अध्यक्ष और अमेरिकी सरकार के हिंदी सलाहकार प्रो. सुरेंद्र गंभीर, दिल्ली विवि के वरिष्ठ प्रोफेसर विमलेश कांति वर्मा, केंद्रीय हिंदी संस्थान के पूर्व प्रोफेसर वी.रा. जगन्नाथन की शिक्षण सामग्री का भी गहन अवलोकन किया है। डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा मल्टी-मीडिया सुविधाओं के साथ हिंदी भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में निरंतर सक्रिय हैं। प्रो. अशोक चक्रधर ने स्वयं विगत चालीस वर्ष में प्रौढ़ शिक्षा एवं नवसाक्षर कार्यक्रमों के लिए प्रवेशिका-निर्माण और फ़िल्म-निर्माण का कार्य किया है। मल्टीमीडिया प्रौद्योगिकी के आगमन के बाद अनेक प्रकार की रचनात्मक मल्टी मीडिया शिक्षण-सामग्री भी तैयार की और कराई है। ‘निकष’ के लिए प्रयास निरंतर किया जा रहा है।



हिंदी में आधुनिक अनुप्रयोगों का दौर

बालेंदु शर्मा दाधीच

अब अगर कोई व्यक्ति यह कहता है कि वह हिंदी में कंप्यूटर पर कामकाज करने में दिक्कत होती है तो मुझे अफसोस भी होता है और हँसी भी है। कारण, हिंदी अब सामान्य कामकाज की बुनियादी चुनौतियों से बहुत आगे बढ़ चुकी है और मुझे नहीं लगता कि अब हमें टाइपिंग, फॉन्ट आदि समस्याओं में उलझने की जरूरत है। अब तो हिंदी में आधुनिकतम् अनुप्रयोगों की बात हो रही है जिनमें कृत्रिम मेधा (आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस) से लेकर कंप्यूटरीय विश्लेषण (एनालिटिक्स) और बिग डेटा (बड़े पैमाने पर संग्रहीत सूचनाएं) से लेकर विविधतापूर्ण कंटेंट (जैसे वीडियो) की बात हो रही है। आइए, देखते हैं कि हिंदी की बुनियादी समस्याएं कैसे हल हो चुकी हैं और आज हिंदी में उत्पादकता की क्या स्थिति है।

सन् 2000 से पहले कंप्यूटरों पर हिंदी में कामकाज बड़े बेतरतीब और कामचलाऊ तरीके से होता था। कारण कि कंप्यूटरों पर हिंदी में कामकाज का सही ढांचा मौजूद नहीं था। सिर्फ हिंदी फॉन्ट ही एक चीज थी जिसके जरिए हम कंप्यूटरों पर हिंदी में लिख-पढ़ लेते थे लेकिन ये फॉन्ट मूल अंग्रेजी (लैटिन) फॉन्टों को आधार बनाकर काम करते थे। इन फॉन्टों में सिर्फ चिह्न (ग्लिफ) हिंदी के थे जबकि अंदरूनी ढांचा अंग्रेजी पर ही आधारित था। चिह्नों की वजह से हमें स्क्रीन पर हिंदी के अक्षर दिख जाते थे लेकिन कंप्यूटर की नजर में हिंदी और अंग्रेजी के टेक्स्ट में कोई फर्क नहीं था। वह हिंदी टेक्स्ट को भी अंग्रेजी का समझकर काम करता था। 1991 में यूनिकोड के आने के बाद कंप्यूटर अलग-अलग भाषाओं को पहचानने लगा। अब भाषाएं फॉन्टों पर निर्भर नहीं रहीं बल्कि ऑपरेटिंग सिस्टमों के साथ उनका सीधा तालमेल बन गया। ऑपरेटिंग सिस्टम हिंदी, उर्दू और मंदारिन जैसी भाषाओं को भी पहचानने लगे।

माइक्रोसॉफ्ट ने यूनिकोड के माध्यम से हिंदी और दूसरी भाषाओं को कंप्यूटर पर लाने में अहम भूमिका निभाई। विंडोज 2000 ने यूनिकोड एनकोडिंग का इस्तेमाल करते हुए हिंदी में काम करना संभव बनाया। इससे फॉन्ट और कीबोर्ड की समस्याओं के स्थायी समाधान का रास्ता खुल गया। ‘मंगल’ नामक यूनिकोड फॉन्ट जारी किया गया। हिंदी में टाइप करने के लिए इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड आया और कई तरह के इनपुट मैथड एडीटर (आईएमई) जारी हुए जिन्होंने रोमन में टाइप करते हुए देवनागरी में काम करना संभव बना दिया। कुछ और आईएमई भी आए, जिन्होंने लोगों को अपने ढंग से काम करने की सुविधा दी। तब से विंडोज के अलग-अलग संस्करणों में और एमएस ऑफिस

में हिंदी को लेकर इतना काम हो चुका है कि पुराने फॉन्टों में काम करना मुश्किल लगता है और यूनिकोड समर्थित फॉन्ट्स का प्रयोग आसान। माइक्रोसॉफ्ट के इन ऑपरेटिंग सिस्टमों में हिंदी यूनिकोड समर्थन मौजूद है-

- विंडोज 2000
- विंडोज एमई
- विंडोज एक्सपी
- विंडोज सर्वर 2003
- विंडोज विस्टा
- विंडोज 7
- विंडोज सर्वर 2008
- विंडोज 8
- विंडोज 10

विंडोज 2000 के जमाने से माइक्रोसॉफ्ट ने कई यूनिकोड समर्थित हिंदी फॉन्ट जारी किए हैं। इनमें से कुछ विंडोज में हिंदी को सक्रिय करने पर इन्स्टाल होते हैं और कुछ माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस के माध्यम से आते हैं। विंडोज पर उपलब्ध प्रमुख यूनिकोड हिंदी फॉन्ट हैं-

- मंगल
- एरियल यूनिकोड एमएस
- अपराजिता
- कोकिला
- उत्साह
- निर्मला

गूगल और टीडीआईएल ने भी हिंदी में दर्जनों यूनिकोड आधारित फॉन्ट उपलब्ध कराए हैं जिन्हें इंटरनेट से डाउनलोड किया जा सकता है।

विंडोज पर हिंदी में काम करने के लिए इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड लेआउट बेहतरीन माना जाता है। यह भारतीय भाषाओं में काम करने के लिए भारतीय मानक ब्यूरो की ओर से प्रमाणित आधिकारिक कीबोर्ड लेआउट भी है। लेकिन जिन्हें इस लेआउट के जरिए टाइपिंग का अभ्यास नहीं है, वे रोमन लिपि में टाइप करते हुए देवनागरी में टेक्स्ट कनवर्जन के लिए इनपुट मैथड एडीटरों (आईएमई) का प्रयोग कर सकते हैं। ये आईएमई अंग्रेजी क्वर्टी कीबोर्ड के माध्यम से देवनागरी में टाइपिंग के लिए कई तौर-तरीकों का इस्तेमाल संभव बनाते हैं। माइक्रोसॉफ्ट की वेबसाइट भाषाइंडिया से आप इन आईएमई को डाउनलोड कर सकते हैं-

- इंडिक इनपुट 1
- इंडिक इनपुट 2
- इंडिक इनपुट 3
- इंडिक इनपुट वेब (वेब पेजों पर हिंदी में टेक्स्ट इनपुट के लिए)

हिंदी ऑफिस सुइट

सन् 2004 में माइक्रोसॉफ्ट ने खास हिंदी भाषा में एक ऑफिस सुइट भी जारी किया था। इसके मेनू, संदेशों, डायलॉग बॉक्स व वगैरह को आप अपनी सुविधा के लिहाज से अंग्रेजी या हिंदी में देख सकते थे। यह दो संस्करणों में उपलब्ध था- ऑफिस हिंदी प्रफेशनल और ऑफिस हिंदी स्टैंडर्ड। अपनी भाषा में अपना सिस्टम

बहुत से लोगों का सवाल होता है कि विंडोज पर हिंदी में काम करना तो संभव है लेकिन उसके सारे संदेश, मेनू, आइकनों के नाम वगैरह अंग्रेजी में क्यों आते हैं। इस सवाल का जवाब- लैंग्वेज इंटरफ़ेस पैक (एलआईपी) के रूप में हाजिर है। माइक्रोसॉफ्ट ने हिंदी में इन ऑपरेटिंग सिस्टमों के एलआईपी मुहैया कराए हैं जिन्हें भाषाइंडिया वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है। इन्हें इन्स्टाल करने के बाद इन विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टमों में सब कुछ हिंदीमय दिखाई देता है- आइकनों के नाम, लेबल, मेनू, संदेश वगैरह-वगैरह :

- विंडोज एक्सपी
- विंडोज विस्टा
- विंडोज 7
- विंडोज 8
- विंडोज 8.1
- विंडोज 10

पहले पांच विंडोज संस्करणों के एलआईपी bhashaindia.com/Downloads/Pages/home.aspx पर मिलेंगे। या फिर सर्च इंजन में भाषाइंडिया डाउनलोड के नाम से सर्च करके देखें। विंडोज 10 का हिंदी एलआईपी यहां मिलेगा-

<http://windows.microsoft.com/en-IN/windows/language-packs#lptabs%4 win10>

ऑफिस का कामकाज

माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस सुइट (ऑफिस 2007 और उसके बाद) के यूजर हिंदी में बेहतर ढंग से काम करने के लिए कई तरह की भाषाई सुविधाएं डाउनलोड कर सकते हैं। इन्हें प्रूफिंग टूल्स के नाम से जारी किया गया है। अगर आपके पास लाइसेंसशुदा ऑफिस सुइट है तो इन्हें माइक्रोसॉफ्ट की वेबसाइट से मुफ्त डाउनलोड कर इस्तेमाल करें। इनके इंस्टाल होने के बाद आपके ऑफिस सॉफ्टवेयरों में अंग्रेजी की ही तरह हिंदी वर्तनी जांच सुविधा उपलब्ध हो जाएगी।

ऑफिस 365 और ऑफिस 2016 के यूजर अब माइक्रोसॉफ्ट विंग ट्रांसलेटर के माध्यम से दी जाने वाली अनुवाद सुविधा का भी इस्तेमाल कर सकते हैं। हिंदी से अंग्रेजी और अंग्रेजी से हिंदी में क्लाउड आधारित अनुवाद सुविधा का इस्तेमाल बहुत आसान है हालांकि इसके लिए आप के कंप्यूटर का इंटरनेट से कनेक्ट होना जरूरी है।

अगर आप एक डेवलपर हैं तो माइक्रोसॉफ्ट विजुअल स्टूडियो में इंटरफ़ेस आइटमों (मेनू, संदेश आदि) को हिंदी में देखने के लिए कैप्शंस लैंग्वेज इंटरफ़ेस पैक का इस्तेमाल कर सकते हैं। ये भी भाषा इंडिया वेबसाइट पर मिलेंगे। विजुअल स्टूडियो 2008 और विजुअल स्टूडियो 2010 के लिए ये टूल फ्री डाउनलोड के लिए उपलब्ध हैं।

- भाषाइंडिया.कॉम से आप हिंदी भाषा से संबंधित और भी कई औजार डाउनलोड कर सकते हैं, जैसे-

- इंडिक इनस्क्रिप्ट ट्यूटर (टाइपिंग शिक्षक)
- टीबीआईएल कनवर्टर (फॉन्ट कनवर्टर)
- द्विभाषीय स्मार्ट टैग डिक्शनरी (अंग्रेजी-हिंदी)
- त्रिभाषीय स्मार्ट टैग डिक्शनरी (अंग्रेजी-हिंदी-गुजराती)

ऑनलाइन

माइक्रोसॉफ्ट का 'बिंग' सर्च इंजन अब पहले से काफी बेहतर हो गया है। यहां हिंदी सहित कई भारतीय भाषाओं में सर्च करना संभव है।

बिंग का एक अहम फीचर है- बिंग ट्रांसलेटर, जिसके जरिए हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं के बीच दस्तावेजों का अनुवाद संभव है। हिंदी से दूसरी कई भाषाओं में अनुवाद किया जा सकता है और इसके उल्ट क्रम में भी। बेहतर अनुवाद के लिए कोशिश रहे कि आपके वाक्य छोटे हों। यह सुविधा यहां मिलेगी-

[bing.com/translator/\(ref\)TThis-text%4-from%4en-to%4hi](http://bing.com/translator/(ref)TThis-text%4-from%4en-to%4hi)

हिंदी वेबसाइट

सन् 2003 में माइक्रोसॉफ्ट ने भाषाइंडिया.कॉम नामक वेबसाइट शुरू की थी जहां पर भारतीय भाषाओं में काम करने वाले यूजर्स और डेवलपर्स की जरूरतों की चीजें और जानकारी उपलब्ध है। अगर आप भी हिंदी में काम करने के लिए टूल्स या जानकारी की तलाश कर रहे हैं तो यहां जाए- bhashaindia.com

अगर आप कंप्यूटर, इंटरनेट, सोशल मीडिया वगैरह के बारे में हिंदी में पढ़ना चाहते हैं तो माइक्रोसॉफ्ट की डिजिटल लिटरेसी वेबसाइट पर जाएं। यह कई भाषाओं में उपलब्ध है, जिनमें से हिंदी भी एक है। यूआरएल है-

<https://www.microsoft.com/hi-in/digitalliteracy/curriculum2/aspx>

मैकिन्टोश में हिंदी

एप्पल मैकिन्टोश कंप्यूटरों पर हिंदी में काम करने के लिए जरूरी सेटिंग्स इस तरह करें-

सिस्टम प्रेफरेंसेज इंटरनेशनल लैंग्वेज एंड टेक्स्ट इनपुट सोर्सेज देवनागरी क्वर्टी या देवनागरी (की बोर्ड लेआउट)

इनमें से पहला कीबोर्ड लेआउट रोमन में टाइप करते हुए देवनागरी टेक्स्ट अकित करने की सुविधा देता है। दूसरा कीबोर्ड लेआउट इनस्क्रिप्ट आधारित है। अनुकूल कीबोर्ड लेआउट का चुनाव करने के बाद जब भी टाइप करना चाहें, ऊपर दाईं तरफ दिखने वाली भाषा वरीयता पर क्लिक करके अपना पसंदीदा लेआउट चुनें और टाइप करना शुरू कर दें।

एंड्रोइड में हिंदी

गूगल प्ले स्टोर पर जाकर गूगल इंडिक कीबोर्ड नामक फ्री एप्प डाउनलोड कीजिए और इंस्टाल कर लीजिए। यह आपके मोबाइल में हिंदी और 10 दूसरी भारतीय भाषाओं में यूनिकोड के जरिए काम करना संभव बना देता है। आपको अपने कामकाज की भाषा के रूप में हिंदी का चुनाव करना

होगा। आप चाहें तो अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं को भी जोड़ सकते हैं। जितनी भाषाएं आप चुनेंगे, उतने ही विकल्प टाइपिंग के समय दिखाए जाएंगे।

आइफोन और आईपैड में हिंदी

एप्ल के आइओएस ऑपरेटिंग सिस्टम पर आधारित गैजेट्स (आइफोन, आईपैड) में हिंदी में काम करने के लिए जरूरी सेटिंग्स इस तरह हैं-

सेटिंग्स जनरल कीबोर्ड एड न्यू कीबोर्ड हिंदी (कीबोर्ड चुनें)

अब जब भी आप टाइपिंग शुरू करें, कीबोर्ड के साथ दिखने वाले ग्लोब के निशान पर टैप करके देवनागरी में टाइप करना शुरू कर दें।

हिंदी में वॉयस टाइपिंग

अब एंड्रोइड ऑपरेटिंग सिस्टम के जरिए मोबाइल पर तो हिंदी में बोलकर टाइप करना संभव है ही, माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस के नए संस्करणों में भी एक प्लग-इन की मदद से ऐसा किया जा सकता है। गूगल ड्राइव, जो कि एक ऑनलाइन उत्पादकता सुइट और क्लाउड स्टोरेज है, में भी आप बोलकर टाइप कर सकते हैं। इन दस्तावेजों को बाद में अपने सिस्टम पर डाउनलोड भी कर सकते हैं।

अन्य आधुनिक सुविधाएं

हिंदी में अब हस्तलिपि की पहचान भी संभव हो गई है तो दस्तावेजों को स्कैन करके उनकी सामग्री को कंप्यूटर पर सॉफ्ट कॉपी के रूप में सहेजना भी संभव है। इतना ही नहीं, हिंदी में मशीन अनुवाद अब पहले से बहुत बेहतर हो गया है। माइक्रोसॉफ्ट के बिंग ड्राइंसलेटर और गूगल ड्राइंसलेट दोनों ही अब अनुवाद के लिए न्यूरल नेटवर्कों का इस्तेमाल करते हैं जिसने मशीनी अनुवाद को कम से कम 25 फीसदी बेहतर बना दिया है। विंडोज का नैरेटर टूल अब हिंदी के दस्तावेजों को पढ़कर सुनाने में भी सक्षम है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जहां तक उत्पादकता का सवाल है, हिंदी में काम करने के इच्छुक लोगों के सामने कोई बाधा शेष नहीं रह गई है।

भारतीयता की सांस्कृतिक अवधारणा है हिंदी

राजेश कुमार यादव

संस्कृति मानवीय साधना का श्रेष्ठतम स्वरूप है और यह किसी भी समाज की आत्मा होती है। इससे उन सभी संस्कारों एवं उपलब्धियों का बोध होता है जिसके सहारे सामूहिक अथवा सामाजिक जीवन व्यवस्था के लक्ष्यों एवं आदर्शों का निर्माण किया जाता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ‘मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति हैं।’ भारतीय संस्कृति बुनियादी रूप से अंतरराष्ट्रीय है। भारत की भौगोलिक और राष्ट्रीय सीमाओं से अधिक विस्तृत है। सिद्धांततः उसे विश्व-संस्कृति से अलग करके नहीं समझा जा सकता है। भारतीय संस्कृति को समझने से पहले भारतीयता की अवधारणा को समझना आवश्यक है। ‘भारतीय संस्कृति’ और ‘भारतीय परंपरा’ जैसे पदों में भारतीय शब्द का प्रयोग केवल सूचनात्मक या संज्ञात्मक नहीं है बल्कि यह मूल्यपरक और विचारधारात्मक भी है। डॉ. द्विवेदी ने इन अंतरों को अच्छी तरह समझा है और भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषताओं की विश्व-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म विवेचना भी की है। भारतीय जनता की श्रेष्ठ साधनाओं और उपलब्धियों को ही वे भारतीय संस्कृति मानते हैं। ‘भारत की सांस्कृतिक समस्या’ निबंध में वे लिखते हैं, “भारतीय जनता की विविध साधनाओं की सबसे सुंदर परिणति को ही भारतीय संस्कृति कहा जा सकता है। भारतीय मानस को आरंभ से ही अपने से भिन्न जातियों-संस्कृतियों को समझने का मौका मिला। द्विवेदीजी का विचार है कि इससे भारतीय मानस ने ‘समन्वय’ और ‘सामंजस्य’ का रास्ता निकाला। विभिन्न जातियां शुरू में आपसी संघर्ष और टकराव के बाद समन्वय के रास्ते पर चल पड़ती थीं। इसी से एक मिश्रित भारतीय संस्कृति का निर्माण हो सका।

हिंदी में हमारी पीढ़ियों के संस्कार बसते हैं। गंगा के प्रवाह की तरह हिंदी हमारी समरसतावादी संस्कृति की आत्मा है। भाषा किसी भी संस्कृति को समझने में खिड़की की तरह होती है क्योंकि भाषा और सामाजिक संवाद में निश्चित तौर पर जुड़ाव होता है। हिंदी में तो यह सब और साफ दिखता है। यहां किसी को संबोधित करने में औपचारिकता बरती जाएगी तो आप शब्द का इस्तेमाल होगा जबकि अनौपचारिक होने पर तुम। इससे यहां और अंग्रेजी भाषी मुल्कों की संस्कृतियों में फर्क समझ में आता है, जहां संबोधन में हमेशा तुम शब्द का प्रयोग होता है चाहे कोई बड़ा हो बच्चा हो, परिवार का हो या अजनबी। ये एक ऐसी भाषा है जो सभी लोगों को एक साथ जोड़कर रख सकती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि हिंदी जैसे लिखी जाती है, वैसे बोली भी जाती है। दूसरी भाषाओं

में कई अक्षर साइलेंट होते हैं और उनके उच्चारण भी लोग अलग-अलग करते हैं लेकिन हिंदी के साथ ऐसा नहीं होता इसीलिए हिंदी को सरल भाषा भी कहा जाता है। हिंदी भाषा को कोई भी बहुत आसानी से सीख सकता है। पूरब से पश्चिम या उत्तर से दक्षिण, देश के किसी कोने में चले जाइए, दो अलग-अलग भाषा के लोग जब एक दूसरे से बात करेंगे तो केवल हिंदी का ही प्रयोग करते गिलेंगे। अगर आप दक्षिण भारत के किसी इलाके में चले जाते हैं तो राजनीतिक रूप से हिंदी का विरोध करने के बावजूद भी वहाँ लोग धड़ल्ले से हिंदी बोलते नजर आते हैं।

हिंदी की साहित्यिक संस्कृति और भारतीय आधुनिकता हिंदी की आधुनिक संस्कृति के विकास में महात्मा गांधी जैसे चिंतकों के विचारों का विशेष महत्व है। विडंबना यह है कि हिंदी की दुनिया ने अभी भी इस प्रकार के चिंतन को ज्यादा तवज्जो नहीं दी है। हिंदी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े इस बात का एहसास गांधीजी को ही नहीं, हिंदी नवजागरण के यशस्वी लेखक प्रेमचंद को भी था। यह अकारण नहीं है कि प्रेमचंद ने आधुनिकता से जुड़े हुए राष्ट्रवाद समेत सभी अनुषंगों की तीखी आलोचना की और उसके विकल्प के रूप में कृषक संस्कृति, देशज कौशल, शिक्षा और न्याय-व्यवस्था के महत्व पर जोर दिया। देशज ज्ञान को महत्व देने वाला व्यक्ति ज्ञान के स्रोत के रूप में सिर्फ अंग्रेजी के महात्म्य को स्वीकार नहीं कर सकता था इसलिए गांधी और प्रेमचंद ने हिंदी और भारतीय भाषाओं के उत्थान पर इतना जोर दिया।

आज भारत में हिंदी समझने और बोलने वालों की संख्या करीब 70 करोड़ है। देश से बाहर भी करोड़ों लोग इसे जानते-समझते हैं। प्रयोग करने वालों की संख्या के लिहाज से यह चीन की मैंडेरिन के बाद दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। शब्दों के मामले में किसी भी भाषा के प्रचलित शब्दों को स्वीकारने की नीति होनी चाहिए। यही बात हिंदी पर भी लागू होती है। हम ऑक्सफोर्ड शब्दकोश से भी बहुत कुछ सीख सकते हैं, जो हर साल अपने भंडार में आम प्रचलन के कई शब्दों को जोड़ता रहता है। देश में इंटरनेट पर करीब 20 प्रतिशत लोग हिंदी में सामग्री खोजते हैं। अब इंटरनेट पर भी हिंदी भाषा में काफी मात्र में अच्छी सामग्री उपलब्ध है। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की वेबसाइट हिंदी समय डॉटकाम पर हिंदी साहित्य की सभी विधाओं से जुड़े 7 लाख पृष्ठ अपलोड किए जा चुके हैं। विश्वविद्यालय अपने संसाधनों और निजी प्रयासों से विविध विधाओं और विषयों की हिंदी में सामग्री तैयार करवाकर इंटरनेट पर डलवा रहा है। ऐसा करके हिंदी पर लगने वाले उन लांछनों को दूर किया जा रहा है कि हिंदी ज्ञान और विज्ञान की भाषा नहीं है।

भारतीय संस्कृति मानव के विकास का आध्यात्मिक आधार बनाती है। मैं जब भी हिंदी के बारे में सोचता हूं तो मुझे दुर्गा का मिथक याद आता है। दुर्गा बनी कैसे? महिषासुर से त्रस्त सभी देवताओं ने आपने-अपने तेज दिए थे। 'अतुलं तत्र तत्तेजःसर्वदिवशरीरजम्। एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा।' अर्थात् सभी देवताओं के शरीर से प्रकट हुए उस तेज की कहीं तुलना नहीं थी। एकत्रित होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया और अपने प्रकाश से तीनों लोकों में व्याप्त हो गया। तब जाकर महिषासुर का वध हो सका। हिंदी भी ठीक दुर्गा की तरह है। जैसे सारे देवताओं ने अपने-अपने तेज दिए और दुर्गा बनी वैसे ही सारी बोलियों के समुच्चय का नाम हिंदी है। हिंदी

और उसकी बोलियों के बीच परस्पर पूरकता और सौहार्द का रिश्ता है। हिंदी इस क्षेत्र की जातीय भाषा है जिसमें हम अपने सारे औपचारिक और शासन संबंधी काम काज करते हैं। हिंदी (हिंदुस्तानी) जाति इस देश की सबसे बड़ी जाति है। वह दस राज्यों में फैली हुई है। इस देश के अधिकांश प्रधानमंत्री हिंदी जाति ने दिए हैं। भारत की राजनीति को हिंदी जाति दिशा देती रही है। हिंदी की सबसे बड़ी ताकत उसकी संख्या है। इस देश की आधी से अधिक आबादी हिंदी बोलती है और यह संख्यावल बोलियों के नाते है। बोलियों की संख्या मिलकर ही हिंदी की संख्या बनती है। हिंदी क्षेत्र की विभिन्न बोलियों के बीच सांस्कृतिक एकता का सूत्र यदि कोई है तो वह हिंदी ही है।



बहुवचन : मराठी साहित्य विशेषांक

अंक के रचनाकार

- विरासत :** कुसुमाग्रज, विंदा करंदीकर, नारायण सुर्वे, दिलीप चित्रे आदि
- विशेष :** भालचंद्र नेमाडे
- साक्षात्कार :** वसंत आबाजी डहाके, नागनाथ कोतापल्ले
- लेख :** सूर्यनारायण रणसुभे, निशिकांत ठकार, रणधीर शिंदे, आशुतोष पोद्दार, रामचंद्र कालुंखे, संजय आर्वीकर- हृषीकेश आर्वीकर, रवींद्र किबदुने, भानु काळे, नीलिमा गुंडी, संदीप सपकाळे आदि।
- कहानियां :** भारत सासणे, सदानंद देशमुख, आसाराम लोमटे, मेघना पेठे, मोनिका गजेंद्रगड़कर, मधुकर धर्मपुरीकर, प्रतिभा जोशी आदि।
- नाटक :** महेश एलकुंचवार
- कविताएं :** ना.धो. महानोर, यशवंत मनोहर, वसंत आबाजी डहाके, प्रभा गाणेरकर, चंद्रकांत पाटील, नारायण कुलकर्णी, सतीश कालसेकर, श्रीकांत देशमुख, मल्लिका अमरशेख, मनोहर जाधव, शरण कुमार लिंबाले, अशोक कोतवाल, अरुण काळे, अनुराधा पाटील, गणेश विसपुते, दासू वैद्य, सायमन मार्टिन, प्रफुल्ल शिलेदार, आसावरी काकडे, नागनाथ मंजुले, विजय चोरमारे, मंगेश नारायण काळे, मनोज बोरगावकर, बाजाजी महदन इंगले, अनिल साबते, बालाजी सुतार, सारिका उबाले, लोकनाथ यशवंत, शशिकांत हिंगोनेकर, अरुण शंवते, संजीवनी तलेगांवकर आदि। साथ ही, अन्य विविध सामग्री।

अतिथि संपादक : दामोदर खड़से

विदेशी भाषा की अधिग्रहण-प्रक्रिया

सुरेंद्र गंभीर

जिस भाषा को एक बालक घर में या आस-पड़ोस में बचपन से सुनता आया है उसे हृदयांगम करना और उसमें सुनकर समझना और फिर उस भाषा में बोलकर अपनी बात कहने की क्षमता विकसित करना एक सहज और अनायास प्रक्रिया है। इसके विपरीत बड़े होकर कक्षा के वातावरण में व्याकरणिक विश्लेषण के आधार पर कोई नई भाषा सिरे से सीखना एक दूसरे प्रकार की प्रक्रिया है जिसे बाल्य-सुलभ सहजता से नहीं जोड़ा जा सकता। तब वह एक बौद्धिक, सचेत और सायास प्रक्रिया बन जाती है। बड़े होकर कोई भी नई भाषा सीखना परिश्रम-साध्य होता है और इस कष्टपूर्ण मार्ग से गुजरने के बाद भी उस भाषा में पूरी व्याकरणिक निपुणता नहीं आ पाती। इन दो अवस्थाओं में अंतर का संबंध मस्तिष्क के बाएं हिस्से में स्थित एक विशिष्ट स्नायु-तंत्र से है जो लगभग 12 वर्ष की आयु के बाद कुठित होना शुरू हो जाता है।

विदेशी भाषा सीखने का महत्व

दूसरे वर्गों, देशों या संस्कृतियों की भाषा सीखना कुछ खास वर्गों के लिए हमेशा से एक आवश्यकता रही है और इन वर्गों के लोग पीढ़ियों से दूसरों की भाषा सीखते आए हैं। इन वर्गों में धर्म-प्रचारक, गुप्तचर, राजनीतिक, व्यापारी और शोधकर्ता शामिल हैं। हाल में आधुनिक शिक्षा के संदर्भ में दूसरी संस्कृतियों को समझने के लिए विदेशी भाषाएं पढ़ने-पढ़ाने का महत्व शैक्षिक कारणों से आज के बढ़ते हुए वैश्विक संदर्भ में बहुत बढ़ा है। दूसरे समाजों के अंदर घुसकर उन्हें बारीकी से समझने के लिए उनकी भाषा और संस्कृति का ज्ञान वस्तुपरक शोध का अनिवार्य अंग बन गया है। आज विदेशी भाषाओं को सीखने के पाठ्यक्रम अनेक शिक्षा-संस्थाओं में उपलब्ध हैं।

विदेशी भाषा के चार आयाम

जब भी हम किसी नई भाषा को सीखने या सिखाने की कल्पना करते हैं तो भाषा के चार पक्ष हमारे सामने आते हैं। ये पक्ष हैं- सुनकर समझना, बोलकर अपने विचारों को व्यक्त करना, पढ़कर समझना और उद्दिष्ट भाषा में लिख पाना। हर वयस्क शिक्षार्थी के लिए इन चारों पक्षों में प्रवीणता पाना प्रायः आवश्यक नहीं होता। किसी भी भाषा को सीखने की किलाष्टता को ध्यान में रखते हुए और आज के जीवन की व्यस्तता के संदर्भ में विद्यार्थी अकसर उतना ही सीखने की योजना बनाते हैं जिससे उनका काम चल जाए। उदाहरण के लिए इतिहास में शोध करने वाला विद्यार्थी प्रधान रूप से लिखे हुए पुराने या आधुनिक अभिलेख पढ़ना चाहता है और इसलिए वह पढ़ने पर ज्यादा

जोर देता है। इसी प्रकार मानव-शास्त्र का शोध-कर्ता लोगों से बातचीत करने के लिए समझने और बोलने के पक्षों पर अधिक समय लगाता है। मौखिक प्रावीण्य के लिए सुनने-समझने में भी कुशलता प्राप्त करना अनिवार्य है परंतु जिस व्यक्ति के लिए टेपबद्ध या चलचित्रों की भाषा को समझना ही उसके शोध से संबंध रखता हो वहाँ सुनने समझने पर ही ज्यादा जोर दिया जाएगा। ऐसा प्रायः देखने में आया है कि दूसरी भाषा में लिखने की आवश्यकता विद्यार्थियों को अपेक्षाकृत सबसे कम महसूस होती है और इसी कारण से उस पक्ष पर सामान्यतः सबसे कम समय लगाया जाता है। आम तौर पर उद्दिष्ट भाषा को सुनकर समझना और बोलना कमोबेश अधिकांश लोगों का लक्ष्य रहता है।

विदेशी भाषा सीखने के विभिन्न अवयव

किसी भी भाषा को सीखने-सिखाने की वृष्टि से निम्न अवयवों पर ध्यान दिया जाता है- लिपि, व्याकरण, शब्दावली, कुछ व्यावहारिक वाक्य, व्यावहारिक प्रयोग के नियम, विचारों को अभिव्यक्त करने की शैली, और भाषा के प्रयोगों में गुणी हुई सभ्यता और संस्कृति के महत्वपूर्ण भागों का समुचित ज्ञान। इनमें से यहाँ व्याकरण, शब्दावली, व्यावहारिक प्रयोग के नियम, विचार अभिव्यक्त करने की शैली और सभ्यता-संस्कृति संबंधी ज्ञान पर ही चर्चा की जाएगी। लिपि व व्यावहारिक वाक्यों के बारे में स्वतःस्पष्टता के कारण विशेष कुछ कहने को नहीं है। व्यावहारिक वाक्यों से अभिप्राय उन वाक्यों से है जो प्रयोग में बहुतायत से आते हैं और कक्षा के संदर्भ में जिनका प्रयोग शुरू से ही संभव है। इनकी एक सूची बनाकर विद्यार्थियों को दी जा सकती है और रोज बारंबार इस्तेमाल करने से थोड़े समय में प्रयोगकर्ता उनके प्रयोग में अभ्यस्त हो जाते हैं (जैसे- नमस्ते, आप कैसे हैं? ठीक हूं, फिर से कहिए, जोर से बोलिए, आदि)।

व्याकरणिक नियम

छोटे छोटे वाक्य बनाने के लिए व्याकरणिक नियमों के ज्ञान की जरूरत होती है। जो वाक्य एक शिशु के लिए खेल खेलने के समान एक सामान्य क्रिया है उसी वाक्य का नियम-सम्मत संयोजन एक वयस्क के लिए एक सायास प्रक्रिया बन सकता है। उस वाक्य में व्यवहार कितना व्याकरण-सम्मत होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस वाक्य-प्रकार की विभिन्न संदर्भों में कितनी बार आवृत्ति (डिलिंग) की गई है। इसके अतिरिक्त, प्रोक्ति (डिस्कोर्स) के स्तर पर एक वाक्य से दूसरा वाक्य किसी विशिष्ट संदर्भ में कैसे प्रवाहित हो यह एक वाक्य के संयोजन से भी अधिक दुष्कर कार्य है। इस स्तर पर अधिकांश व्याकरणिक नियम तो अभी सामने नहीं आए हैं और शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों यह आशा करते हैं कि संयोजक-शब्दों की सहायता से यह अभ्यास-जन्य प्रक्रिया धीरे-धीरे स्वतःस्फूर्त या अन्तःवृष्टि-स्फूर्त बन जाएगी।

आइए व्याकरणिक नियमों के एक दो उदहारणों की चर्चा करते हैं। नीचे लिखे वाक्यों को ध्यान से पढ़िए और रेखांकित शब्दों के रूप का कारण बताइए।

1. सुचेता ने अपने भाई से कुछ कहा।
2. छात्रों के लिए कुछ चीजें चाहिए।
3. पिता ने अपने बेटे को किताब दी।
4. हम वहाँ शाम को खेलने जाते हैं।

पहले वाक्य में 'ने' का प्रयोग किस कारण से है? दूसरे वाक्य में 'छात्रों' शब्द का प्रयोग क्यों

हो रहा है? तीसरे वाक्य में किया स्त्रीलिंग क्यों है? और चौथे वाक्य में ‘खेलना’ का प्रयोग न करके ‘खेलने’ शब्द का प्रयोग क्यों है? विदेशी भाषा के शिक्षण-संदर्भ में इन सभी प्रश्नों का समाधान बड़े स्पष्ट नियमों से किया जाता है। उदाहरण के लिए कर्ता के बाद ‘ने’ का प्रयोग तब होता है जब उस वाक्य का क्रियापद सकर्मक हो और पूर्णकालिक हो। दूसरे वाक्य में परसर्ग से पहले संज्ञापद का रूप अलग होता है जिसे व्याकरण की भाषा में तिर्यक् रूप कहते हैं। तीसरे वाक्य में क्रियापद की अन्विति वाक्य की परसर्ग-रहित संज्ञा से ही होती है और चौथे वाक्य में परसर्ग ‘के लिए’ का अस्तित्व विवक्षित होने के कारण, उसका पूर्ववर्ती रूप ‘खेलने’ अपने तिर्यक् रूप में परिवर्तित हो जाता है।

इस प्रकार के अनेकानेक नियम हैं जो भाषा की नियम-बद्धता को प्रगट करते हैं। ऐसे नियमों को समझना वयस्क विद्यार्थियों के लिए कठिन नहीं होता परंतु ऐसे नियमों की सहायता से उद्दिष्ट भाषा के वाक्यों की उत्पत्ति में और उनको व्यवहार में लाने में अभ्यास की आवश्यकता होती है। यह एक बौद्धिक, आवृत्तिप्रक और अभ्यासप्रक प्रक्रिया है जिसमें से वयस्क शिक्षार्थियों को एक लंबे समय तक गुजरना पड़ता है।

विदेशी भाषा की शब्दावली

नई भाषा की शब्दावली सबसे बड़ी चुनौती होती है। संदर्भगत शब्दावली को समझने में बहुत समय लगता है। नए नए शब्द, उनके पर्याय, उनके प्रादेशिक और सामाजिक रूपांतर एक अनंत चुनौती है। अपनी भाषा में भी नए नए शब्द सीखने की प्रक्रिया बराबर जारी रहती है परंतु विदेशी भाषा में तो कई बार असामान्य शब्दों के अतिरिक्त छोटे-छोटे हल्के-फुल्के शब्द भी सीखने का क्रम लगातार बना रहता है। शब्दावली में पर्यायवाची शब्दों में अर्थभेद या संदर्भ-भेद (जैसे- पानी, जल, नीर) की बारीकियों को समझना अपने-आप में एक अपेक्षाकृत लंबा रास्ता है। इसी प्रकार अनेकार्थक शब्द (जैसे ‘कर’ के अलग अलग अर्थ), एक जैसे लगने वाले शब्द (जैसे- बनावट, बुनावट; वीर, वीराना), नव-निर्मित शब्द (पूर्वराग, प्रौद्योगिकी, त्रिआयामी), मुहावरे (जैसे- छक्के छूटना, छक्के मारना) भी बाहर से भाषा सीखने वालों के लिए चुनौती है।

विदेशी भाषा के व्यावहारिक प्रयोग

व्यावहारिक प्रयोग के नियम भाषागत नियमों से अलग होते हैं। कुछ नियम सरल हैं- किसके साथ ‘तू’ का प्रयोग किया जाए, किसके साथ ‘तुम’ का प्रयोग किया जाए और किसके साथ ‘आप’ का प्रयोग किया जाए? परंतु इस सरल नियम का एक क्लिष्ट पक्ष देखिए। ईश्वर को हम ‘तू’ कहकर क्यों पुकारते हैं? मां को हम ‘तू’ क्यों बुलाते हैं? पिता को अधिकांश हिंदी-भाषी तू क्यों नहीं बुलाते? संभव है कि अलग अलग शिक्षक या हिंदी-भाषी विद्वान इन प्रश्नों का उत्तर अलग दें।

व्यावहारिक प्रयोग का एक और उदाहरण देखिए। सम्मान अभिव्यक्त करने के लिए हिंदी में बहुवचन का प्रयोग होता है लेकिन निम्न उदाहरणों में हम देखेंगे कि पुरुषवाची शब्दों में बहुवचन का प्रयोग व्यापी है परंतु स्त्री-वाची शब्दों में बहुवचन का अनुप्रयोग आंशिक है।

राम दशरथ के सबसे बड़े लड़के थे।

सीता राम की रानी थीं।

इन उदाहरणों में हम देखते हैं कि आदर देने के लिए पहले वाक्य में राम के सूचक सभी

रेखांकित शब्द बहुवचन हैं परंतु दूसरे वाक्य में आदर देने के लिए सीता-सूचक सभी शब्दों में ऐसा नहीं है। प्रश्न उठता है कि जब क्रियापद ‘थीं’ बहुवचन में है तो पहले वाक्य की तरह यहां ‘रानी’ का ‘रानिया’ क्यों नहीं बना?

व्यावहारिक प्रयोग का एक और उदाहरण देखिए-

पहला वक्ता- आप शादी पर पहुंचेंगे न?

दूसरा वक्ता- नहीं नहीं, जरूर पहुंचेंगे।

यहां दूसरे वाक्य में क्या ‘नहीं नहीं’ का प्रयोग निषेधात्मक है? अगर निषेधात्मक नहीं तो इसका मतलब क्या है?

इसी प्रकार के प्रयोग-संबंधी अनेक नियम हैं जिनका ज्ञान भाषा के सही प्रयोग के लिए अनिवार्य है। पर व्यस्क विद्यार्थियों के लिए इन्हें आत्मसात् करना अभ्यास-साध्य जरूर है पर असंभव नहीं।

एक और आयाम देखिए- हर भाषा में विचारों को बांधने की शैली भी अलग अलग होती है। अमेरिका का पढ़ा-लिखा अंग्रेजी-भाषी संदर्भगत विषय पर अपने उद्दिष्ट विचार प्रायः पहले रखता है और समय होने पर तदिष्यक सामान्य या अतिरिक्त जानकारी बाद में देता है। हिंदी-भाषी के लिए ऐसा कोई व्यावहारिक नियम नहीं है। हिंदी भाषी परिचयात्मक पृष्ठभूमि को बताते हुए उद्दिष्ट या विशिष्ट जानकारी की ओर बढ़ता है। इस प्रकार के व्यावहारिक नियमों में अंतर होने के कारण अलग अलग संस्कृतियों से आने वाले व्यक्तियों के विचार-विनियम में कभी कभी दिक्कतें हो जाती हैं। विदेशी भाषा से जुड़ी सभ्यता और संस्कृति

सभ्यता और संस्कृति के मूल्यों और तथ्यों से परिचय उस भाषा को समझने और उसका प्रयोग करने में अत्यंत सहायक होता है। सप्तपदी का पारंपरिक अर्थ मालूम होने पर ही शादी के संदर्भ में इसका ठीक अर्थ समझ आएगा। हरिद्वार में अस्थिप्रवाह घाट की नामपट्टी पढ़कर उसके ठीक अर्थ का ज्ञान न होने पर विदेशी असमंजस में पड़ जाएगा। कुछ घरों में पिता को बच्चे चाचा कहकर बुलाते हैं। समाज के अंदर रहने वालों को पता है कि इस प्रकार का प्रयोग संयुक्त परिवार की संरचना में निहित है परंतु बाहर वालों के लिए संयुक्त परिवार की कल्पना जाने बिना ठीक अर्थ और उसका कारण समझ पाना संभव नहीं। बड़ों को नाम से न बुलाने का संबंध सामाजिक मूल्यों से है जहां नाम न लेकर बुलाने का मतलब आदर है। घर में आए अतिथि का सत्कार और उसके प्रति आदरसूचक औपचारिक भाषा का प्रयोग भी परंपरा से संबंध रखता है। यह आपका ही घर है जैसे उदाहरण में ‘आपका’ शब्द अपने शाब्दिक अर्थ में नहीं लिया जा सकता। किसी दुकानदार का यह कहना कि आइए बहनजी- समाज की व्यवस्था की कल्पना को लेकर एक प्रयोग है। कभी-कभी इन छोटे छोटे तथ्यों की बारीकियां आसानी से नहीं बताई जा सकतीं। बड़ों के सामने नहीं बोला करते- इस वाक्य के अर्थ को समझने के लिए भारत की सामाजिक परंपरा को समझना आवश्यक है। इसी तरह ‘दधीचि की अस्थियों जैसा त्याग’, ‘नूपुरों के पहचान वाली श्रद्धा’ जैसे वाक्यांशों को समझने के लिए भारतीय इतिहास की कथाओं से परिचय आवश्यक है।

किसी भी समाज के बारे में सभ्यता और संस्कृति के ज्ञान का क्षेत्र एक परिवर्तनशील क्षेत्र होता है जिसमें पारंपरिक मूल्यों और व्यावहारिक नवीनताओं के बीच संघर्ष बराबर चलता रहता है। ऐसे

संघर्ष को भी समझना आवश्यक है। इस संघर्ष को समझकर ही उन मूल्यों के आशिक पालन की बात समझ में आने लगेगी। मुहल्ले की एक छोटी दुकान पर आने वाली महिला को ‘बहन जी’ कहकर संबोधित करना उचित लगता है परंतु किसी बड़े फैशनेबल स्टोर पर किसी पढ़ी-लिखी फैशनेबल महिला को दुकानदार संभवतः ‘मैडम’ कहकर ही पुकारना चाहेगा। दूसरे समाज में घुसकर किसी पुरुष के लिए अपने से बड़ी आयु की महिलाओं से या बराबर की उमर की महिलाओं से या अपने से छोटी आयु की महिलाओं से कैसे व्यवहार करना, उनको कैसे संबोधित करना, उनसे कितनी दूरी पर खड़े होना, उनसे कैसे प्रश्न न पूछना आदि बहुत महत्वपूर्ण बातें हैं जिनके बारे में जानकारी बाहर से आने वाले व्यक्ति को होनी चाहिए। इसी प्रकार धन्यवाद देने के नियम या किसी व्यक्ति या वस्तु की तारीफ करने के नियम भी अलग-अलग हो सकते हैं। अमेरिकी समाज में छोटी-छोटी बातों पर भी धन्यवाद देने की प्रथा काफी प्रचलित है और इसी प्रकार वहां किसी के यहां खाने पर जाएं तो खाने की तारीफ करना आवश्यक सा हो जाता है। भारत में ये तरीके कुछ अलग से हैं। भारत के महानगरों में धन्यवाद का प्रयोग अधिक दिखाई देता है परंतु वहां भी कुछ ही लोग ‘धन्यवाद’ शब्द का प्रयोग करते हैं। अन्यों में कोई ‘शुक्रिया’ कहेगा तो कोई अंग्रेजी के ‘थैंक्स’ शब्द को ही अधिक सहज मानकर उसका प्रयोग करता है। बड़े बड़े होटलों और क्लबों में ‘थैंक्स’ या ‘थैंक यू’ ही चलता है।

भाषा-शिक्षण के अन्य अनुभव-सिद्ध सिद्धांत

भाषा सीखने के इन अवयवों के अतिरिक्त कुछ सिद्धांत हैं जिनको समझना शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। ये हैं- अधिकृत सामग्री का प्रयोग, सामग्री का स्तरीकरण, पढ़ने-पढ़ाने में के X+1 सिद्धान्त का पालन और सामग्री पर आधारित संदर्भित अभ्यासिकाओं का प्रयोग। अधिगृहीत भाषा के मूल्यांकन के लिए एक मापदंड भी चाहिए। अमेरिका में भाषा शिक्षण क्षेत्र में दो ऐसे मापदंड प्रचलित हैं। एक है ACTFL Proficiency Guidelines और दूसरा IRL Scale है। पहले मापदंड का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में है और दूसरे का प्रयोग सरकारी क्षेत्र में है। दोनों मापदंड इन्हीं नामों से अंतर्जाल (इंटरनेट) पर उपलब्ध हैं। भाषा-मूल्यांकन पर और भी बहुत सी जानकारी भाषा-अधिग्रहण विषय पर शोध के फलस्वरूप आज उपलब्ध है।

शिक्षार्थी को अंततोगत्वा भाषा-क्षेत्र में जाकर लोगों के मुख-विवर से निकली जीवंत भाषा को समझना होता है तो इसलिए यह आवश्यक है कि वह उस जीवंत भाषा की सामग्री पर आधारित सामग्री का ही अध्ययन और अभ्यास करे न कि शिक्षक के द्वारा विद्यार्थियों के लिए लिखी गई सरल सुवोध सामग्री का। पढ़ने पढ़ाने के लिए विशेष रूप से लिखी गई सामग्री में जीवंत भाषा के कुछ तत्व नहीं आ पाते क्योंकि ये लिखने वाले के चेतन मन का हिस्सा नहीं होते। जैसे- भला वह क्यों यहां आने लगा? आप एक बार हमारे यहां आइए तो सही, वह मेरी बात कहां मानता है? यहां ‘भला’, ‘सही’ और ‘कहा’ शब्दों का अर्थ समझाना बहुत सरल नहीं है।

अंग्रेजी के विपरीत हिंदी में वाक्य में शब्द-क्रम निश्चित नहीं है और वह स्थिति के अनुसार बदल सकता है। इसके अतिरिक्त वाक्यों के शब्द-क्रम में अप्रत्याशित परिवर्तन (जैसे- ‘हां, वह अपनी दुकान पर गया है’ के स्थान पर ‘दुकान अपनी पर हां वह गया है’), अकस्मात् होने वाली या अज्ञानवश अपनी ही भाषा में त्रुटियां (जैसे- ‘सहस्र’ और ‘स्रोत’ के स्थान पर ‘सहस्र’ और

‘स्नोत’, ‘शृंगार’, ‘संग्रहीत’), उच्चारण में ‘ध’ को ‘ध’ जैसे बोलना आदि (कुछ हिंदी-भाषी ‘ध’ और ‘ध’ में रूप की समानता होने के कारण ‘विद्या’ जैसे शब्द को ‘विध्या’ कहकर उच्चारण करते हैं)।

अधिकृत भाषा या लोक-व्यवहार भाषा के कुछ और नमूने देखिए जहां रेखांकित अंशों में मानक हिंदी की दृष्टि से कुछ न कुछ त्रुटि रह गई हैं। ये सभी उदाहरण हिंदी भाषीक्षेत्र उत्तराखण्ड के हरिद्वार क्षेत्र से हैं-

- कृपया अपने जूतें चप्पल-स्टैंड पर ही उतारें (सही प्रयोग **जूते**)
- कम उमर में शादी, पिछड़ा परिवार, अधिक बरबादी (सही प्रयोग पिछड़ा)
- पढ़ी लिखी लड़की रोशनी घर की (सही प्रयोग पढ़ी, लड़की)
- यह पानी पीने योग्य नहीं है। कृपया इसे ना पीयें। (सही प्रयोग न पियें)
- होलिस्टिक मेडीसीन में मरीजों को सोमवार व शुक्रवार को ही देखे जाते हैं। (सही प्रयोग देखा जाता है)
- सत्यम् शिवम् सुंदरम् (सही प्रयोग सत्यम् शिवम् सुन्दरम्)
- रुद्राक्ष बृक्ष (सही प्रयोग वृक्ष)
- देवता आशीर्वाद देने में तब गूंगे रहते हैं जब हमारा हृदय उनकी वाणी सुनने में बहरा रहता है। (सही प्रयोग गूंगे)
- जेबकरों से सावधान रहे (सही प्रयोग रहें)

ये सभी तत्व भारत के एक हिंदी क्षेत्र की जीवंत भाषा के अंग हैं और उनसे परिचित होना शिक्षार्थी के लिए बहुत सहायक हो सकता है ताकि वह उन्हें देखकर या सुनकर चकराए नहीं। अगर शिक्षक अशुद्ध प्रयोगों को अपनी पाठ्यपुस्तक में लाने से कतराता है तो कम से कम वह इतना तो कर ही सकता है कि दूसरे या तीसरे साल में अपने विद्यार्थियों को ऐसे अशुद्ध नमूनों से परिचित कराके उन्हें जीवंत भाषा के प्रति यथार्थवादी बना दे।

इसी प्रकार से हिंदी में अंग्रेजी का मिश्रण लोक-व्यवहार में और आजकल तो हिंदी के समाचारपत्रों में भी बहुत प्रचलित है। यह ठीक है कि अंग्रेजी-भाषी विदेशियों के लिए उसे समझना कठिन न हो परंतु अंग्रेजी से इतर देशों से आने वाले शिक्षार्थियों के लिए वह कठिनाई पैदा कर सकता है। इसलिए उच्च-स्तरीय शिक्षार्थियों के लिए मिश्रित भाषा के उदाहरण भी प्रस्तुत करना उपयोगी होगा।

यह ठीक है कि प्रारंभिक स्तरों के लिए अधिकृत सामग्री इतनी सुलभ नहीं होती। बहुत कुछ तो ढूँढ़ने से मिल जाता है परंतु फिर भी कुछ अंशों के लिए थोड़ा-बहुत समझौता करना पड़ता है। इस सारी संग्रहीत सामग्री का स्तरीकरण भी बहुत आवश्यक है। छात्रों के लिए उचित स्तर की सामग्री का उपयोग सीखने-सिखाने में प्रभावी सिद्ध होता है। अमेरिका के शिक्षा-क्षेत्र में भाषा-सामग्री का स्तर निर्धारित करने के लिए एक मानक मापदंड उपलब्ध है। अगले सिद्धांत X+1 के अनुसार हमें उसी सामग्री का इस्तेमाल करना चाहिए जो विद्यार्थी के वर्तमान स्तर से थोड़ी सी अधिक हो। यह प्रयोग-सिद्ध और शोध-प्रमाणित तथ्य है कि ऐसी सामग्री का लाभ अधिकतम होता है। अंतिम सिद्धांत के अनुसार शिक्षार्थी जो सीखता है उसका अभ्यास करने के लिए सुनियोजित संदर्भित अभ्यासिकाएं उसे उपलब्ध हों। ऐसी अभ्यासिकाएं उस भाषा को शिक्षार्थी के मस्तिष्क में प्रतिष्ठापित

करती हैं। इन सब गतिविधियों में प्रौद्योगिकी का प्रयोग लगभग अनिवार्य सा हो गया है। धीरे धीरे प्रौद्योगिकी की सहायता से शिक्षार्थियों को स्वतंत्र स्वालंबी शिक्षार्थी बनाना बहुत आवश्यक है।

भाषा सीखने-सिखाने की चार विधाओं की चर्चा ऊपर हुई है और उनमें प्रवीणता प्राप्त करने के सिद्धांतों की भी चर्चा हुई है। इन सिद्धांतों के अतिरिक्त कुछ और कार्यनीतियां हैं जिन्हें हर छात्र अपनी अपनी योग्यता और अनुभव के अनुसार अपनाता है। जहां उपर्युक्त सिद्धांत चारों विधाओं पर लागू होते हैं। हर विधा में प्रवीणता को बढ़ाने के लिए कुछ नई कार्यनीतियां अपनानी पड़ती हैं। भाषागत (शब्दावली, वाक्य-संरचना आदि) ज्ञान के अलावा विद्यार्थी की अपनी बौद्धिक एवं ताकिक शक्ति, अर्थ दृढ़ निकालने की कार्यनीति को सतत् अनुभव से प्रखर करने की आवश्यकता होती है। सामाजिक व सांस्कृतिक सामग्री का अधिक से अधिक ज्ञान वक्ता या लेखक के मंतव्य की गुणित्यों को सुलझाने में बड़ी मदद करता है।

अभ्यासिकाओं का महत्व

उद्दिष्ट भाषा की संस्कृति और लोक व्यवहार में संदर्भित अभ्यासिकाओं के आवृत्तिमूलक अभ्यास से भाषा के शब्दों का प्रयोग अध्येता के मस्तिष्क की गहराइयों में जाकर प्रतिष्ठापित होता है। उपर्युक्त वाक्य में दो विचारणीय बिंदुओं की ओर संकेत किया गया है- अभ्यासिकाएं सांस्कृतिक संदर्भों में हों और हर प्रकार की अभ्यासिकाओं की अधिकाधिक आवृत्ति हो। उद्दिष्ट भाषा में अधिकाधिक पढ़ने की आदत बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। पढ़ने में न केवल आंचलिक प्रयोगों से वास्ता पड़ता है अपितु वाक्य-विन्यास में विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों से भाषा के साथ घनिष्ठता उत्पन्न होती है। पढ़ने से एक वाक्य से दूसरा वाक्य सहज कैसे प्रवाहित होता है इसका अनुभव भी बढ़ता है। जिस समाज में एक से अधिक भाषा का सामाजिक संप्रेषण के लिए उपयोग होता है उस बहुभाषी संदर्भ में कौन-सी भाषा या उस भाषा का कौन-सा शब्द किस स्थिति में प्रयुक्त होता है इसका भी परिचय होता है।

विद्यार्थी के पास इतना सब कुछ होने के बावजूद भी वक्ता या लेखक अपनी बात को इतना घुमा-फिराकर कह सकता है कि उसके शब्दों का खेल भाषा सीखने वाले के लिए भूल-भुलैया बन सकता है। वक्ता या लेखक की अपनी व्यक्तिगत शैली होती है जिसमें साहित्यिक सर्जनात्मकता के अलावा हास्य व व्यंग्योक्तियों के द्वारा भाषा बड़ी अलंकारिक बन जाती है। नीचे कुछ उदाहरण देखिए-

- जब बातचीत के दौरान कहा जाए कि ‘कल की ही तो बात है’, तब हाल के अतीत से और जब कहा जाए कि ‘कल किसने देखा है’, तब आशय हाल के भविष्य से होता है।
- जब नंद ने चाणक्य को अपमानित करके दरबार से निकाला तब चाणक्य ने क्रोध से अपने बालों को झटककर कहा कि जब तक मैं नंद वंश का समूल नाश नहीं कर दूँगा तब तक चोटी में गांठ नहीं लगाऊंगा।
- आपको बिन बताए आपके यहां यूँ ही मेरा चले आना लगता है आपको रास नहीं आया। यह आपको शोभा नहीं देता। मैं तो खुले दरवाजों का कायल रहा हूं।
- जब अंदर ही अंदर प्रवहमान प्रणय की सरिता को नायिका ने अपनी ही ओर बहते देखा और नायक नायिका को बहलाने लगा तो नायिका उसके बहकाने में न आकर वहां से

चलने का बहाना मारने लगी ।

- हिमाद्रि-तुंग शृंग से मानो आव्यान करते हुए शृंगी ऋषि ने दशरथ को हविष्यमान देकर कहा कि जाओ इसे रानियों में वितरित कर दो ।
- गंडक सरयू शोण सरस्वती प्रयाग नर्मदा गया तथा विंध्य एवं हिमाचल के तीर्थों में धूमते शालिग्राम क्षेत्र पहुंचे ।

विदेशी शिक्षार्थियों के लिए इन गद्यांशों में अलग-अलग प्रकार की चुनौतियां हैं। कहीं ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता है तो कहीं शब्दों का हेर-फेर है। इसके अलावा कहीं साहित्यिक प्रणाली का अवलंबन करते हुए अभिधा को छोड़कर लक्षणा या व्यंजना शक्ति से अर्थ पहचानने की जरूरत महसूस होती है।

हास्य और व्यंग्य भी अर्थ को कहीं का कहीं ले जाता है। हास्य और व्यंग्य दोनों के कुशल प्रणेता कविवर डॉ. अशोक चक्रधर की लेखनी से प्रसूत यह उदाहरण देखिए-

‘भारत में भांति-भांति के, अनुलोम विलोम वाले और कपाल-भांति के कवि पाए जाते हैं। सूर्य कुमार पांडे के अनुसार भारत में इन दिनों मुख्य रूप से दो प्रकार के कवि हैं- एक बुक वाले, दूसरे बुकिंग वाले। मैं इन्हें कहता हूं- एक पुस्तक वाले, दूसरे उस तक वाले। पुस्तक वाले, उस तक यानी श्रोता तक नहीं जाते और उस तक वाले पुस्तकों से कोई खास सरोकार नहीं रखते। उदय प्रकाश की व्याख्या थोड़ी निर्मम है। वे मानते हैं कि साहित्य की भेड़ियाधसान में दो प्रकार के कवि होते हैं, एक अबूतर दूसरे कबूतर। अबूतर शांत और चुप रहकर घर से ही साहित्य की राजनीति करते हैं और कबूतर साहित्य की राजनीति की चिंता किए बिना इधर-उधर उड़ते फिरते हैं। ये दोनों साहित्य की मूँछ के बालों के समान दाएं-बाएं रहते हैं। इनके बढ़ने की दिशाएं विपरीत हैं। साहित्य की नाक के ठीक नीचे रहने के बावजूद इनमें गैप है।’

इस अंश में हास्य और व्यंग्य दोनों उपस्थित हैं। समाज के अंदर का व्यक्ति तो हँसता-मुस्कुराता इन पंक्तियों के साथ मजे से बह लेता है परंतु बाहर वाले के लिए ये छोटी-छोटी चुटकियां उसे ढेर कर देती हैं। ऐसी स्थितियों में शिक्षक चुने हुए अनेक प्रकार के गद्यांशों का संग्रह विद्यार्थियों के अभ्यास के लिए समय-समय पर अगर दे तो शिक्षार्थी की मुश्किलें काफी हद तक आसान हो सकती हैं। भाषा सीखने-सिखाने के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए विधिवत् अभ्यास ही विदेशी भाषा की सब प्रकार की जटिलताओं को सुलझाने की एकमेव कुंजी है।

विदेशों में प्रवासी जगत् के परिवारों में विरासती भाषा सीखने वाले शिक्षार्थी

जिन व्याकरणिक नियमों की ओर जिस व्याकरणिक प्रक्रिया की चर्चा ऊपर हुई है वह उन शिक्षार्थियों पर लागू नहीं होती जिन्होंने अपने प्रवासी घरों में अपनी पारंपरिक भाषा को घर में प्राकृतिक संदर्भों में सुनकर न्यूनाधिक मात्रा में उस भाषा की संरचना को बचपन में आत्मसात् किया हो। उन्हें विश्वविद्यालय में जाकर अपनी विरासती भाषा सीखते हुए व्याकरणिक विश्लेषणों की दुर्बोध स्थितियों से उसी मात्रा में नहीं जूझना पड़ता जितना दूसरे छात्रों को पड़ता है। अगर गैर-भारतीय मूल के विद्यार्थियों की सीखने-सिखाने की पद्धति को हम शब्द-प्रधान या व्याकरण-प्रधान पद्धति कहें तो प्रवासी भारतीयों के घरों में पते छात्रों के सीखने-सिखाने की पद्धति को हम अर्थ-प्रधान पद्धति कह सकते हैं। ये प्रवासी भारतीय मूल के छात्र भाषा को कमोबेश सुनकर समझ लेते हैं परंतु बोलने की

क्षमता का विकास उनमें बहुत कम होता है। लिखना-पढ़ना उन्हें प्रायः नहीं आता। इतनी सीमित प्रवीणता के बावजूद भी उनके भाषा-ग्रहण की गति बहुत तेज होती है। भाषा को समझने की दक्षता के साथ साथ भाषा के साथ गुर्थी हुए सांस्कृतिक बारीकियों की भी उनकी समझ अच्छी होती है। हास्य विनोद के प्रसंग इसका एक अच्छा उदाहरण है। भाषा में हँसी-मजाक की बात को भारतीय मूल का विद्यार्थी जल्दी समझ लेता है परंतु दूसरे विद्यार्थियों को वह समझाना पड़ता है। ऐसा अनुमान है कि भारतीय मूल के ये विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थियों की तुलना में अपनी भाषा का विकास दो वर्षों में लगभग तीन गुना तक अधिक कर लेते हैं परंतु इन विद्यार्थियों को हिंदी में भाषा-द्वैत होने के कारण औपचारिक शब्दावली पर काबू पाने के लिए दूसरों की तरह उतना ही काम करना पड़ता है। जो भारतीय मूल के विद्यार्थी हिंदी-भाषी परिवारों से नहीं होते वे भी हिंदी-चलचित्रों के कारण और समान सांस्कृतिक आधार होने के कारण अपना हिंदी-भाषा-ग्रहण त्वरित गति से करते हुए अनुभव में आए हैं। इस विद्यार्थियों में अवचेतन में बसी कुछ ऐसी बातें होती हैं जो मानक भाषा के नियमों के अनुसार ठीक नहीं होतीं और उन्हें एक एक करके त्यागना और उन्हें ठीक करना आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए एक शब्द कहां समाप्त होता है और दूसरा कहां शुरू होता है इसका ज्ञान उन्हें औपचारिक स्थितियों में विद्यार्जन से ही प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए ‘गिर गया’ शब्द उनके लिए एक इकाई हो सकती है और वे लिखने में इसे गिरया लिखें। ऐसे और भी बहुत उदाहरण हैं जहां शब्दों के सीमाओं से अवगत होना विशेषकर लिखने में और फिर ठीक से बोलने में आवश्यक हो जाता है।



विदेश में हिंदी

इक्कीसवीं सदी में हिंदी शिक्षण का नया मार्ग

गैब्रिएला इलेवा

इक्कीसवीं सदी में विविध कारणों से तेजी से बदलाव आ रहे हैं। विशेषकर तेज रफ्तार से हो रही तकनीकी और प्रौद्योगिकी उन्नति के परिणामस्वरूप संचार माध्यमों का प्रभावशाली विस्तार हो रहा है जिससे विश्व स्तर सूचनाओं का आदान-प्रदान हो रहा है।

सर्वप्रथम, वर्तमान युग नवीनता और रचनात्मक संचालित विश्वव्यापी अर्थव्यवस्थाओं का है जहां रचनात्मकता, लचीली सोच या अपने आप को स्थिति के अनुरूप ढालना, काम के दौरान सीखना और तकनीकी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। दूसरी बात, यह संसार वैश्विक संबंधों या संपर्कों का है, जो असली (रियल) और वास्तविक लगाने वाले (वर्चुअल) संचार माध्यम से और सोशल मीडिया, फोन कॉल कार्ड, मुफ्त वीडियो कॉल और चैट आदि के द्वारा एक दूसरे से जोड़ता है जिसके लिए नई इंटरपर्सनल और इंटरापर्सनल, सांस्कृतिक, बहुभाषी और बहुदंद्रात्मक योग्यताओं की दक्षिण एशिया, मध्य पूर्वी और दक्षिण अमेरिका जैसे देशों में जरूरत है।

इन सबके अलावा, दुनिया में, विशेष रूप से वैश्विक समाचारों, फिल्मों के द्वारा मनोरंजन, सैटलाइट चैनलों, अंतर्राजाल समाचार से इतनी जानकारी उपलब्ध है कि उसको देखना और संभालना, उससे जुड़ी ज्ञान संबंधी योग्यता, वास्तविक, वैचारिक, कार्यविधि संबंधी और गूढ़ जानकारी के अलावा (Based on Bloom's taxonomy, 1956 and modified by Laurin Anderson and David Krathwahal, 2001) ऐसे ज्ञान की आवश्यकता है जो ज्ञान और मानवीय मूल्यों के ऊपर बना हो जहां व्यक्तित्व और बुद्धि एक दूसरे का आधार हो और निर्णय लेने में सुविधा हो।

इक्कीसवीं सदी ऐसी सामाजिक दुनिया भी है जहां सामान्य नागरिक अंतर्राजाल और सोशल मीडिया के द्वारा स्थानीय राजनीति और वैश्विक स्तर पर नेतृत्व प्रदान कर रहे हैं (Based on Partnership for 21st Century Learning, 2010 Trilling and Fadel, 2009) और इक्कीसवीं सदी के लिए संशोधित वर्गीकरण प्रस्तावित कर रहे हैं, जिसे वह "knowledge and skills Rainbow" कहते हैं। इस प्रतिमान की कल्पना सातत्य पर सीखने की विधा से अमल करने की विधा ही नहीं है परंतु यह ढीली और सहजीवी प्रक्रिया है जहां यह क्रम शिष्यों की पहली योग्यता, उनकी सीखने की तत्परता और उनकी दिलचस्पी पर भी निर्भर करता है और उलटा भी हो सकता है।

नया मॉडल आत्मेचनात्मक सोच के विकास पर जोर डालता है, बातचीत करने की योग्यता पर, साथ काम करने की क्षमता पर और रचनात्मक और नवीनता पर, जो उसके पांच लक्षित क्षेत्र

हैं। भाषा सीखने के लिए इक्कीसवीं सदी के वर्ल्ड रेडिनस मानक स्पष्ट रूप से बताते हैं और उन योग्यताओं के विकास को बढ़ावा देते हैं जिससे छात्र अच्छी तरह से घर में और संसार में बहुभाषी समुदायों में अच्छी तरह से भाग ले सकें।

सबसे अच्छी शिक्षण-पद्धति असली जिंदगी के विभिन्न संदर्भों में सब विषयों पर रूपरेखा और अवसर प्रदान करती है। हिंदी की कक्षाओं में छात्रों को सार्थक और रुचिपूर्ण शिक्षा देना अद्वितीय है न केवल सामाजिक व सांस्कृतिक और भाषा की क्षमता और अलग अलग विषयों में सामग्री और ज्ञान के विकास के लिए बल्कि ज्ञान संबंधी और व्यावसायिक निपुणता के लिए।

हिंदी की कक्षाओं में अक्सर प्रेजेनेटेशन, प्रैक्टिस और प्रोडक्शन (PPP) की पुरानी पद्धति का भाषा को पढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है। हम शिक्षकों के लिए PPP की पद्धति की लीक से हटकर दूसरी विधा को अपनाना, अपनी सोच को बदलना और कक्षाओं में पाठ्यक्रम की योजना बनाना क्रांतिकारी परिवर्तन की तरह है। अध्यापकों को इक्कीसवीं सदी की योग्यताओं के लिए बेहतर ढंग से तैयार होना होगा जिससे कि वे अपने छात्रों को हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति पढ़ाकर और सिखाकर इक्कीसवीं सदी के अनुकूल तैयार कर सकें और वैशिक क्षमता के लिए तैयार हो जाएं।

अर्थात् आज एक नया शैक्षिक परिवेश उभरकर आ रहा है। इसलिए हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में उन्नति प्राप्त की जाने के लिए शिक्षा-पद्धति की दृष्टि से उकसाना बड़ी प्राथमिकता है। हिंदी पढ़ाने के साथ साथ इक्कीसवीं सदी के कौशल-प्रशिक्षण सफल होने के लिए कई नियम या सिद्धांत अपनाने की जरूरत है। स्टारटॉक (<https://startalk.umd.edu/public/>) एक अमेरिकी सरकार का अभियान है जिसका सन् 2007 में कई भाषाओं के साथ प्रारंभ हुआ था और 2008 उसमें हिंदी भी सम्मिलित हुई। स्टारटॉक का उद्देश्य है कि अमेरिका में अन्य भाषी समुदायों की भाषाएं और संस्कृतियां सुरक्षित रहें, उपेक्षित न की जाएं। स्टारटॉक द्वारा अनुमोदित सिद्धांत प्रभावशाली ढंग से भाषा सीखने और सिखाने की विशिष्टताओं का वर्णन करते हैं। इसके अंतर्गत छात्रों को मानक-आधारित तथा विषयानुसार संगठित एक ऐसा सीखने का आदर्श अनुभव दिया जाता है जिसमें संस्कृति, विषय तथा भाषा का पूरा समन्वय हो। छात्र प्रामाणिक, आयु-अनुरूप पाठ के साथ छात्र-केंद्रित वातावरण में काम करते हैं और हिंदी भाषा में ही रोजमर्रा के जीवन के काम निभाते हुए कक्षा के बाहर भी उसी का उपयोग करते हैं। (Based on Glisan, 2017 and <https://wp.nyu.edu/virtualhindi/startalk-principles/>)

उनमें से सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है विद्यार्थी-केंद्रित पद्धति। अपनी शिक्षा से और अपनी पढ़ाने की आदतों से प्रभावित अध्यापकों को हिंदी कक्षा की सारी सामग्री, गतिविधियां और पाठ्यक्रम अपने हाथ से सिर्फ नियंत्रित करने की प्रवृत्ति है जिस से क्लास में अभिरोचन का अभाव होने लगता है। विशेषज्ञों के अनुसार यदि पढ़ाई से जुड़े निश्चय करने में विद्यार्थियों को भी शामिल किया जाएं तो उनकी रुचि बढ़ जाती है और वे अधिक उत्तरदायी हो जाते हैं। (Wang, 2009) विद्यार्थी-केंद्रित सिद्धांत के अनुसार शिष्यों की विशेषताओं, आवश्यकताओं, उद्देश्यों और रुचियों के आधार पर पठन-पाठन का विकास किया जाता है। शिक्षक या शिक्षिका छात्रों के काम के मुताबिक आगे के शिक्षण के फैसले लेते हैं और उनके काम को लगातार बेहतर बनाने के लिए कई तरीकों का सहारा लेते हैं क्योंकि विद्यार्थियों की आदतें, सीखने की शैलियां और पठन-विधि विविध हैं। उनमें

से कुछ छात्र पढ़ने के द्वारा जल्दी सीखते हैं, दूसरे छात्र अचल होने की अवस्था में कुछ नहीं सीख सकते हैं उनको अभिनय और व्यवहार करने से नयी सामग्री स्पष्ट हो जाती है। कुछ ऐसे छात्र हैं जो लिखने से सबसे जल्दी नया ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उस प्रकार की कक्षा में सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक और शिक्षिका छात्र का साथी-सहभागी होते हैं। वे छात्रों को जीवन-अनुभवों में सहज बोध के साथ जुटने की चुनौती देते हैं। शिक्षक और शिक्षिका छात्रों को जोड़ों और समूहों में उनकी पसंद के विषयों को समझने और उन पर विचारों की अभिव्यक्ति के अनेकों अवसर देते हैं। छात्र लगातार आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।

दूसरा सिद्धांत भाषा के उपयोग का स्तर, शैली या कठिनता ध्यान में लाता है। शिक्षण में कार्यकुशलता के लिए विद्यार्थियों की प्रवीणता के अनुसार ही जान बूझकर चुनी हुई हिंदी भाषा का हमेशा स्पष्ट तरीके से उपयोग करना है, जिसका अर्थ है कि हिंदी भाषा को छात्रों के लिए सुलभ बनाना है और इसके साथ थोड़ी सी चुनौती दिलाने के लिए मौके बनाने हैं। शिक्षक/शिक्षिका कक्षा में 90% समय लक्ष्य भाषा का ही इस्तेमाल करते हैं और भाषा को समझने लायक या बोधगम्य बनाने का नमूना पेश करते हैं। छात्र शब्द भाषा-संदर्भों में इस्तेमाल करके सीखते हैं जैसे कि कहानियों, तस्वीरों के वर्णन या विषय के संदर्भ में, अनुमान लगाकर शब्दों का अर्थ और व्याकरण का प्रयोग समझ सकते हैं। वास्तव में, शिक्षक अनुवाद की अवहेलना करते हैं और बोलचाल की भाषा के ढांचों का उद्देश्यपूर्ण उपयोग करके संप्रेषण करते हैं तथा छात्रों को भी अनुवाद करने से बरजता है। शिक्षक/शिक्षिका भाषा को बोधगम्य बनाने के लिए कई तरह के उदाहरणों का इस्तेमाल करते हैं, ताकि दूसरी भाषा में स्पष्टीकरण या विश्लेषण सुने बिना छात्रों की समझ में भाषा की रूपरेखा उभरकर आए। यह सिद्धांत अपनाना अध्यापकों के लिए सबसे कठिन साबित होता है, लेकिन महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि शुरू से ही संदर्भ या अर्थ अस्पष्ट होने पर भी हिंदी भाषा में संप्रेषण करने की कोशिश करना छात्रों के लिए सबसे लाभदायक है।

हिंदी की कक्षा का प्रधान उद्देश्य यह है कि छात्रों को मालूम हो कैसे, कब और क्यों किसी से क्या कहना है? तीसरे सिद्धांत के अनुसार संस्कृति, विषय-वस्तु तथा भाषा के समावेश पर ध्यान दिया जाना है जिसमें सांस्कृतिक कृतियों, गतिविधियों तथा परिप्रेक्ष्यों के अर्थपूर्ण उदाहरण देना और प्रासंगिक व्याख्या करना बहुत सहायक समझा जाता है। जब हिंदी की कक्षा में छात्र हिंदी संस्कृति की वस्तुओं, रिवाजों तथा परिप्रेक्ष्यों के आपसी संबंधों पर सोच-विचार करते हैं तब वे सांस्कृतिक ज्ञान और अंतर्रूपि प्राप्त करने में लिप्त होते हैं। विषय-वस्तु संबंधी शिक्षा की योजना और तैयारी ऐसी होनी चाहिए जो छात्रों को अपने आसपास की दुनिया के अध्ययन करने में और असली हिंदी जगत से सार्थक संबंध बनाने में सहायक हो। फलस्वरूप, छात्र हिंदी भाषा का इस्तेमाल करते हुए दूसरे विषयों तथा संसार की अपनी जानकारी का निर्माण और विस्तार करते हैं। लक्ष्य यह है कि छात्रों के भाषा सीखने का अनुभव कुछ इस तरह बनाया जाए कि विषय-वस्तु और सांस्कृतिक प्रसंगों का अन्वेषण करते हुए वे हिंदी भाषा का ही इस्तेमाल करें। उचित अभ्यासों के आधार पर छात्र सार्थक व सोहेश्य संप्रेषण करते हैं और वे आपस में खुलकर बातचीत करते हैं।

चौथा सिद्धांत प्रामाणिक सामग्री की कांटछांट और उनका छात्रों की आयु के आधार पर उपयोग करने पर बल देता है। छात्रों को प्रामाणिक सामग्री को समझने और उस पर बातचीत करने के निर्देश

देना बहुत लाभदायक होता है। शिक्षक/शिक्षिका प्रामाणिक सामग्री का इस्तेमाल करते हैं तथा छात्रों की उम्र और भाषा की प्रवीणता के अनुसार ही उनका कार्य नियत करते हैं। देशी भाषा की प्रवीणता का अर्थ है कि किसी भाषा में ऐसा सामर्थ्य विकसित होना चाहिए जिसके द्वारा व्यक्ति अन्य भाषा बोलने वाले और अन्य संस्कृति के समुदायों के सदस्यों से व्यावसायिक संदर्भ में उचित बात कर सके और देश-विदेश के मुद्दों में भाग लेने को तैयार हो। (ACTFL, 2012) वे कई तरह की लिखित और अलिखित प्रामाणिक सामग्री कक्षा में उपलब्ध करती है ताकि जब विद्यार्थी क्लास के बाहर जाएँगे वास्तविक पर्यावरण में, तब उनके सहज व स्वाभाविक रूप से संवाद में भाग लेने और बात समझने के समुचित कौशल हों।

पांचवें सिद्धांत के अंतर्गत कार्य-क्षमता पर आधारित मूल्यांकन है। उसका अर्थ है कि क्योंकि हिंदी की कक्षा में छात्रों की कार्य-क्षमता को लगातार सुधारना एक बड़ा उद्देश्य मना जाता है इसलिए रचनात्मक मौखिक सलाह-मशविरा देना एक उपकारी प्रविधि सिद्ध होता है। पाठ के दौरान सिर्फ रचनात्मक जांच की जाती है ताकि छात्रों को उनकी आवश्यकता के के अनुसार सही समय पर सही सलाह या उपदेश दी जा सके। छात्र जानते हैं कि अपने सीखने के विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में वे कैसे कर रहे हैं और बेहतर होने के लिए वे क्या कर सकते हैं? इसके अलावा उन्होंने कितना सीखा है, इसकी जांच वे खुद कर सकने की योग्यता रखते हैं। अंततः छात्र यथार्थ दुनिया में भाषा का इस्तेमाल किस तरह होता है इसका प्रदर्शन कार्य दिखाकर करते हैं कि अपने पाठ के उद्देश्य को उन्होंने कितनी अच्छी तरह से ग्रहण कर लिया है।

आखिरकर एक और महत्वपूर्ण सिद्धांत है- मानक आधारित व विषयानुसार नियोजित पाठ्यक्रम बनाना और इस्तेमाल करना। उसका यह अर्थ है कि हर पाठ का विषय मानक आधारित हो। हर पाठ में छात्र की रोजमरा के जीवन में भाषा के इस्तेमाल की बढ़ती हुई कार्य-क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। इसके अलावा हर एक पाठ के विशिष्ट उद्देश्य पहले से ही तय किए जाते हैं कि छात्र उसे खत्म करने पर कितना जान पाएगा और क्या कर पाएगा? इस सिद्धांत के अनुसार पाठ संरचना शोध पर आधारित होना चाहिए और उसका क्रम इस तरह से निर्धारित किया जाना चाहिए, ताकि छात्र ज्यादा से ज्यादा सीख सकें। व्याकरण के बजाय शिक्षण का पूरा बल पाठ या इकाई पर दिया जाता है। व्याकरण संप्रेषण में सहायक एक अस्त्र मात्र समझा जाता है। इस तरह छात्र निर्धक रट्टा नहीं लगाते बल्कि अर्थ पर ही ध्यान देते हैं।

हिंदी भाषा की कक्षा में वार्तालाप या बातचीत के लिए समुदाय का निर्माण करना और संप्रेषण करना सबसे उपयोगी है। बहुत सारी स्थितियों और उद्देश्यों के लिए भाषा का सार्थक प्रयोग ही प्रभावशाली संप्रेषण है। हर हिंदी की कक्षा में वार्तालाप के माध्यम से संप्रेषण करने के मौके बनाए जाते हैं। छात्र बातचीत, मौखिक या लिखित वार्तालाप के माध्यम से सूचनाओं, अपनी प्रतिक्रियाओं, अनुभूतियों और मत का आदान-प्रदान करते हैं। व्याख्यात्मक संवाद/संप्रेषण छात्र अलग-अलग विषयों पर जो देखा, सुना या पढ़ा गया है उसे समझते, गुनते-मर्थते और विश्लेषण करते हैं। प्रस्तुतिकरण रूप संवाद/संप्रेषण छात्र विभिन्न विषयों पर सूचना, अवधारणा या विचार इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि सुननेवालों, देखनेवालों और पाठकों के अनुरूप ही भाषा को अपनाकर कर सूचना, विचार या व्याख्या को उनके (श्रोताओं के) अनुकूल बनाकर पेश किया जा सके।

संस्कृति : सांस्कृतिक समझ और सामर्थ्य के आधार पर बातचीत करना। सांस्कृतिक रिवाजों और परिप्रेक्षणों का संबंध छात्र भाषा का इस्तेमाल सांस्कृतिक रिवाजों और परिप्रेक्षणों के बीच के संबंध की खोज, व्याख्या और उन पर चिंतन-मनन के लिए करते हैं। सांस्कृतिक कृतियों और परिप्रेक्षणों का संबंध छात्र भाषा के इस्तेमाल से सांस्कृतिक वस्तुओं और परिप्रेक्षणों के बीच के संबंधों पर खोज, व्याख्या और चिंतन-मनन करते हैं।

संबंध : विद्या और नौकरी संबंधी स्थितियों में भाषा के इस्तेमाल के लिए दूसरे विषयों से संबंध बनाना तथा उनके बारे में सूचना और अलग तरह से देखने का नजरिया पाना।

संबंध बनाना शिक्षार्थी भाषा के इस्तेमाल से आलोचनात्मक विचारों का विकास तथा रचनात्मक ढंग से समस्याओं का निदान करते हुए दूसरे विषयों में ज्ञान का विस्तार करते हैं। सूचना व अलग दृष्टिकोण प्राप्त करना भाषा और उसकी संस्कृति के जरिए से जो सूचनाएं व परिप्रेक्ष्य उपलब्ध होते हैं, छात्र उनकी प्राप्ति व मूल्यांकन करते हैं।

तुलना : सांस्कृतिक सामर्थ्य के आधार पर बातचीत करने के लिए भाषा व उसकी संस्कृति की प्रकृति में अंतर्दृष्टि का विकास करना। भाषा तुलना छात्र सीखी जा रही भाषा और अपनी भाषा की तुलना के माध्यम से भाषा की प्रकृति की खोज, व्याख्या और उस पर चिंतन करते हैं। सांस्कृतिक तुलना छात्र भाषा के इस्तेमाल से अपनी व सीखी जानेवाली भाषा की संस्कृति की तुलना करते हुए संस्कृति की प्रकृति का मनन, खोज और व्याख्या करते हैं।

समुदाय : घर और संसार के बहुभाषी समुदायों से सांस्कृतिक सामर्थ्य के साथ संप्रेषण व भाषिक आदान-प्रदान करना। स्कूल व वैश्विक समुदाय छात्र कक्षा व कक्षा से बाहर भाषा का इस्तेमाल अपने समुदाय तथा वैश्विक परिवार के साथ भाषिक आदान-प्रदान व सहयोग के लिए करते हैं।

यदि हिंदी की कक्षा में पाठ पढ़ने और शिक्षक की बात सुनने पर कम बल दिया जाए और विद्यार्थियों के लिए पारस्परिक रूप से सार्थक बात करने की संभावनाओं को अभिकल्प किया जाए तो छात्रों का हिंदी पढ़ने का उत्साह उत्पन्न होगा और वे आजीवन हिंदी सीखने के लिए प्रेरित होंगे। हिंदी पाठन का आधुनिकीकरण नयी पीढ़ी के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कक्षा के बाहर के अवसरों से और तकनीकी संसाधनों से भी लाभ उठाने के लिए योजनाएं बनाने के लिए शिक्षकों को उत्तेजित करने के प्रयास किए जाने चाहिए (Blyth, 2012)।

आज तक अमेरिका और दूसरे देशों में हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति के शिक्षण-प्रशिक्षण के विकास लिए दो प्रकार की प्रक्रियाएं देखी जा सकती हैं। एक है नीचे से ऊपर की प्रक्रिया अर्थात् देशी समुदाय के व्यक्तिगत या सामूहिक प्रयासों के द्वारा नियोजन किया जाता है। ऐसे प्रयास लोगों की आवश्यकताओं के अनुसार किए जाते हैं और उनको समाज का समर्थन भी मिलता है, लेकिन ऐसे प्रयासों में अकसर देखा गया है कि ये घर, मंदिर या कम्युनिटी हॉल तक ही सीमित रहते हैं और यहां की शिक्षा प्रणाली का भाग नहीं बन पाते हैं और दूसरे पैसों का भी अभाव रहता है इसलिए उनके विकास की गति काफी धीरे होती है।

जो दूसरी प्रक्रिया है वह उलटी है- ऊपर से नीचे की- जिसका आधार सरकार या शिक्षा-संस्थान है जिनके द्वारा हिंदी के पठन-पाठन का प्रायोजन किया जाता है। नए कार्यक्रमों को स्थापित या पुराने कार्यक्रमों को विस्तृत करने के लिए सहायता मिलती है और इस के लिए धनराशि भी उपलब्ध की

जाती है परंतु यह थोड़े समय के लिए ही सहायता होती है, जो अक्सर राजनीतिक निर्णयों के अधीन होती है। इसमें हिंदी-भाषी समुदाय का कोई योगदान नहीं होता और उनकी आवश्यकताओं पर भी ध्यान नहीं दिया जाता।

जब हिंदी के क्षेत्र के विकास के लिए दोनों ओर से प्रयत्न किए जाएं तब अधिक सफलता मिल सकती है। आज हम एक ऐसे मोड़ तक पहुंच आए हैं जिसके आगे सिर्फ एक मार्ग है- जैसे ही आज की नयी पीढ़ी की दुनिया, उनका जीवन और भविष्य बदल रहे हैं वैसे ही अध्यापकों की भाषा-शास्त्र के क्षेत्र में जानकारी और भाषा-पढ़ाने की पद्धति के क्षेत्र में निपुणता बदलनी शुरू हुई है और बदलती रहनी चाहिए (Johnson, 2009)। अध्यापकों की प्रगति के लिए आवश्यक रास्ता बनाना तथा भाषा-शिक्षा के क्षेत्र से दूसरी भाषाओं के नमूने प्राप्त करना एवं अपनाना सबसे प्रथम और आवश्यक कदम समझा जा सकता है।

संदर्भ :

- American Council on the Teaching of Foreign Languages- (2012). ACTFL Proficiency Guidelines-Speaking. Retrieved March 15, 2012 from <http://www.actfl.org/files/public/Guidelinespeak.pdf>
- Anderson, L.W. and Krathwohl, D.R., et al (Eds.) (2001) A Taxonomy for Learning, Teaching, and Assessing% A Revision of Bloom's Taxonomy of Educational Objectives. Allyn-Bacon. Boston, MA (Pearson Education Group)
- Blyth, C. (2012). Opening up foreign language education with open educational resources. F. Rubio - J. Thoms (Eds.), Hybrid language teaching and learning% Exploring theoretical, pedagogical and curricular issues (pp. 196–218). Boston, MA% Heinle Thomson.
- Glisan, E.W. and Donato, R. (2017) Enacting the Work of Language Instruction: High-Leverage Teaching Practices, American Council on the Teaching of Foreign Languages (ACTFL)
- Krathwohl, D.R. (2002) A Revision of Bloom's Taxonomy. (PDF) in Theory into Practice. V 41. \$4. Autumn, 2002. Ohio State University. Retrieved / <https://thesecondprinciple-com/wp-content/uploads/2018/02/blooms-taxonomy-revised.pdf>
- Johnson, K.E. (2009). Second language teacher education; a sociocultural perspective. New York, Routledge.
- Partnership for 21st Century Skills. (2010). 21st Century Knowledge and Skills in Educator Preparation. Retrieved / <https://files.eric.ed.gov/fulltext/ED519336.pdf>
- Trilling, B., -Fadel, C. (2009). 21st Century Skills; Learning for Life in Our Times. San Francisco, CA; John Wiley-Sons.
- Wang, S. (2009). Preparing and supporting teachers of less commonly taught languages. Modern Language Journal, 93(2), 282–287

चीन में हिंदी : संभावनाएं और चुनौतियां

ली या लान

चीन और भारत का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संबंध रहा है। चीन में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की शुरुआत 20वीं शताब्दी के 40 दशक से शुरू हुई थी। इस ऐतिहासिक 80 सालों के दौरान, चीन व भारत के संबंधों में उत्तर-चढ़ाव के साथ-साथ पीढ़ी दर पीढ़ी विद्वानों के अथक प्रयासों के कारण हिंदी के अध्ययन एवं अध्यापन से संबंधित बहुत कुछ उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। 21वीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंदी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृति का अध्ययन-अध्यापन का चीन में बहुत तेजी से विकास हो रहा है। निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि आने वाले भविष्य में हिंदी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृति की शिक्षा की चीन में अनंत संभावनाएं हैं इसमें दो मत नहीं है। इसके साथ-साथ यह कहना भी गलत न होगा कि चीन में हिंदी के विकास का उज्ज्वल भविष्य निश्चित रूप से आने वाले समय में देखा जा सकता है, पर इसके विकास के लिए अनेक चुनौतियां भी मौजूद हैं जिसको हम अनदेखा नहीं कर सकते। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए दोनों देशों के बीच सहयोग एवं कड़े प्रयत्न करने की जरूरत है।

चीन में हिंदी : इतिहास एवं वर्तमान स्थिति

सन् 1942 में, जापानी आक्रमण विरोधी युद्ध के समय चीन के युन्नान प्रांत में पहली बार हिंदी भाषा एवं साहित्य कक्षा की शुरुआत हुई थी। तब से लेकर वर्तमान समय तक हिंदी के शिक्षा क्षेत्र में काफी उत्तर-चढ़ाव देखने को मिलता है। इस उत्तर-चढ़ाव को देखते हुए पेइचिंग विश्वविद्यालय के हिंदी विद्वान प्रो. च्यांग चिंगखोई ने इसे पांच काल में विभाजित किया है : 1942-1948 का आरंभिक काल, 1949-1965 का समृद्ध विकास काल, 1966-1976 का उतार काल, 1976-2005 का पुनरुत्थान काल और 2005-2018 का तेज विकास काल। अस्सी से ज्यादा वर्ष के इतिहास में लगभग हिंदी विद्वानों की पांच पीढ़ी प्रशिक्षित हुई है। इन विद्वानों के प्रयास से हजारों से ज्यादा हिंदी-विद्यार्थियों को हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति के बारे में शिक्षा प्रदान की गयी है, और उन्होंने तरह-तरह की अकादमिक उपलब्धियां प्राप्त की हैं। हिंदी व्याकरण, हिंदी पाठ्यपुस्तक, बृहत् हिंदी-चीनी शब्दकोश, बृहत् चीनी-हिंदी शब्दकोश, हिंदी साहित्य का इतिहास आदि हिंदी अध्यापन के लिए उपयोगी किताबों की रचना की और अनेक हिंदी उपन्यासों, कहानियों, कविताओं आदि का भी चीनी में अनुवाद किया गया है। 21वीं सदी में आरंभ के बाद, चीन में हिंदी शिक्षण का तेजी से विकास दिखाई देता है। सन् 2018 तक, चीन में हिंदी भाषा एवं साहित्य का

अध्ययन-अध्यापन देने वाले विश्वविद्यालयों की संख्या पहले के एक से आज दस से ज्यादा बढ़ गयी, यह देश भर में दक्षिण से उत्तर के क्षेत्रों में कार्यरत हैं। चीन में हिंदी सीखने वाले और हिंदी से संबंधित शिक्षण अध्ययन एवं शोध करने वालों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। हिंदी शिक्षण के पैमाने और योग्यताओं की वृद्धि हमारे सामने चीन में हिंदी का एक उज्ज्वल भविष्य दिखाई दे रहा है।

विशाल संभावनाएं

भविष्य में चीन में हिंदी के अध्ययन एवं अध्यापन की विशाल संभावनाएं हैं। हिंदी भाषा शिक्षण के बाह्य वातावरण में बदलाव और आंतरिक विकसित शक्ति में बढ़ावा इन दोनों पक्षों से समझ सकते हैं।

सबसे पहले, चीन और भारत दोनों देशों में हिंदी भाषा शिक्षण से संबंधित बाह्य वातावरण में ऐसा बदलाव आया है जिससे चीन में हिंदी शिक्षण को प्रोत्साहन मिला है। इन बाह्य वातावरण के बदलाव के असर पहले ही चीन में हुए हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग ने 2013 में एक पट्टी एक मार्ग (OBOR) का यह प्रस्ताव रखा था। इस प्रस्ताव को आगे बढ़ाने के लिए मार्ग के समीप देशों की भाषाएं, संस्कृति आदि जानकारियां जानने की जरूरत है, जिसके कारण चीन में विदेशी भाषा शिक्षण की नीति पर बड़े परिवर्तन हुए हैं, जिसमें पहले की तुलना में OBOR के तटवर्ती देशों की भाषाओं को ज्यादा महत्व दिया जाता है। भारत इस प्रस्ताव के तटवर्ती देशों में से एक है। भारत के साथ सहयोग बढ़ाने के लिए चीन में भारत की भाषाओं का शिक्षण बढ़ाने की विभिन्न शोध योजनाएं हैं, जिनमें हिंदी भाषा सबसे महत्वपूर्ण स्थान पर है। यह शोध योजनाएं चीन में हिंदी शिक्षण को निश्चित रूप से आगे बढ़ा पाएंगे जबकि भारत में भी हिंदी शिक्षण के बाह्य वातावरण में बदलाव हुए हैं। वर्तमान में नरेंद्र मोदी सरकार के कार्यकाल में हिंदी भाषा पर और ज्यादा महत्व दिया जा रहा है। भारत के प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी न सिर्फ अपने भाषणों में ज्यादा हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं, पर सार्वजनिक क्षेत्रों और सामाजिक संपर्क मीडिया में भी वे हिंदी का अधिक प्रयोग करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करते हैं। इसके साथ साथ भारतीय राजनीतिक अधिकारी संयुक्त राष्ट्र महासभा जैसे अनेक अंतरराष्ट्रीय मंचों पर अधिक से अधिक हिंदी में ही भाषण देते रहे हैं, और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का प्रचार-प्रसार बहुत तेजी से आगे बढ़ता रहा है, जिसने विदेशी में हिंदी भाषा की महत्वपूर्ण पहचान बन गई है। इस परिषेक्ष्य में चीन में हिंदी की शिक्षा को जरूर प्रोत्साहन मिलता है।

बाह्य वातावरण के बदलाव में चीन और भारत दोनों देशों के बीच परस्पर संबंधों में लगातार विकास होता रहा है। 21वीं शताब्दी में प्रारंभ में चीन और भारत के बीच संबंधों को दोनों देशों के नेताओं की लगातार मुलाकात और पास्पारिक यात्राओं से यह संबंध सकारात्मक और मजबूत हो रहा है, जिससे राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक, और सांस्कृतिक आदान-प्रदान में विस्तार हो रहा है। विभिन्न तरह के आवाजाहियों, सांस्कृतिक गतिविधियों (जैसे- हिंदी फिल्म चीन में आई) और व्यापारिक सहयोग से एक तरफ चीन में हिंदी जानने वाली प्रतिभाओं की मांग बढ़ रही है, जिसने चीन में हिंदी की शिक्षण को सीधा प्रोत्साहन मिलता है और चीन में भारत से संबंधित जानकारियां प्रदान की जाती हैं, जिसने चीनी लोगों के दिल में हिंदी भाषा से भारत को गहराई से जानने की जिज्ञासु प्रवृत्ति को जगाया है इससे चीन में हिंदी की लोकप्रियता बढ़ी है। यह सब चीन में हिंदी

की विशाल संभावनाओं के लिए समर्थन हैं।

दूसरे, इधर के कुछ वर्षों में चीन में हिंदी शिक्षा में जो वृद्धि दिखाई दे रही है, यह हिंदी शिक्षण के लिए आंतरिक विकसित शक्ति बन गयी है। बहुत सालों के धीमे विकास के बाद 21वीं सदीं के पहले दशक में चीन में हिंदी शिक्षा के तेज विकास ने भविष्य में हिंदी के अध्ययन एवं अध्यापन के लिए भाषा शिक्षण के अनुभव, सामग्री, पद्धति और खास तौर पर नवयुवकों में हिंदी जानने वाली प्रतिभाएं तैयार हुई हैं। नई पीढ़ी के नौजवान अब हिंदी के अध्ययन और अध्यापन में उत्साह दिखा रहे हैं। हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा की पहचान मानकर हिंदी और चीनी के बीच सीधा संबंध बनाने की इच्छा है और नए युग के नए मीडियों माध्यमों से हिंदी का अध्यापन करने, प्रयोग करने और प्रसार-प्रचार करने का योग्यता इन छात्रों में है। यह युवा चीन में हिंदी के भविष्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण और सार्थक प्रयास के लिए कारगर है।

इसलिए हम कह सकते हैं आने वाले भविष्य में हिंदी शिक्षण चीन के अधिक विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों में अध्ययन-अध्यापन की शुरुआत होगी। इसके साथ-साथ ही हिंदी में लिखी किताबों को चीनी में अनुवाद एवं द्विभाषीय अनुवाद में सक्रियता मिलेगी। हिंदी से संबंधित सभी अकादमिक एवं सामाजिक गतिविधियां अधिक से अधिक चीन में आएंगी तभी जाकर चीन में हिंदी न सिर्फ एक विषय या अकादमिक प्रयोग की भाषा होगी तो हिंदी चीनी आम लोगों के लिए एक लोकप्रिय विदेशी भाषा के रूप में सीखी जाएगी।

चुनौतियां

जैसा हम सब लोग जानते हैं कि उज्जवल प्रभात आने के पहले अँधेरी रात कभी कम नहीं होती। चीन में हिंदी की शिक्षा अपने उज्जवल भविष्य का स्वागत करने के पहले उसके समक्ष कई चुनौतियां भी हैं।

चीन में हिंदी की शिक्षा की सबसे बड़ी चुनौतियां व्यावहारिक क्षेत्रों में हिंदी के प्रयोग से जुड़ी हुई हैं। इस पक्ष के दो आयाम हैं। पहली तरह की चुनौती हिंदी के प्रयोग की अनेकता की है। जैसा कि सब लोग जानते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों पर हिंदी के प्रयोग में विविधाताएं होती हैं, और बोलियों के रूप में हिंदी, मीडिया में हिंदी और साहित्य में हिंदी सभी क्षेत्रों में प्रयोग करने वाली हिंदी में बहुत फर्क है। प्रयोग करते समय हिंदी की यह विशेषता हमेशा हमारे सामने यह प्रश्न उठाती है कि कौन-सी हिंदी विश्वविद्यालय की कक्षा में पढ़ाई जानी चाहिए। अब चीन में हिंदी पढ़ाने के पाठ्यक्रमों में कभी बहुत शुद्ध हिंदी पढ़ाई जाती है, पर इस शुद्ध हिंदी में ज्यादा तद्भव और किताबी शब्द हैं जो केवल साहित्य में ही प्रयोग करते हैं। कभी-कभार बहुत बाजारू हिंदी पढ़ाई जाती है, पर बाजारू हिंदी में ज्यादातर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग होता हैं जो सही हिंदी की जानकारियां प्राप्त करने के लिए असमर्थ है। इस परिप्रेक्ष्य में ऐसी स्थिति बनी हुई है कि हमने जो हिंदी सीखी है, वह हिंदी भाषा विज्ञान की दृष्टि से शुद्ध तो है पर व्यावहारिक क्षेत्रों में प्रयोग करने की दृष्टि से बेकार है। हिंदी के प्रचलित अमानक प्रयोग और शुद्ध भाषा-विज्ञान के विकास को बढ़ाने के लिए दोनों में संतुलन करके कैसे मानक हिंदी पढ़ाने के पाठ्यक्रम बनाना यह कार्य चीन में हिंदी शिक्षण के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है। इस मुद्दे को समाधान करने के लिए अब चीन में हिंदी पढ़ाने वाले लोग प्रो. च्यांग चिंगब्लेई जैसे हिंदी विद्यान के नेतृत्व में एक साथ मिलकर विचार-विमर्श करके पूरे

देश में मानकीकृत एवं व्यावहारिक हिंदी शिक्षण सामग्री बनाने के प्रयास कर रहे हैं। आशा है कि भविष्य में भारत में हिंदी के विकास के साथ-साथ इस समस्या के हल करने के लिए अनुकूल शोधकार्य की आवश्यकता है।

दूसरे आयाम में, चीन में हिंदी शिक्षण के सामने हिंदी के प्रयोग से जुड़ी दूसरी चुनौती अंग्रेजी के प्रयोग की है। भारत में अंग्रेजी भाषा के सामान्य बोलचाल के उपयोग के कारण चीन में अधिकांश लोगों की यह मान्यता है कि भारत एक अंग्रेजी-भाषी देश है। आम लोगों के विचार में भारत के राष्ट्रीय पहचान के रूप में हिंदी भाषा का स्थान स्थापित नहीं हुआ, जबकि भारत में हिंदी राष्ट्रभाषा का स्थान अभी तक पूरा नहीं हो सका। इसके साथ-साथ आधुनिक प्रौद्योगिकी क्षेत्र, उच्च शिक्षण क्षेत्र, कूट-नौंतिक क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग की कमी आदि स्थिति से आम लोगों में यही गलतफहमी पैदा हो जाती है कि भारत को समझने के लिए हिंदी भाषा की तुलना में अंग्रेजी भाषा ज्यादा उपयोगी एवं कारगर है। इन मान्यताओं की क्षति यह है कि भविष्य में चीन में आम लोगों में हिंदी सीखने का जितना उत्साह एवं प्यार था वह नहीं दिखाई देगा उतना भारतीय लोगों में चीनी भाषा सीखने का। यही चीन में हिंदी की शिक्षा का विकास के लिए चुनौती है।

चीन में हिंदी की शिक्षा की दूसरी बड़ी चुनौती भारत और चीन के बीच द्विपक्षीय संबंधों से जुड़ी है। भाषा दोनों देशों के बीच संपर्क करने का पुल है। द्विपक्षीय संबंध की स्थिरता विदेशी भाषा शिक्षा पर सीधे प्रभाव डालती है। जब दोनों देशों के बीच आदान-प्रदान विस्तार रूप से हो रहा है, तो भाषा शिक्षा में सकारात्मक विकास हो सकता है, अन्यथा तो भाषा शिक्षा का विकास नहीं होगा। वर्तमान समय में भारत और चीन के बीच द्विपक्षीय संबंध अपने सबसे सकारात्मक दौर पर है और इससे दोनों देशों का विकास हो रहा है, पर कहीं न कहीं दोनों के बीच अविश्वास का भाव मौजूद है। भविष्य में दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंध के समक्ष जो चुनौतियां हैं, वे चीन में हिंदी की शिक्षा के समान की चुनौतियां भी हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि चीन में हिंदी की शिक्षा के लंबे इतिहास में चढ़ाव-उतार से गुजरती रही है और भाषा के अध्यापन एवं भाषा के जरिए किए गए अध्ययन क्षेत्रों में बहुत उपलब्धियां मिलती रहीं हैं। आज तक के दौर पर दृष्टिपात करें तो वर्तमान समय चीन में सबसे तेज गति से हिंदी का विकास हो रहा है। सफलता के रास्ते में कुछ चुनौतियां जरूर होती हैं पर इन सभी संकेतों से पता चलता है चीन में हिंदी के भविष्य की निश्चित और उज्ज्वल संभावनाएं हैं इसमें दो मत नहीं है।



कनाडा में हिंदी : दशा और दिशा*

स्नेह ठाकुर

भारत की जिस माटी में हम प्रवासी भारतीय पले-बढ़े हैं उसकी भाषा, सभ्यता, संस्कृति हमारी रग-रग में रची-बसी है। यही कारण है कि विदेशों में निवास करने वाले भारतीय अपनी भारतीय संस्कृति से जुड़े रहकर उसे अपनी नयी पीढ़ी को विरासत में देने हेतु इच्छुक हैं। संस्कृति को जिलाए रखने और उसे भावी पीढ़ी को विरासत में देने हेतु भाषा की अहम् भूमिका है। भाषा और संस्कृति का चोली-दामन का साथ है। भाषा के बिना संस्कृति जीवित नहीं रह सकती। भाषा संस्कृति की वाहिनी है। इस ध्येय से प्रेरित कनाडा में धार्मिक संस्थान, शिक्षण संस्थान, साहित्यिक संस्था, साहित्यिक पत्रिका, समाचार पत्र व हिंदी प्रेमी हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं।

कनाडा के ऑन्टेरियो प्रांत में हिंदी

टोरंटो स्थित विष्णु मंदिर : विष्णु मंदिर में हालांकि केवल रविवार को हिंदी की शिक्षा दी जाती है पर इसके साथ ही साथ वृहद-रूप से विधिवत् रूप से चलाए गए माटेसरी स्कूल में पूरे सप्ताह भारतीय संस्कृति की शिक्षा दी जाती है। यह स्कूल 2006 में खुला था। इस स्कूल के प्रिसिपल रॉबिन टूबे हैं। यहां 4 पूर्ण-कालिक व 2 अंश-कालिक प्रशिक्षित शिक्षिकाएं हैं जो बच्चों को सुरक्षित एवं खुशहाल वातावरण प्रदान कर उनके संपूर्ण विकास में संलग्न हैं।

सप्ताहांत में ‘बाल-विहार’ चलाया जाता है जहां 5 वर्ष की आयु से लेकर 12 वर्ष की आयु तक के करीब 150 बच्चे हैं। यहां हिंदी, संगीत, तबला, हारमोनियम एवं नृत्य की शिक्षा दी जाती है। यहां का मूल उद्देश्य संवाद है। भाषा का व्यवहारिक रूप अपनाया जाता है। संस्कृति से जुड़े उपादानों द्वारा भारतीय संस्कृति का ज्ञान दिया जाता है।

हिंदू इंस्टीच्यूट ऑफ लर्निंग : सन् 1984 में श्री जगदीश चंद्र शारदा शास्त्रीजी ने एक प्राइवेट स्कूल ‘दि ऑन्टेरियो स्कूल ऑफ इंडियन लैंग्वेज’ की स्थापना की थी। सन् 1989 में डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार की जन्म-शताब्दी की स्मृति में हिंदू कम्युनिटी को वह स्कूल समर्पित कर दिया। अब यह स्कूल ‘नॉन प्रॉफिट चेरिटेबल ऑर्गनाइजेशन’ के अंतर्गत ‘दि हिंदू इंस्टीच्यूट ऑफ लर्निंग’ (हिंदू विद्या मंदिर) के नाम से पंजीकृत है, जिसमें न केवल भारतीय वरन् कनेडियन भी शिक्षा प्राप्त करते हैं। यह संस्थान भारतीय भाषाओं, कला एवं संस्कृति की शिक्षा, प्रमुखतः वयस्कों को प्रदान

* कनाडा के टोरंटो एवं निकटवर्ती क्षेत्र में हिंदी शिक्षण

करता है। साथ ही बच्चों व किशोरों को हिंदी एवं संगीत की शिक्षा भी प्रदान करता है। यह खेद का विषय है कि इसके संस्थापक शास्त्रीजी का कुछ समय पूर्व निधन हो गया है।

हिंदू सभा हिंदी विद्यालय : ब्रैम्प्टन, ऑन्टेरियो में सन् 1985 में हिंदू महा सभा मंदिर ने भारतीय संस्कृति एवं भारतीय भाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं विकास हेतु 'हिंदी विद्यालय' की स्थापना की। हिंदी शिक्षण का उस समय एक उद्देश्य यह भी था कि भारतवंशी बच्चे न केवल यहां अपने परिवार में हिंदी बोलें वरन् साथ ही भारत जाने पर नाना-नानी, दादा-दादी सभी संबंधियों के साथ वार्तालाप कर सकें। सप्ताहांत में रविवार को दो घंटे के लिए हिंदी का शिक्षण होता है। प्रारंभ में पढ़ने वाले बच्चों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं थी और अध्यापन कार्य भी केवल एक ही अध्यापक के द्वारा किया जा रहा था। धीरे-धीरे छात्र-छात्राओं की संख्या बढ़ती गयी और आज इस विद्यालय में करीब 100 विद्यार्थी व 15 अध्यापिकाएं हैं। यहां पहली कक्षा से लेकर छठवीं कक्षा तक की शिक्षा दी जाती है। हिंदी के साथ ही साथ नृत्य, संगीत, तबला, हारमोनियम, की-बोर्ड तथा टैक्वांडु की कक्षाएं सप्ताहांत में लगती हैं। विद्यालय समय-समय पर त्योहारों के अनुरूप कार्यक्रमों का आयोजन करता रहता है।

आर्य समाज मारखम : आर्य समाज के 'संडे स्कूल' में 4 वर्ष की आयु से लेकर 14 वर्ष की आयु के बच्चे हैं। यहां हर रविवार को हिंदी, संगीत एवं योगा की शिक्षा दी जाती है। वार्तालाप व गतिविधियों द्वारा भी हिंदी के विकास का प्रयास किया जाता है। यह स्कूल सितंबर से लेकर मध्य जून तक चलाया जाता है। यहां वैदिक/हिंदू/भारतीय मूल्य, भारतीय संस्कृति द्वारा बच्चों के सर्वांगीण विकास पर जोर दिया जाता है।

हिंदू सांस्कृतिक केंद्र : यहां हिंदी, संस्कृत व संगीत की शिक्षा दी जाती है।

लक्ष्मी नारायण मंदिर : यहां भी हिंदी व संगीत की शिक्षा दी जा रही है।

सद्भावना हिंदी साहित्यिक संस्था : 'सद्भावना हिंदी साहित्यिक संस्था' हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु सन् 2003 से काव्य-गोष्ठियों व संगीत-गोष्ठियों के माध्यम से प्रयासरत है। इस संस्था ने सन् 2007 से 2010 के दौरान इस क्षेत्र के कवियों के चार काव्य-संकलन प्रकाशित किए थे जिनका संकलन एवं संपादन संस्था की अध्यक्ष तथा इन पंक्तियों की लेखक ने किया था।

टोरंटो यूनिवर्सिटी साउथ एशियन विभाग के अंतर्गत टोरंटो यूनिवर्सिटी के छात्र हिंदी सप्ताह में एक या दो बार सांध्य कक्षाओं में पढ़ सकते हैं। अनेकों विद्यार्थियों की मातृ-भाषा हिंदी न होने के कारण स्वाभाविकता: हिंदी का स्तर भारत की यूनिवर्सिटी से कम है।

यॉर्क यूनिवर्सिटी : यॉर्क यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी भी एशियन, साउथ एशियन संस्कृति के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं।

समाचार पत्र : हिंदी के साप्ताहिक अखबार भी प्रकाशित हो रहे हैं, जैसे- हिंदी एब्राड, हिंदी साप्ताहिक आदि। रविरंजन पांडे व श्रीमती जयश्री पांडे कई वर्षों से 'हिंदी एब्राड' द्वारा प्रवासी भारतीयों को नित नए समाचारों से अवगत करा रहे हैं।

'वसुधा' हिंदी साहित्यिक ट्रैमासिक पत्रिका टोरंटो से जनवरी 2004 से सतत हिंदी के प्रचार-प्रसार व उन्नयन के प्रति कटिबद्ध, संकल्पित हो प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका विज्ञापन रहित है। इसका उद्देश्य भारतीय साहित्यकारों एवं प्रवासी भारतीय साहित्यकारों से, अधिकाधिक भारतवंशियों को अवगत कराना तथा हिंदी साहित्य व भारतीय संस्कृति को संसार के कोने-कोने में

पहुंचाना है। विश्व में हिंदी का एक ऐसा सेतु बनाना है जिसके माध्यम से विश्व के साहित्यकार और पाठक एक-दूसरे से जुड़ हिंदी की स्थिति को सुदृढ़ बना सकें। इसका महती उद्देश्य देश-विदेश में हिंदी की गूंज गुंजायमान करनी है क्योंकि यही गूंज सर्वत्र हिंदी का वातावरण बनाने में समर्थ होगी। इस पत्रिका का संपादन-प्रकाशन इन पंक्तियों की लेखिका कर रही है जो साहित्य की हर विधा में लिखी गयी अनेक पुस्तकों की लेखिका भी है। मेरे द्वारा कनेडियन कवियों के चार काव्य-संकलनों का संकलन व संपादन भी किया गया है। रेडियो और टेलिविजन के माध्यम से भी हिंदी प्रसारित की जा रही है।

कई स्थानों पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से भी हिंदी के प्रति प्रेम बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। ऐसे में मनोरंजन के साथ ही साथ ज्ञान का भी संवर्धन होता है।

वैश्विक क्षितिज पर हिंदी के कदम संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनने की ओर अग्रसर है जिसका संकेत विश्व हिंदी सम्मेलनों द्वारा जग-जाहिर हो रहा है। आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रांगण में व दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन में ‘विश्व हिंदी सम्मान’ प्राप्त करते हुए व्यक्तिगत गौरव के साथ इस बात का भान सर्वव्यापी था कि हम इस ओर प्रगति कर रहे हैं।

भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदीजी अपनी विदेश यात्राओं के दौरान हिंदी में भाषण देकर संपूर्ण विश्व में हिंदी की लोकप्रियता बढ़ा रहे हैं। हिंदी का भूमंडलीकरण हो, भूमंडलीकरण में हिंदी रच-बस जाए और वह संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा की कुर्सी पर विराजमान हो सम्मान प्राप्त करे, इस दिशा में अभी और प्रयत्न करना है। भारत और विदेश में हिंदी की स्थिति इतनी सुदृढ़ बनानी है कि यह सुअवसर स्वयंमेव ही पैदा हो जाए और हिंदी संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बन जाए।

अब जब हिंदी की प्रगति आश्वस्ता प्रदान कर रही है तो हमें इस प्रगति के बीच बाधक बनने वाली समस्याओं, प्रवृत्तियों पर भी अपना ध्यान केंद्रित करना पड़ेगा। और इस संदर्भ में मैं अंतरराष्ट्रीय परिषेक्य में हिंदी के मानकीकरण पर अपने विचार व्यक्त कर आपका ध्यान केंद्रित करना चाहूंगी।

मैं पचास वर्षों से भारत के बाहर रह रही हूं। अल्प-काल लंदन, इंग्लैंड में बीता 1967 से कनाडा में रह रही हूं। अनेक विधाओं में पुस्तकों की रचना एवं जनवरी 2004 से ‘वसुधा’ हिंदी साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका के संपादन-प्रकाशन द्वारा मां सरस्वती की पूजा-अर्चना कर रही हूं, जो भारत व विदेशों के मध्य हिंदी के सेतु का कार्य कर रही है। तात्पर्य यह कि विदेशों में विदेशियों द्वारा एवं प्रवासी भारतीयों तथा उनकी नई पीढ़ी द्वारा हिंदी सीखने में विज्ञ डालने वाले तत्वों, हिंदी की प्रगति में आने वाली कठिनाइयों से काफी कुछ परिचित हूं।

यह भी जानती हूं कि हिंदी वर्तनी का मानकीकरण किया जा चुका है। पर अब जब हिंदी विश्व-भाषा बनने के पथ पर निःसंदेह अग्रसर है तो हमें उस पथ को सुगम बनाने हेतु प्रयत्नशील होना होगा जिससे अधिक से अधिक विदेशी व प्रवासी भारतीय पीढ़ी उसका अनुसरण करे। अतः इस परिषेक्य में वर्तनी के मानकीकरण की पुनरावृत्ति की आवश्यकता है, विशेष रूप से विदेशों के संबंध में क्योंकि जो भारत में जन्मे, पले-बढ़े हैं, कदाचित् उनकी आवश्यकताएं पूर्व मानकीकरण से पूरी हो सकें क्योंकि वे भाषा जानते हैं, उन्हें भाषा का ज्ञान है- हालांकि यह मान्यता भी विमर्श का

विषय है; पर विदेश के संदर्भ में, चाहे वह विदेशियों को हिंदी सीखाने की बात हो या फिर प्रवासी भारतीयों की अगली पीढ़ी जो विदेशों में जन्मी-पती-बड़ी है उनके हिंदी शिक्षण की बात हो- उस समय के किए गए मानकीकरण पर अब पुनः विवेचन की आवश्यकता है। कम से कम इसे संशोधित और परिवर्धित करने की आवश्यकता तो अवश्य ही है। इस विषय का क्षेत्र व्यापक है अतः उदाहरणार्थ यहाँ कुछ बिंदुओं पर ही ध्यान केंद्रित करूँगी और वह है हिंदी वर्तनी का मानकीकरण व उच्चारण संबंधी समस्याएं। हिंदी का मानकीकरण कुछ वर्षों पहले किया जा चुका है, तथापि उसे लागू करना अभी बाकी है।

अतः सर्वप्रथम तो हिंदी वर्तनी के इस मानकीकरण से हमें सबको अवगत करवाना होगा जिससे राष्ट्र में हिंदी वर्तनी में एकता स्थापित हो, विशेष रूप से चंद्रबिंदु संदर्भित। आजकल चंद्रबिंदु का प्रचलन प्रायः समाप्त ही हो गया है। मैं जनवरी 2004 से कनाडा से 'वसुधा' हिंदी साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका का संपादन-प्रकाशन कर रही हूँ। इतने वर्षों में मुझे यदा-कदा ही ऐसी रचनाएं प्राप्त हुई हैं जहाँ वाक्य-संरचना में आवश्यक चंद्रबिंदु के स्थान पर चंद्रबिंदु लगाया गया हो। अधिकतर चंद्रबिंदु के स्थान पर केवल बिंदु से ही काम चलाया गया है, चाहे वे रचनाएं टंकित हों या हस्तालिखित। इसके दो ही कारण समझ में आते हैं एक अनभिज्ञता या दूसरा आलस्य। चंद्रबिंदु लगाने के स्थान पर बिंदु टपकाने से ही जब काम चल जाए तो चंद्रबिंदु लगाने का इतना-सा भी व्यर्थ परिश्रम क्यों किया जाए, इस अतिरिक्त परिश्रम का कष्ट भी क्यों उठाया जाए। जब प्रकाशक आदि को चंद्रबिंदु की अनिवार्यता समाप्त करने की यह सुविधा दे दी गई है तो बाकी भी इस बहती गंगा में हाथ धोने से क्यों स्वयं को वंचित करें! अनभिज्ञता, अज्ञानता का निराकरण ज्ञान से हो सकता है पर आलस्य का निराकरण तो मानकीकरण को पूर्णरूपेण सबके लिए लागू करने से ही संभव है।

हिंदी वर्तनी के मानकीकरण में यह तो कहा गया है कि, 'हिंदी के शब्दों में उचित ढंग से चंद्रबिंदु का प्रयोग अनिवार्य होगा।' तथापि कुछ के लिए यह सुविधाजनक छूट क्या दे दी गई कि, '....किंतु जहाँ (विशेषकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का (अनुस्वार चिह्न का) प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट रहेगी।' ऐसी स्थिति में पूर्ण तथ्य को परे रख, केवल इस वाक्यांश- चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो- का ही सहारा ले चंद्रबिंदु की प्रथा से हाथ झाड़ लिया गया है। यही दशा अर्द्धचंद्र की हो रही है। अर्द्धचंद्र का उपयोग न करने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। पंचमाक्षर की भी समस्या आ रही है। विशेषरूप से आधा म के लिए भी आधा न की तरह शिरोरेखा के ऊपर बिंदु लगाना प्रवासी भारतीय पीढ़ी, भारतवर्षीयों एवं विदेशी व्यक्तियों के लिए हिंदी शिक्षा को दुरुह बना रहा है। शब्द संरचना न जानने की स्थिति में वह उनके लिए भ्रामक हो सकता है। ण का तो उच्चारण ही समाप्त-सा हो रहा है। नाम रखा जाता है 'किरण' और बुलाया जाता है 'किरन'। आइए, उपर्युक्त समस्याओं पर कुछ और थोड़ा विस्तार से विचार करें।

वर्तनी- अर्थात् अक्षर-विन्यास, अक्षर-न्यास, अक्षरी, वर्ण-विन्यास, वर्णन्यास, लेख-नियम, हिज्जे, विवरण आदि। अंग्रेजी में यही 'स्पेलिंग' है। 'वर्तनी' वैसे तो बहुअर्थी है, पर अब हिंदी में शब्दों की लिपिबद्धता के संदर्भ में वर्ण-विन्यास के लिए रूढ़ हो चुका है। संस्कृत मूल से बना वर्तनी-

अर्थात् मार्ग, सड़क, जीना, जीवन, पीसना, चूर्ण बनाना आदि। इस तरह हिंदी-लेखन की दृष्टि से 'वर्तनी' का भाव निकलेगा- वर्णों के शब्द-रूप तक पहुंचने का मार्ग। यानी, प्रकारांतर से कहा जा सकता है कि किसी शब्द को लिपिबद्ध करने में वर्णों को जिस प्रक्रिया में लिखा जाए वह है वर्तनी। इसे वर्तन शब्द के 'टिकाऊ' तथा 'ठहरने वाला' जैसे अर्थों के आलोक में देखें तो वर्तनी का अर्थ और चमक उठेगा। यानी किसी शब्द के लिए टिकने वाला, ठहरने वाला या एक स्थिर स्वरूप वाला वर्ण-क्रम। यही आशय ज्ञानमंडल, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'वृहद हिंदी कोश' में दी गई वर्तनी की निम्नांकित परिभाषा में व्यक्त होता है- 'भाषा-साम्राज्य के अंतर्गत भी शब्दों की सीमा में अक्षरों की जो आचार-संहिता अथवा उनका अनुशासनगत संविधान है, उसे ही हम वर्तनी की संज्ञा दे सकते हैं।...वर्तनी भाषा का अनुशासित आवर्तन है। वर्तनी शब्दों का संस्कारित पद विन्यास है....यह अक्षर-संस्थान और वर्ण-क्रम विन्यास है।'

हिंदी-लेखन में वर्तनी के मानक स्वरूप की आवश्यकता क्यों है? क्या हम हिंदी के शब्दों की वर्तनी स्थिर करने के प्रयास में इसका सहज विकास बाधित नहीं करेंगे?

भाषा लोक-व्यवहार के सहज प्रवाह के वशीभूत अवश्य होती है, पर साथ ही भाषा में हो रहे व किए जा रहे परिवर्तनों को उच्चरूप भी नहीं छोड़ा जा सकता। भाषा लोक-व्यवहार के स्तर पर बोलचाल की हो या साधारण या विशिष्ट लेखन की, भाषा के एक मानक स्वरूप की आवश्यकता अवश्य होती है। बिना मानकता या शब्द व अर्थ का एक निश्चित स्वरूप निर्धारित किए बिना भावों का आदान-प्रदान भी सदा यथोचित रूप से संभव नहीं हो पाता। भाषागत मानकता भाव-संप्रेषण को यथोचित् संभव बनाती है। एक क्षेत्र का व्यक्ति दूसरे क्षेत्र के व्यक्ति को, समान भाषा होने पर भी, अपनी उच्चारण संबंधी भिन्नता के कारण उसे असमंजस में डाल सकता है। उच्चारण हमें कभी-कभी हास्यास्पद, अजीबोगरीब स्थिति में डाल देता है। बंगाली भाषी, उत्तर प्रदेश निवासी के घर भजन संध्या का आनंद उठा, उस आनंद की पुनरावृत्ति अपने घर पर करवाने की सोच, विनम्र हो पड़ोसी को अपनी हिंदी में न्योता दे आता है कि आज हमारे घर भोजन है परिवार सहित आइएगा। पड़ोसी भोजन करने पहुंचते हैं और वस्तुतः 'भूखे पेट न होंहि भजन गोपाला' की स्थिति में पहुंच, भूख से पीड़ित आंतड़ियों को दबाते हुए पेट पकड़कर बैठ जाते हैं। बंगाली मोशाय 'भजन' को 'भोजन' उच्चारित कर निमंत्रित कर रहे थे और उत्तर प्रदेशी महाशय अपनी समझ में उनके यहां 'भजन' करने नहीं 'भोजन' करने गए थे।

कुछ समय पहले एक पंजाबी भाषी महिला ने मेरा हाथ बड़े प्यार से पकड़कर कहा 'मुझे आपका उपन्यास पढ़ने का बड़ा 'शोक' है। मैं अर्चांभित हो उन्हें देखती ही रह गई क्योंकि उनके द्वारा बहुत ही स्नेहपूर्वक पकड़ा हुआ मेरा हाथ मुझे किसी भी स्थिति में उनकी 'शोक' की अनुभूति से अभिसिचित नहीं कर रहा था कि उन्होंने फिर कहा 'जी, मैंने आपका उपन्यास 'कैकेयी चेतना-शिखा' पढ़ा। मुझे उसे पढ़ने का 'शोक' है। लेखक को पाठक की हर प्रतिक्रिया शिरोधार्य होनी चाहिए। जहां पाठक का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है, ग्रहणशीलता है; पाठक सदैव लेखक की भावना से ही संचालित हो, अनुप्राणित हो यह आवश्यक नहीं है। साहित्यकार की सबसे बड़ी विशेषता संप्रेषणीयता ही है तथापि साहित्यकार की हर कृति इतनी सौभाग्यशाली नहीं भी हो सकती है कि वह उसी रूप में पाठक के मन-मस्तिष्क पर छा जाए जिस भावना को लेकर साहित्यकार ने उसे रचा है। सब कुछ

जानते-समझते हुए भी मानव स्वभावानुसार कुछ आहत हो बिन सोचे मेरे मुंह से अनायास निकल पड़ा कि माफ कीजिएगा कि आपको उसे पढ़ने पर शोक हुआ....' उन्होंने मेरी पूरी बात सुने बिना बीच में ही काटते हुए बड़े प्यार से मेरा हाथ थपथपाते हुए कहा, 'अजी बहनजी! मुझे पता है, मैं कह तो रही हूं कि मुझे वह पढ़कर बड़ा अच्छा लगा। मुझे आपके उपन्यास पढ़ने का बहुत ही (शोक) है।' अब उनके शोक (शौक) को मैं समझी ।

जब 'भजन' और 'भोजन', 'शौक' और 'शोक' अपने ही देश के व्यक्तियों का उच्चारण गुदगुदाती गलतफहमी पैदा कर सकते हैं तो हिंदी वर्तनी का मानकीकरण आज के संदर्भ में न होना कितनी बड़ी समस्या पैदा कर सकता है, विशेष रूप से विदेशों में जहां मूल भाषा हिंदी नहीं है।

साथ ही यदि हम किसी भी विदेशी भाषा का शब्द हिंदी में अपना रहे हैं तो उसे विकृत न कर उसी तरह अपनाना अधिक तर्कसंगत लगता है। उदाहरणार्थ मुझे बताया गया है कि अंग्रेजी शब्द कनफ्यूज का हिंदीकरण कनफ्यूज है। पहली बात तो जो शब्द हमारे पास हिंदी में है उसे अंग्रेजी से लेने का औचित्य ही नहीं बनता और अगर उसे किसी कारणवश ले रहे हैं तो उसे उसी रूप में ही क्यों न लिया जाए? जहां अनायास किसी शब्द का उच्चारण समस्या पैदा कर सकता है, अर्थ का अनर्थ कर सकता है वहां सायास किसी शब्द को विकृत करके स्वीकारना क्या उचित होगा?

हिंदी भारत के अनेक क्षेत्रों में समझी, बोली, लिखी जाती है। विभिन्न क्षेत्रों की हिंदी में उच्चारण भिन्नता के साथ लेखन में भी भिन्नता आना स्वाभाविक है जिससे अर्थ के अनर्थ होने की संभावना होती है। बोलचाल में तो फिर भी आमने-सामने के संवाद की स्थिति में स्पष्टीकरण संभव है पर लेखन में वर्तनी की मानकता न होने पर यह अहितकारी है। शब्दों की वर्तनी में एकरूपता का अभाव भ्रम उत्पन्न कर सकता है जिससे अर्थभेद हो सकता है।

हिंदी को जीवित रखना है तो उसकी वर्तनी का मानकीकरण आवश्यक है; नहीं तो 'अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग' के अनुसार बोलचाल की भाषा का विभक्तीकरण होता जाएगा, वह खंडित होती जाएगी, अपने-अपने खेमे में बंटती जाएगी और कई खांचों में बंटकर अपना अस्तित्व खो बैठेगी। लोक-व्यवहार की भाषा में कदाचित् संपूर्ण एकरूपता लाना संभव न हो तथापि जितनी अधिकाधिक एकरूपता लानी संभव हो, लानी चाहिए। वर्तनीगत एकरूपता भाषा के दीर्घ जीवन के लिए आवश्यक है।

वस्तुतः हिंदी क्षेत्र की विभिन्न बोलियों के बीच एकता का सूत्र यदि कोई है तो वह हिंदी ही है। मूलतः खड़ी बोली से विकसित होने के बावजूद हिंदी विभिन्न बोलियों के तत्वों से मिलकर बनी भाषा है। किसी भी देश की राष्ट्रभाषा एक होती है। हाँ! बोले जाने वाले डॉयलेक्ट, बोलियां, अनेक हो सकती हैं। हिंदी और उसकी बोलियों के बीच परस्पर पूरकता और सौहार्द का रिश्ता है। इतिहास की सुई उलटी दिशा में नहीं जाती। हमें क्षेत्रीय भाषाओं से सामंजस्य बनाते हुए, उनसे पूर्ववत् हिंदी की शब्दावली को समृद्ध करते हुए, उसे इसका अभिन्न अंग बनाते हुए, स्थापित सौहार्द का रिश्ता पुख्ता करते हुए हिंदी वर्तनी का मानकीकरण करना होगा। हिंदी आम जनता के बीच सम्मान पाती हुई अपना राष्ट्रीय क्षितिज तैयार कर चुकी है। स्वतंत्रता की लड़ाई में तो यह संपूर्ण देश की अस्मिता के साथ जुड़ चुकी थी और भाषा के तौर पर इसने नेतृत्व किया था। अब हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपना विस्तार करना है। अंतरराष्ट्रीय क्षितिज को अपनी उपयोगिता के सूर्य से उद्भासित कर

विश्व को चकाचौंध करना है।

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भावों तथा विचारों को बोलकर या लिखकर दूसरों तक पहुंचाता है तथा दूसरे के भावों और विचारों को सुनकर या पढ़कर समझता है।

भाषा के दो रूप होते हैं- उच्चारित रूप और लिखित रूप। उच्चारित रूप भाषा का मूल रूप है, जबकि लिखित रूप गौण एवं आश्रित। फिर भी उच्चारित रूप में दिया गया संदेश सम्मुख अथवा समीप-स्थित श्रोताओं तक सीमित रहता है और क्षणिक होता है। अर्थात् बोले जाने के तुरंत बाद नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत लिखित रूप में दिया गया संदेश समय की सीमा तोड़कर, व्यापक होकर सुदूर विदेशों में स्थित पाठकों तक पहुंचने की क्षमता रखता है। स्थायी और व्यापक बना रहना ही लिखित रूप की शक्ति है। यह लिखित रूप स्थायी और व्यापक बना रहे इसके लिए आवश्यक है कि लेखन-व्यवस्था, शब्द-विन्यास- लिपिचिह्न, लिपिचिह्नों के संयोजन, शब्द स्तर की वर्तनी, आदि लम्बे समय तक एक-से बने रहें।

वर्तनी का शाब्दिक अर्थ है वर्तन अर्थात् अनुवर्तन करना, यानी पीछे-पीछे चलना। लेखन व्यवस्था में वर्तनी शब्द स्तर पर शब्द की ध्वनियों का अनुवर्तन करती है। दूसरे शब्दों में, शब्द विशेष के लेखन में शब्द की एक-एक करके आने वाली ध्वनियों के लिए लिपिचिह्नों के क्या रूप हों और उनका कैसा संयोजन हो, यह वर्तनी (वर्ण संयोजन= अक्षरी) का कार्य है।

इस शताब्दी के आरंभ में जब हिंदी का प्रयोग प्रचलित होने लगा तो साहित्यकारों, लेखकों, कवियों, संपादकों, जन सामाज्य ने स्थानीय परंपराओं और रूढ़ियों के अनुसार शब्दों को अपनाया और वर्तनी में अनेकरूपता आ गई। अतः वर्तनी में एकरूपता लाने के लिए इसका मानकीकरण आवश्यक है। मानकीकरण भाषा को परिमार्जित, परिनिष्ठित करने में सहायक सिद्ध होगा। साथ ही मानकीकरण से भाषा के स्वीकार्य व अस्वीकार्य रूपों में भेद करना सरल हो जाएगा। शुद्ध भाषा लिखने-पढ़ने के लिए शुद्ध उच्चारण बहुत महत्वपूर्ण है। हिंदी के संदर्भ में तो यह कथन और भी सत्य है, क्योंकि हिंदी ध्वन्यात्मक भाषा है। हिंदी जिस प्रकार बोली जाती है, प्रायः उसी प्रकार लिखी भी जाती है। इसीलिए हिंदी लिखने-पढ़ने वालों के लिए इसका शुद्ध उच्चारण आवश्यक है। जो शुद्ध उच्चारण करेगा, वह शुद्ध लिखेगा भी। हिंदी में वर्तनी की जो अनेक अशुद्धियाँ दिखाई देती हैं उसका एक प्रधान कारण अशुद्ध उच्चारण है। असावधानी के कारण प्रायः लोग अशुद्ध उच्चारण करते हैं, फलतः लिखने में भी अशुद्धियाँ होती हैं। वर्तनी के मानकीकरण से लिखने के साथ-साथ उच्चारण में भी शुद्धता आएगी।

वास्तव में हिंदी के लेखन-विधान के प्रकृतिनुसार इसमें वर्तनी की समस्या उत्पन्न नहीं होनी चाहिए क्योंकि हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। देवनागरी की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें जैसा लिखा जाता है वैसा ही बोला जाता है, जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है। यह ध्वन्यात्मक लिपि है, जबकि दूसरी भाषाओं में यह बात नहीं है। अतः वहाँ रटना ही विकल्प बन जाता है जबकि हम हिंदी में जो बोलते हैं, वही लिखते हैं इसलिए हमें रटने की आवश्यकता नहीं होती। हम अपने हिंदी के उच्चारण के प्रति असावधानी से गलत लिखने लगते हैं। यद्यपि विभिन्न अंग्रेजी भाषी क्षेत्रों में भी उच्चारण की भिन्नता है परंतु लेखन के स्तर पर उनका एक मानक रूप है जिसका वे सब पालन करते हैं।

भाषा में वर्तनी की अनेकरूपता से बचने के लिए, लिखने-पढ़ने की एकरूप सुविधा के लिए, व्याकरण और शब्दों की वर्तनी, दोनों स्तर पर हिंदी की वर्तनी का मानकीकरण आवश्यक है। विशेष रूप से आज जब हिंदी की वैश्विक पहचान बन रही है। ऐसी स्थिति में हिंदी की मानक वर्तनी के अभाव में अन्य भाषा-भाषियों के लिए हिंदी सीखना सहज न होगा वरन् कठिनतम हो जाएगा। जो भी लोग हिंदी सीखना चाहते हैं या जो सीख रहे हैं, उनके सामने कई तरह की उलझनें पैदा हो जाएंगी।

इस दिशा में एक और बात ध्यान देने योग्य है कि जब हिंदी देवनागरी लिपि के रूप में संसार की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि हमें परंपरा से प्राप्त है तो फिर हम क्यों न इसका सदुपयोग करें। हिंदी की वर्तनी का मानकीकरण करके इसकी रक्षा करते हुए इसे उपयोगी बनाएं। कंप्यूटर के इस युग में सार्वभौम लिपि के रूप में खरा उत्तर सकने की सामर्थ्य देवनागरी लिपि में ही है। सबसे अधिक शुद्धता के साथ सभी भाषाओं की ध्वनियों को व्यक्त करने की क्षमता इस लिपि में है। इस अक्षरात्मक लिपि की ध्वन्यात्मक विशेषता इसमें शब्दों को उनके उच्चारणों के ही अनुरूप लिपिबद्ध किए जा सकने की सामर्थ्य पैदा करती है।

बिंदु- अनुस्वार और चंद्र-बिंदु- अनुनासिकता चिह्न को लेकर भी हिंदी की वर्तनी में समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। पहले शिरोरेखा पर बिंदु और चंद्रबिंदु शब्द संरचना के अनुसार लगाए जाते थे परंतु अब चंद्रबिंदु का प्रचलन हटा केवल बिंदु लगाने की प्रथा का प्रचलन हो गया है, जो कम से कम विदेश के संबंध में भ्रामक हो सकता है।

संयुक्त व्यंजन के रूप में जहां पंचमाक्षर के बाद सर्वार्थी शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो, तो एकरूपता और मुद्रण, लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का प्रयोग प्रचलित है; जैसे गंगा, चंचल, ठंडा, संध्या आदि में पंचमाक्षर के बाद उसी वर्ग का वर्ण आगे आता है, अतः पंचमाक्षर पर अनुस्वार का प्रयोग मान्य है और यदि पंचमाक्षर दोबारा आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में नहीं बदलेगा; जैसे अन्न, सम्मेलन, सम्मति आदि के लिए।

वैसे देखा जाए तो आधा म के लिए भी आधा न की तरह शिरोरेखा के ऊपर बिंदु लगाना नई पीढ़ी के लिए शब्द संरचना में भ्रामक हो सकता है। पाठक, लेखक को शब्दों की संरचना में याद रखना पड़ेगा, रटना पड़ेगा कि शिरोरेखा पर बिंदु आधा म का प्रतिनिधित्व करता है या आधा न का। यदि केवल न की ध्वनि के लिए अनुस्वार लगाया जाए तो रटने की समस्या नहीं रहेगी। दो ध्वनियों को पहचानने की समस्या नहीं होगी। विषेश रूप से विदेशियों के लिए जिनकी शब्द-सीमा, भाषा-ज्ञान आरंभ में सीमित है।

आजकल जो चंद्रबिंदु की जगह केवल बिंदु के प्रयोग का प्रचलन हो गया है वहां ऐसी अवस्था में भ्रम की गुंजाइश रहती है। यह बात अलग है कि आप वाक्य संरचना देखकर उसका यथोचित सही अर्थ अपने-आप लगा लेते हैं। अतः यहां भी हिंदी की नई पीढ़ी को रटना ही पड़ेगा क्योंकि चंद्रबिंदु की जगह बिंदु लगाने से प्रायः अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है; जैसे हंस और हँस यदि कहा जाए कि, ‘अब रोना बंद करो, हंस दो।’ तो वाक्य-संरचनानुसार ‘अब रोना बंद करो, हँस दो।’ का अवश्यमेव सही अर्थ निकाला जा सकता है। पर यदि केवल यह कहा जाए ‘हँस दो।’ तो यह स्पष्ट नहीं होता कि वह किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। अतः चन्द्र-बिंदु वाले शब्दों में चंद्रबिंदु का ही प्रयोग किया

जाना चाहिए, बिंदु का नहीं। अनुनासिकता के चिह्न (३) का लोप होने से हिंदी वर्तनी में अराजकता तो आएगी ही, शब्दों के उच्चारण और पठन-पाठन में भी अनगिनत भ्रमात्मक स्थितियाँ पैदा होने लगेंगी। अतः यथास्थान चंद्रबिंदु न लगाने की प्रथा भाषा के लिए हितकारी नहीं है। कम से कम विदेशों में हिंदी-शिक्षण के संबंध में तो बिलकुल भी नहीं। लेखन की थोड़ी-सी सुविधा देखकर ही लिपि की वैज्ञानिकता का गला घोंट देना यथोचित नहीं। चूंकि हिंदी भारत की भाषा है, वहाँ अधिकतर प्रयोग में आने वाली भाषा है, अतः वहाँ आप चूंकि उन शब्दों का संदर्भ जानते हैं अतः अनायास ही ऐसे शब्दों का उपयुक्त अर्थ निकाल लेते हैं, लेकिन विदेशियों के लिए यह सदैव संभव नहीं है।

हिंदी की वर्तनी के मानकीकरण से ही हम शब्दों को उनके मूल रूप में रख सकेंगे। यदि ऐसा न हुआ तो अंततः प्रचलित उच्चारण वाले शब्द ही मान्य हो जाएंगे और शब्द अपना मूल-स्वरूप खो देंगे। उदाहरणार्थ अधिकांशतः देखा जा रहा है कि लोग ब्रह्मा को ब्रह्मा, चिह्न को चिन्ह, उऋण को उरिन आदि बोल और लिख रहे हैं।

यदि मूल स्वरूप बदलना भी है तो भी वर्तनी का मानकीकरण दिशा-निर्देश देकर भाषा को एकरूप, एक स्वरूप प्रदान करेगा। श्रुत अवस्था में याद रखने की समस्या बनी रहती है। मानकीकरण हिंदी वर्तनी को स्थायी व प्रामाणिक बनाएगा। यद्यपि कि काल परिवर्तनशील है और काल के साथ ही साथ भाषा को समयानुसार, परिस्थितिनुसार सामंजस्य बैठाना ही होगा क्योंकि भाषा तो वही जीवित रह सकती है जो सहज, सुगम हो, नदी के समान सतत प्रवाहशील हो। यदि प्रवाह अवरुद्ध हो गया तो सड़ांध से उसका दम घुट जाएगा। समयानुसार हिंदी की वर्तनी का मानकीकरण भी आवश्यक है क्योंकि यह प्रवाह को अवरुद्ध करने के लिए नहीं वरन् उसे सहज, सुगम बनाए रखने के लिए काम करेगा।

भाषा भी मां के समान है। भाषा हमें मां की तरह पालती है। पर हमें मां के लिए अपने प्यार का एहसास, जज्बे की गहराई का सही अंदाज, अधिकतर मां के चले जाने के बाद ही होता है। कहीं यही दशा हिंदी की न हो!

हिंदी की वर्तनी के मानकीकरण से प्रवासी भारतीय व उनकी नई पीढ़ी भारतवंशी तथा विदेशी हिंदी प्रेमी के साथ-साथ भारत की नई पीढ़ी भी लाभान्वित होगी। स्वतंत्रता के बाद अंग्रेजी समर्थक जो पीढ़ी हिंदी के विकास में कपोल कल्पित कारणों से बाधक बनती आ रही है, नयी पीढ़ी उनसे मुक्त हो जाएगी। हिंदी की वर्तनी का मानकीकरण से दिशा-निर्देश उनकी समस्याओं का अंत कर उनके लिए लाभकारी सिद्ध होगा।



नस्लवाद के नए मुखौटे : अमेरिका में हिंदी शिक्षण

सुषम बेदी

यह मेरे देखने में आया है कि भारतीय इस बात से बड़े प्रभावित होते हैं कि अमेरिका के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। मैं जब भी किसी से कहती हूं कि मैं न्यूयॉर्क की कोलंबिया यूनिवर्सिटी में हिंदी पढ़ा रही हूं तो हर तरह के हिंदुस्तानियों के कान खड़े हो जाते हैं। उसके बाद तो बस सवालों की बौछार!.... कब से पढ़ा रही हैं? कितने विद्यार्थी हैं? क्यों पढ़ते हैं हिंदी?... वगैरह, वगैरह। बातचीत का सिलसिला फिर घंटों इसी पर केंद्रित हो जाता है।

हिंदी के अमेरिका में होने का भी गलैमर है। जैसे कि दो विरोधी चीजों का संगम हो गया हो। देखा जाए तो बात कुछ ऐसी है भी। और नहीं भी।

ज्यादातर अमेरिका को अंग्रेजी भाषी देश के रूप में ही जाना जाता है। यही वजह है कि ज्यादा से ज्यादा भारतीय जहां तक हो सके अंग्रेजी सीख कर अपना अंतरराष्ट्रीय या कहिए कि अमेरिकी-यूरोपीय संबंध-सूत्र बनाए रखना चाहते हैं। यही कारण है कि आजादी के अट्ठावन साल बाद भारत में अंग्रेजी का बोलबाला बढ़ा ही है कम नहीं हुआ जैसी कि उम्मीद थी। आम तौर पर भारतीयों के दिमाग में यह बात नहीं आ सकती कि उस देश में हिंदी का सम्मान हो सकता है जहां से संपर्क रखने के लिए वे अंग्रेजी पर जान दिए जा रहे हैं।

खैर मैं इस विवाद में पड़ना नहीं चाहती। सिर्फ उसका प्रसंगवश जिक्र ही कर देना चाहती थी। इस लेख का मूल विषय तो यह है कि अमेरिकी में हिंदी का वास्तविक स्थिति क्या है?

यानी कि मात्र पढ़ाए जाने का ग्लैमर दरकिनार करें तो उस शिक्षा का स्वरूप क्या है? कितनी ठोस है हिंदी की शिक्षा और यहां के शिक्षा संस्थानों के वातावरण में कहां बैठती है, क्या जगह है उसकी?

अमेरिका के करीब एक दर्जन विश्वविद्यालयों में हिंदी नियमित रूप से पढ़ाई जाती है। यूं इस पढ़ाने की शुरुआत छठे दशक में जोरशोर से हुई थी जबकि अमेरिका की भारत में सामरिक रुचि बहुत बढ़ गयी थी।

तब भाषा के अतिरिक्त भारत संबंधी दूसरे विषय-इतिहास, मानविकी, सभ्यता और संस्कृति के बारे में भी पढ़ाया जाने लगा। इन यूनिवर्सिटियों में इस अध्ययन के लिए पाठ्यपुस्तकें भी तैयार की गई और कुछ विशेषज्ञों को बाहर से बुलाया गया और कुछ को यहां ट्रेनिंग देकर अध्यापन के कार्य के लिए तैयार किया गया।

यही अध्यापक या प्रोफेसर ओरियन्टलस्ट या इंडोलॉजिस्ट (भारतविज्ञ) कहलाए। विश्वविद्यालयों में इन भारतवेत्ताओं का विशेष सम्मान था। ज्यादातर अमेरिकी और यूरोपीय विद्वान ही इस दिशा में काम कर रहे थे और वे इस सम्मान के अधिकारी बने। आठवें दशक तक यह स्थिति ऐसे ही चलती रही। ये विज्ञ भाषा पढ़ाते थे और भाषा के अलावा भारतीय समाज, संस्कृति भाषा विज्ञान या इतिहास आदि के प्रोफेसर भी थे।

परं किर भी इन विषयों की इतनी मांग नहीं थी कि हर भाषा का प्रोफेसर यूनिवर्सिटी रखे। कई बार इसीलिए एक शिक्षक एक से अधिक भाषा भी पढ़ा देता था जैसे कि हिंदी व संस्कृत दोनों। यह मांग और भी कम हो जाती। किसी साल विद्यार्थी होते तो किसी साल एक या नहीं के बराबर।

कई प्रोफेसरों के रिटायर होने का समय भी आ गया। पर उनकी जगह नए प्रोफेसर नहीं रखे गए क्योंकि ज्यादातर यह महसूस किया जाने लगा कि हिंदी सीखने में इतनी रुचि नहीं है कि यूनिवर्सिटी उसके लिए नियमित शिक्षक रखे। परं किर भी जहां भाषा के कार्यक्रम थे, कोई न कोई प्रोफेसर होता ही जो अपने सहायकों के साथ सारे कार्यक्रम को चलाता रहता।

नवें दशक में यह स्थिति बदलने लगी। अब भारतीय आवासियों की संख्या बढ़ गयी थी। इन्हीं विश्वविद्यालयों में अब भारतीय मूल के बच्चे अपनी भाषाएं और साहित्य-संस्कृति के कोर्स पढ़ने की मांग करने लगे। अचानक हिंदी की मांग भी बढ़ गयी। जहां पहले मुश्किल से सात-आठ विद्यार्थी होते थे वहां संख्या 30-40 में जाने लगी। यहां तक कि एक ही शिक्षा के कई भाग बनने लगे। जब ज्यादा शिक्षकों की भी जरूरत पड़ी। विश्वविद्यालय नए प्रोफेसर की जगह खोलने को तैयार नहीं थी। उनका सोचना यह था कि यह अचानक संख्या का बढ़ना एक बाढ़ की तरह है जो थम जाएगी तो फिर से वही सात-आठ विद्यार्थी ही कक्षाओं में रह जाएंगे और उस हालत में प्रोफेसर का खर्चा तो विश्वविद्यालय को हमेशा के लिए ढोना पड़ेगा क्योंकि ज्यादातर प्रोफेसर की नौकरी टेन्योर ट्रैक ही होती है यानी कि पांच-सात साल बाद पक्की नौकरी हो जाती है और उनको निकाला नहीं जा सकता। एक तरफ विश्वविद्यालयों को यह लालच भी तो था कि इतने लोग हिंदी की मांग कर रहे हैं। हिंदी पढ़ाने का जिम्मा लेने में विश्वविद्यालय के कार्यक्रम में भी फैलाव होता था जिसका एक बड़ा अर्थ था विश्वविद्यालय के लिए लाभ व धनार्जन भी और नाम भी कि एशियाई विषय भी पढ़ाए जा रहे हैं।

दूसरी ओर कुछ अधिकारी इस संदेह से भी मुक्त नहीं हो पाते थे या अपनी सुविधा के लिए नहीं होना चाहते थे कि यह सागर का ठहरा हुआ पानी है या कि बाढ़ का बहाव। अगर बाढ़ ही है तो इंतजाम अस्थायी सा ही होना चाहिए यानी कि प्रोफेसर नियुक्त करने का खतरा मोल नहीं लिया जा सकता। विश्वविद्यालयों को लाभ ही देखना होता है। खास तौर से पूंजीवादी देश के निजी विश्वविद्यालयों को। किसी भाषा के प्रति प्रतिबद्धता उनका अभिप्राय नहीं।

सो समस्या का एक ही हल था कि पढ़ाया भी जाए और प्रोफेसर भी न रखे जाएं यानी कि लाभ तो हो पर निवेश न हो ताकि नुकसान का कोई खतरा न रहे।

और अमेरिका के चतुर अर्थयोजकों को इसका बड़ा ही सूझबूझवाला उपाय सूझा कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। पढ़ाना भी हो और पैसा भी खर्च न हो। इस हल को खोजने बहुत दूर भी नहीं जाना था। आवासी तो खुद-बखुद चले आते हैं। उलटे रोकने पर भी आने से बाज नहीं

आते। जब आ जाते हैं तो काम भी उन्हें चाहिए होता है फिर रेस्तरां में प्लेटे धोने या स्टोर में सेल्सगर्ल की नौकरी से तो कहीं अच्छा है कि किसी विश्वविद्यालय या कालेज में पढ़ाया जाए। भारत के रुपयों में आवासी की शुरू-शुरू में तौलने की आदत भी होती है सो तनखाह बुरी नहीं लगती कि वहां जितना साल भर में कमा लेते थे वह यहां एक महीने में अस्थाई नौकरी में ही मिल गया। चाहे यहां रहने के लिए उस पैसे में कर्तई गुजर न होता हो पर अगर घर किसी दूसरे की कमाई पर चल रहा हो तो एक जन तो इस तरह की आरामपसंद विश्वविद्यालय की नौकरी कर ही सकता है और भारतीय आवासी परिवार तो यूं भी साथ-साथ ही रहते हैं।

यूं भी बहुत से विश्वविद्यालय के पढ़े लिखों को अमेरिका में नौकरियां भी कहां मिलती हैं अगर वे डॉक्टर, इंजीनियर या कंप्यूटर में न हों तो। यहां तो भारत के पी-एच.डी. डिग्रीधारक को भी टैक्सी चलानी पड़ती है या बैंक में क्लर्क की नौकरी करनी पड़ती है।

तो दोनों पार्टियों को ही यह समझौता रास आ गया। मांग और पूर्ति का बढ़िया मेल। इधर भारतीय मूल के कई हिंदीभाषी भी यहां पहुंच गए थे जो और नौकरियां न मिलने पर कुछ भी करके कमाई के साधन ढूँढ़ रहे थे। हिंदी या ऐसा कोई विषय पढ़ा कमाई करना तो फिर नियमित थी। कई ऐसे थे जो विश्वविद्यालय-कालेज में पढ़ा चुके थे और कुछ अलग क्षेत्रों से आए थे। ये पढ़ने-लिखने वाले लोग थे इसलिए विश्वविद्यालय का काम उनके लिए सम्मानित था। अकसर कई महिलाएं यहां अपने पतियों के साथ आई हुई थीं जिनको ज्यादा कमाने की जरूरत नहीं थी चूंकि उनके पति अच्छा कमा रहे थे और वे अपने लिए कोई काम ढूँढ़ रही थीं जिसमें धन चाहे कम हो पर काम करने की तृप्ति मिले।

ऐसा केवल भारतीय भाषाओं में ही नहीं हुआ- दूसरे देशों के आवासी भी अधिक संख्या में आने लगे और अचानक भाषा पढ़ाने के काम में एक भारी परिवर्तन आया। अब इंजीनियर-डॉक्टर ही नहीं बल्कि ऐसे बहुत से आवासी आने लगे जो अपने देश से उच्च शिक्षा तो प्राप्त करके आए हुए थे पर उनकी शिक्षा तकनीकी विषयों में न होकर साहित्य-कला में थी और ऐसे लोगों के लिए नौकरियों की काफी कमी थी। उच्च शिक्षित होते हुए भी चूंकि इन लोगों के पास अमेरिकी डिग्रियां नहीं थीं और कई बार अंग्रेजी एक्सेंट का मसला भी हो जाता था।

भाषा पढ़ाने के लिए अब ऐसे लोग खोजे जाने लगे जिनका अपने देशों के विश्वविद्यालय में पाने का काम तो था पर यहां नहीं। चूंकि भारतीय विश्वविद्यालयों के स्तर को यहां के बराबर स्थान नहीं दिया जाता। इसके साथ ही विश्वविद्यालय में पद का वह स्तर भी नहीं दिया जाता इसलिए नया समाधान निकाला गया। वह था लैंगेज लेक्चरर का पद जिसकी तनखाह प्रोफेसर से कहीं ज्यादा कम थी। यह भी कहा गया कि भाषा सिर्फ लेक्चरर द्वारा पढ़ाई जाएगी जबकि प्रोफेसर इस काम से बरी रहेंगे। ज्यादातर ये पढ़ाने वाले नए आवासी थे जिनको भाषा का अच्छा ज्ञान था। ज्यादातर को भाषा पढ़ाने का कोई अनुभव नहीं था पर भाषा ज्ञान निश्चय ही था। हिंदी उनकी मातृ नहीं तो राष्ट्रभाषा थी ही। इस तरह विश्वविद्यालयों में एक नया वर्ग बना। जिस तरह द्वितीय श्रेणी के नागरिक होते हैं उसी तरह विश्वविद्यालयों में पढ़ानेवालों की एक दूसरे दर्जे की क्लास। बाकी विषयों के प्रोफेसर नियुक्त किए जाते जबकि भाषा के एडजन्क्ट और लेक्चरर। बाकी विषयों के प्रोफेसरों की नौकरियां पक्की, भाषा के लेक्चररों की सारी उम्र कच्ची। कभी भी नौकरी से निकाला

जा सकता है। तनख्वाहें आधी से भी कम।

सो अब जाहिर है कि भाषा पढ़ाने के लिए गोरा अमेरिकी तो आएगा नहीं और आएगा तो उसके लिए कुछ प्रोफेसरनुपा इंतजाम ही करना होगा और सीधे से आएगा वह नया-पुराना आवासी ही जो अपनी भाषा की नौकरी पा यूँ ही धन्य हो गया होगा। सो विश्वविद्यालयों को ऐसे शिक्षक ढूँढ़ने में कोई दिक्कत भी पेश नहीं आती। फिर हिंदी जैसी भाषा के लिए तो बहुतेरे अमेरिका भर से मिलेंगे। यह और बात है कि कभी कोई बहुत पढ़ा-लिखा नौकरी न होने पर हिंदी पढ़ाने में ही उलझ जाता है तो दूसरी ओर बहुत से कामचलाऊ ही मिलते हैं पर जिसको जो मिले, जरूरत पड़ने पर वही स्वीकार्य हो जाता है। गेहूं के साथ घुन तो पिसता ही है। ऐसे में जब रेवड़ियां बंट रही हों तो सुपात्र क्या और कुपात्र क्या!

एक नया दर्शन विकसित हो रहा है इन अमेरिकी शिक्षण संस्थानों में।

एक और भाषा शिक्षण की कला के विकास में अमेरिका की कौसिल आन द टीचिंग ऑफ फारन लैंग्वेजस भाषा शिक्षण को गंभीर रूप देने पर जो दे रही है। यह काम ज्यादातर अंग्रेजी को दूसरी भाषा के रूप में सीखने के संदर्भ में ही हो रहा है। इसे बाकी भाषाएं अपने शिक्षण कार्यक्रमों के विकास में लागू कर लेती हैं। स्वतंत्र काम तो बहुत नाम का ही हुआ है। जो अंग्रेजी में चल रहा होता है उसी को दूसरी भाषाएं अपना लेती हैं पर अंग्रेजी की ही देखादेखी काम होता तो है उसके लिए बाकायदा शिक्षकों के प्रशिक्षण पर जोर दिया जाता है। दूसरी ओर विश्वविद्यालय-कॉलेज बिना उचित प्रशिक्षण के किसी भी भाषा बोलनेवाले को नियुक्त कर लेते हैं।

इस नए और सस्ते शिक्षण दर्शन के अनुसार भाषा कोई भी भाषा-भाषी सिखा सकता है जबकि बाकी विषयों के लिए विशेषज्ञों की जरूरत होती है। काई भी भाषा बोलनेवाला जिसने किसी भी विषय में बी.ए., एम.ए. की हो भाषा पढ़ा सकता है। हिंदी पढ़ाने के लिए हिंदी में एम.ए. जरूरी नहीं। चूंकि इस पढ़ाने का कोई महत्व नहीं इसलिए पढ़ानेवाले भी गौण होते हैं। ज्यादातर इनकी नौकरियां पार्ट-टाइम और अस्थायी होती हैं।

एक तरफ सीखनेवालों की संख्या बढ़ रही है दूसरी ओर ये सीखनेवाले ज्यादातर ऐसे भाषा-भाषियों की औलाद होते हैं जिनकी भारतीय पृष्ठभूमि होती है सो किसी गोरे अमेरिकी का उनको पढ़ाना आसान भी नहीं होता क्योंकि बहुत से कोलोनियल मुहावरों से परिवित ये भारतीय मूल के छात्र हिंदी फिल्में देखकर सीखे हुए या मां-बाप, नानी-दादी को सुन कर सीखे अपने अमेरिकी शिक्षक को पीछे डाल देते हैं। बहुत से अमेरिकी हिंदी पढ़ानेवाले कम से कम चालू हिंदी कम ही जानते हैं क्योंकि चालू हिंदी तो किताबों से नहीं देश में रहकर ही आती है। इसीलिए गोरे अमेरिकियों के बजाय हिंदी के भाषा-भाषियों को नौकरी देने की प्रवृत्ति विश्वविद्यालयों में चल पड़ी है। गोरे अमेरिकी तो इस क्षेत्र में आने घबराने लगे हैं कि देसियों को भाषा पढ़ाना उनके बस का नहीं रहा पर इससे इस शिक्षण कर्म का ही विश्वविद्यालयों में अवमूल्यन हो रहा है।

हालत यह हो रही है कि आपको हिंदी बोलना आता है तो यही आपकी क्वालीफिकेशन है फिर 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान' की उक्ति को मानते हुए उनको कभी न कभी तो पढ़ाना भी आ ही जाएगा।

पहले से नौकरियां भाषाविदों या साहित्य के अन्वेषियों के लिए थीं। यह भी सच था कि तब

छात्रों का मकसद सिर्फ हिंदी बोलना ही नहीं था। बहुत बार वे गंभीर साहित्य अध्ययन करने के शोध की दिशा में बढ़ते थे। पर अब वैसी रुचि कम होती है। छात्र दो वजह से ही हिंदी सीखना चाहते हैं। एक, वे फिल्म देखकर समझ सकें, दूसरा कुछ बातचीत कर सकें, नानी-दादी आदि के साथ। इस जरूरत को भाषाभाषी शिक्षक पूरा कर भी देते हैं क्योंकि बहुत बार उनकी अपनी हिंदी का स्तर भी ऐसा ही होता है या विद्यार्थियों से थोड़ा कुछ बेहतर। साहित्य में उनकी पैठ नहीं होती तो उसकी विशेष जरूरत भी नहीं पड़ती। ऐसे में कोई भी हिंदी बोलनेवाला चाहे वो किसी भी विषय को पढ़ा हो, भाषा पढ़ाने के काविल मान लिया जाता है।

इसीलिए वे सारी विश्वविद्यालय की नौकरियां जो हमेशा विशेषज्ञों के लिए रही, भाषा के क्षेत्र में उनका और पढ़ानेवालों का सम्मान खत्म हो रहा है। गेहूं के साथ घुन भी पिसता है सो जो कुछ पहले के भाषा पढ़ानेवाले भाषा विशेषज्ञ या साहित्य में गहरी पैठ रखनेवाली हैं उनको भी अपने पर संदेह होने लगा है कि वे किस कोटि के हैं। यही नहीं उनको भी यही विकल्प मिलता है कि या तो वे लेक्यर की पदवीं स्वीकारें वर्ना भाषा के लिए और कुछ उपलब्ध ही नहीं। चूंकि विश्वविद्यालय तो बाज आएंगे नहीं अपने रवैये से इसीलिए हम कुछ भाषा पढ़ानेवालों ने यह फैसला किया ही कि कम से कम इन नए पढ़ानेवालों को शिक्षण का प्रशिक्षण तो दिया जाए।

वक्त के साथ पढ़ाने के तरीके और पढ़ानेवालों की अपेक्षाएं भी बदल गयी हैं। अब ज्यादातर विद्यार्थी इतनी हिंदी सीखना चाहते हैं कि वे बोल सकें और हिंदी फिल्में समझ सकें। इससे ज्यादा उनकी रुचि नहीं होती। न तो उनका साहित्य पढ़ना होता है। न ही इस दिशा में कोई गंभीर काम करना होता है। उनका गंभीर काम तो तथाकथित कन्टेंट वाले विषयों में होता है। एकाध ग्रेजुएट छात्रों को कुछ ऐसा करना हो तो वे स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर लेते हैं। या फिर भूले भटके सात-आठ साहित्य पढ़ने वाले आ जाते हैं।

एक ओर भारतीय मूल के छात्रों की संख्या बढ़ने के मारे जगह-जगह हिंदी पढ़ने के कार्यक्रम शुरू किए जा रहे हैं। पर उनमें शिक्षा का प्रबंध सिर्फ इंटरमीडिएट या माध्यमिक स्तर का होता है। यानी कि विद्यार्थियों को लिपि आ जाए, कुछ पढ़ना-लिखना और कुछ बातचीत। उनका भाषा ज्ञान इस स्तर पर नहीं पहुंचाया जाता कि वे आसानी से अखबार भी पढ़ सकें। कुछ जो इस दिशा में आगे सीखना चाहते हैं उनकी संख्या बहुत छोटी है। उनमें से ज्यादातर काकेशियन मूल के अमेरिकी होते हैं जो भारत जाकर बोलचाल की हिंदी पर बेहतर अधिकार चाहते हैं। कोई एकाध साहित्य से परिचित भी होना चाह सकता है। ऐसे में हिंदी की पढ़ाई करने वालों की अमेरिका में माध्यमिक स्तर की ही तैयारी होती है। विरले लोग यहां रहकर साहित्य का थोड़ा बहुत अध्ययन कर पाते हैं।

गोरे अमेरिकी इस व्यवस्था से परिचित होने के बाद अब भाषा शिक्षण की दिशा में जाना ही नहीं चाहते। विश्वविद्यालय उनके साथ ऐसा व्यवहार कर भी नहीं पाते पर इसके लिए भी कई तरीके विश्वविद्यालयों ने खोज लिए हैं। एक तरीका उनमें से यह है कि उनको भाषा का शिक्षक कहा ही नहीं जाता। वे चाहे भाषा पढ़ा ले पर उनकी पदवी किसी दूसरे अनुशासन में रख दी जाती है जैसे कि दक्षिण एशियाई साहित्य, संस्कृति या सभ्यता इत्यादि। दूसरी ओर हिंदी मातृभाषा वाले चाहे कुछ और भी पढ़ा दें। उनको भाषा का शिक्षक मानकर ही कम पैसे देकर काम चला लिया जाता है। इस तरह वे विरोध भी नहीं कर पाते और इस व्यवस्था को कोई आघात भी नहीं लगता।

अप्रवासी को तो नौकरी चाहिए होती है और वह किसी भी शर्त पर काम करने को तैयार हो जाता है। नित नए अप्रवासी आते ही रहते हैं सो वह सिलसिला कभी बंद होने वाला नहीं है।

कुछ किया जा सकता है इस बारे में? अगर 9/11 न घटा होता तो शायद कुछ किया जा सकता था। भारतीयों ने अपनी काबिलियत को इस देश में सबूत दे दिया है। इसी से यहां के पढ़े-लिखे नौजवान यानी कि आनेवाली पीढ़ियां तो इसे स्वीकारेंगी नहीं या फिर ऐसी नौकरियों में घुसेंगे ही नहीं। ज्यादातर यह पहली खेप के अप्रवासियों की ही नियति होती है कि उन्हें अरसे तक अस्थायी रूप से पढ़ाने की नौकरी मिल जाती है और हिंदी जैसी भाषा को लेकर, जिसके लिए अपने देश में ही पर्याप्त अवसर नहीं है अतः यहां जो भी मिल जाए वे उसे बाखुशी सिर माथे पर उठाते हैं। मेरी समझ में यह नस्लवाद की एक नई शक्ति है, एक नया मुखौटा!

श्रद्धांजलि

- * मॉरीशसवासी कथाकार श्री अभिमन्यु अनत
- * 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' जैसी उल्लेखनीय कृति के रचयिता श्री अमृतलाल वेगड़
- * प्रख्यात कथाकार श्री तेजिन्दर एवं सुप्रसिद्ध गीतकार श्री गोपालदास नीरज को हार्दिक श्रद्धांजलि!

विदेशों में हिंदी शिक्षण की चुनौतियां

अर्चना पैन्यूली

हिंदी विश्व के दूसरे सर्वाधिक आबादी वाले देश भारत की प्रमुख भाषा है। डेनमार्क उत्तरी यूरोप में एक नन्हा-सा देश है, जहां भारतीयों की संख्या बारह हजार है, जिसमें हिंदीभाषी काफी कम हैं मगर फिर भी यहां जीवन के विविध क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग होता है। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में भी हिंदी में अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। विश्वविद्यालयों में हिंदी को विश्व की आधुनिक भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है। अंतरराष्ट्रीय मंच में भारत का प्रतिनिधित्व करने की अगर किसी भाषा में योग्यता है तो वह हिंदी है।

अपने एक हजार वर्ष की जीवन यात्रा में मानक हिंदी ने निःसंदेह काफी लंबी मिलिं तय की है। आज हिंदी एक सशक्त, सुगठित व्याकरण सम्मत और समृद्ध भाषा की सभी अनिवार्यताओं से परिपूर्ण है। देवनागरी एक विशिष्ट लिपि है। मानक हिंदी हिंदुस्तान ने नौ राज्यों की एक आधिकारिक भाषा के अतिरिक्त एक विशाल जनसंख्या की मातृभाषा व पूरे हिंदुस्तान की एक संपर्क भाषा है। दुनिया में हिंदी बोलने वालों की संख्या तीसरे नंबर पर है। करीब पचास करोड़ लोग हिंदी भाषी हैं। विश्व स्तर की प्रमुख भाषाओं में हिंदी भी एक है।

मगर हिंदी में जो संभावनाएं हैं, दुर्भाग्य से हिंदी को वह स्थान नहीं मिल पाया है। दक्षिणी राज्य हिंदी अपनाना नहीं चाहते। हिंदी राज्यों में ही हिंदी की स्थिति का हास हुआ है। बच्चों के लिए व गैर हिंदीभाषियों के लिए हिंदी मुख्यतः टीवी चैनल्स व बॉलीवुड की ही भाषा बन रही है। साहित्यिक क्षेत्र में हिंदी की स्थिति दयनीय है। यह सच है कि हिंदी एक भाषा ही नहीं, हमारी संस्कृति व परंपराओं की अभिव्यक्ति है। सो देश-विदेश में चलते सांस्कृतिक व धार्मिक क्रियाकलाप-गतिविधियां हिंदी विकास में निःसंदेह सहायक हैं। बॉलीवुड फिल्में हिंदी के अस्तित्व को बनाए हुए हैं। मगर यह हिंदी का अनौपचारिक परिप्रेक्ष्य है। अगर अनौपचारिक स्तर से हट कर औपचारिक स्तर पर हिंदी का विश्लेषण करें तो हिंदी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है।

हिंदी शिक्षण की समस्याएं

वर्णमाला व उच्चारण संबंधित मुद्दे : हिंदी सीखने वालों को भाषा संबंधित बहुत सी परेशानियों का सामना पड़ता है। वर्णमाला लंबी है। मात्राएं हैं। लिंग निर्धारण में दिक्कत होती है। क्रिया लिंग के हिसाब से बदल जाती है। ‘वह जा रही है।’ ‘वह आ रहा है।’ सजीवों के अतिरिक्त बेजान वस्तुओं को भी स्त्रीलिंग व पुलिंग से संबोधित किया जाता है। मसलन ‘लड़ू खाया’, ‘जलेबी

खाई'। गैर हिंदीभाषियों के लिए हिंदी सीखने के लिए संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। चंद्रबिंदु व अनुस्वार के प्रयोग को लेकर दुविधा बनी रहती है। संयुक्त व्यंजन के उच्चारण व जानकारी की दुविधा, जैसे ज्ञान, विज्ञान। पांच प्रकार के 'ऱ' जैसे प्रकार में, अर्जुन, धर्म, गृहणी एवं ऋषि वाला 'र' हैं। इनके उच्चारण में कोई विशेष फर्क नहीं है। तीन किस्म से 'स' हैं, जिनके उच्चारण में भेद बहुत कम हैं। गैर हिंदीभाषियों के लिए क्या कहें हिंदीभाषियों को भी सारी जिंदगी अंतर समझ में नहीं आ पाता और वे इसे व्यवहार में नहीं ढाल पाते।

मगर फिर भी देवनागरी में अन्य भाषाओं की तुलना में दोष बहुत कम हैं, जिन्हें सुधारा जा सकता है, बदला जा सकता है। हिंदी एक वैज्ञानिक व तार्किक भाषा है, जिसकी एक विशेषता यह है कि हर ध्वनि के लिए एक निश्चित वर्ण है व वह सदैव निश्चित है। अगर 'न' व 'ट' नट होता है तो 'क' व 'ट' कट 'त' व 'ट' तट। अंग्रेजी में पांच स्वर में 20 ध्वनियां हैं व 21 व्यंजनों में 24 ध्वनियां हैं, यानि 26 वर्णों की 41 ध्वनियां हैं। 'बी' 'यू' 'टी' बट होता है पर 'पी' 'यू' 'टी' पट नहीं होता वह पुट होता है।

पाठ्यक्रम व बुनियादी सुविधाएं : व्यावहारिक तौर पर हिंदी शिक्षण में मुख्य समस्या यह है कि पाठ्यक्रम में बच्चों में भाषा व साहित्य के प्रति रुझान उत्पन्न करने की नितांत कमी। पुस्तकें रोचक नहीं हैं। ढंग के अध्यापक नहीं हैं। शिक्षण विधि व संसाधन उचित नहीं है। बच्चों में हिंदी पढ़ने की ललक पैदा नहीं की जाती। पेशे से एक शिक्षक होने के नाते मैंने यूरोपीय स्कूलों में देखा कि छोटी कक्षाओं से वर्ग के हिसाब से पाठ्यक्रमों में लेख, कथा संग्रह व उपन्यास शामिल रहते हैं। छोटी कक्षाओं में बच्चों से रीडिंग करवाई जाती है। बुक्स क्लब होते हैं। पेरेन्ट्स व बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थी छोटी कक्षाओं के बच्चों के साथ बैठकर रीडिंग करते हैं। एक लेवल की पुस्तक पढ़कर बच्चे दूसरी लेवल की पुस्तक पढ़ते हैं और एक सत्र के बच्चे चार से छह लेवल्स की पुस्तकें पढ़ चुके होते हैं। उन्हें फोनिक्स का अभ्यास करवाया जाता है। बच्चों का व्यक्तिगत मूल्यांकन होता है।

कक्षा छह से बच्चों को एक सत्र में कम से कम छह-आठ पुस्तकों का अध्ययन, समीक्षा लिखना व उनके ऊपर चर्चा करनी पड़ती है। दसवीं कक्षा तक आते-आते तक विद्यार्थी कथा साहित्य की कम से कम सौ पुस्तकें पढ़ चुका होता है। फलस्वरूप बाल्यकाल से ही उनमें पढ़ने की जिजीविषा जागृत हो जाती है। भाषा व साहित्य उन्हें बोझिल नहीं, रोचक लगने लगता है। प्रोफेसर राकेश नौटियाल (टिहरी गढ़वाल विश्वविद्यालय) का कहना है भारत में विश्वविद्यालय के भी विद्यार्थी पुस्तक समीक्षा नहीं लिख सकते।

हिंदी के प्रति लोगों का रखैया : कई हिंदी अध्यापक कहते हैं कि हिंदी शिक्षण की समस्याओं में एक अप्रत्यक्ष कारण है कि लोग हिंदी पढ़ना आवश्यक नहीं समझते। हिंदी के प्रति खुद को गौरवान्वित महसूस नहीं करते। नई पीढ़ी में हिंदी पुस्तकें पढ़ना काफी कम होता जा रहा है। जब तक लोग स्कूल कॉलेज में होते हैं तो प्रेमचंद, शरतचंद्र आदि लेखकों को पढ़ लेते हैं, उसके बाद कुछ नहीं।

जिस घर में अंग्रेजी के बजाए हिंदी अखबार, पत्रिकाएं व पुस्तकें पड़ी रहती हैं वह परिवार भारतीय समाज में विशिष्ट नहीं माना जाता। हिंदी कुलीन लोगों की नहीं, अनपढ़ों की भाषा मानी जाती है। क्यों हिंदी को लेकर हिंदुस्तानियों में हीन भावना है? क्यों वे हिंदी पढ़ने से कतराते हैं?

विदेशों में हिंदी शिक्षण के मुद्रे : कोपनहेगन यूनिवर्सिटी के ‘क्रॉस कल्वरल एंड रिजनल स्टडीज’ शिक्षण विभाग में विद्यार्थी भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास, भारतीय दर्शन हिंदी में पढ़ते हैं। हिंदी एसोशिएट प्रोफेसर एल्मार रेनर की शिकायत है- उचित शिक्षण संस्थान का अभाव। प्रोफेसर रेनर का कहना है कि अहिंदीभाषियों को हिंदी पढ़ाने में मुख्य समस्या- सही सामग्री का उपलब्ध नहीं होना। शिक्षण पद्धति का पिछले पचास सालों में जो विकास पाश्चात्य भाषा शिक्षण के संदर्भ में हुआ है, वह अभी भारतीय भाषाओं के अध्यापन में नहीं आया। फिलहाल वे जर्मन आदि भाषाओं के लिए तैयार किए गए ‘कम्युनिकेटिव अप्रोच’ यानी संवादात्मक शिक्षण पद्धति को हिंदी में लाने का प्रयास करते हुए अपने विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। उनकी राय है कि ‘मूल संवादात्मक शिक्षण सामग्री के अतिरिक्त ऐसी पाठ्य पुस्तिकाएं प्रकाशित की जाएं जिनमें मशहूर लेखकों के उपन्यास और अन्य रचनाओं को लघुरूप एवं सरल भाषा में लिखकर प्रकाशित किया जाए ताकि छात्रों को साहित्य सागर में प्रवेश पाने में सुविधा हो। ऐसी पुस्तिकाएं अंग्रेजी में ‘ईंजी रीडर’ के नाम से कई दशकों से उपलब्ध हैं।

गौरतलब बात है एल्मार डेनिश से हिंदी व्याकरण की एक पुस्तक तैयार कर रहे हैं : Morfosyntaks pa Hindi।

प्रोफेसर एल्मार रेनर का यह भी कहना है कि भारत में हिंदी की स्थिति विदेशी भूमि में हिंदी की मांग पर अहम भूमिका निभाती है। जब तक हिंदुस्तान में हिंदी को उचित सिला नहीं मिलेगा, विदेश में अधिक सम्मान नहीं पा सकती। कहने का मतलब है कि अगर हिंदुस्तान में हिंदी के दुश्मन बैठे हैं तो विदेश में हिंदी के दोस्त कैसे बन जाएंगे?

श्रीमती कुमुद माथुर डेनमार्क में बीस वर्षों तक प्रवासी भारतीयों के बच्चों को हिंदी सीखाने में संलग्न रही। बच्चों को हिंदी सीखने की यह सुविधा डेनिश सरकार की तरफ से उपलब्ध थी। बच्चों का हिंदी स्कूल किसी तरह घिसटते-घिसटते अंततः बंद हो गया। श्रीमती माथुर का कहना है कि स्कूल बंद होने का एक कारण यह भी था कि भारतीय बच्चों में अपनी मातृभाषा पढ़ने की उतनी ललक नहीं रहती जितनी अन्य देशों- जापानी, अरबी व चाइनीज बच्चों में रहती है। उनके स्कूल वहां अभी भी चल रहे हैं। कुमुद माथुर के लिए सबसे बड़ी चुनौती हिंदी में बच्चों की रुचि बनाए रखने में थी, क्योंकि हिंदी के प्रति हमारे हिंदुस्तानियों में कोई श्रद्धा नहीं। अभिभावक ही कहते हैं- ‘हमारे बच्चे हिंदी पढ़कर क्या करेंगे?’

मातृभाषा को अपर्याप्त महत्व : एक वैश्विक समस्या

अंग्रेजी विश्व की सभी भाषाओं पर प्रभुत्व जमा रही है। विश्व की कई भाषाएं आज खतरे में हैं। कहा जा रहा है कि कुछ वर्षों उपरांत विश्व में मौजूद लगभग सात हजार भाषाओं में से आधी भाषाएं विलुप्त हो जाएंगी क्योंकि नई पीढ़ी, यानी बच्चे उन्हें सीख नहीं रहे हैं। भाषा-संस्कृति विभाग रोसकिल्ड यूनिवर्सिटी डेनमार्क के प्रोफेसर टोव स्कटनब कंगस कहते हैं- ‘यह अति आवश्यक है कि बच्चे आरंभिक शिक्षा अपनी मातृभाषा में प्राप्त करें। यदि किन्हीं परिस्थितियोंवश यह संभव नहीं है तो भाषा-विषयक विषयों में उनकी प्रमुख भाषा उनकी अपनी मातृभाषा होनी चाहिए ताकि वे अपनी भाषा को अच्छी तरह से सीख सकें। कई स्कूलों में बच्चों को अपनी भाषा सीखने के कोई अवसर नहीं है, बल्कि उनकी भाषा का वहां पूरा विरोध किया जाता है। बच्चे अपने विचार-भाव सबसे अच्छे

ढंग से अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्ति कर सकते हैं। सर्वोच्च शैक्षिक उपलब्धियां वे अपनी भाषा में ही हासिल कर सकते हैं। अपनी मातृभाषा की कीमत पर बच्चों को दूसरी, एक विदेशी भाषा सीखने पर जोर देना मानवता के खिलाफ भी है। इसके लिए अभिभावक, स्कूल व शिक्षा प्रणालियां सभी दोषी हैं।

शिक्षाविदों ने पता लगाया, बच्चा जितने अधिक वर्ष अपनी मातृभाषा में शिक्षा हासिल करता है आगे चलकर वह अपनी भाषा के अलावा दूसरी प्रभावी भाषा जैसे अंग्रेजी, फ्रेंच या जर्मन आदि को भी अच्छे से समझता है। बच्चे जो द्विभाषी व बहुभाषी होते हैं, समाज व दुनिया को अच्छा परखते हैं। अपनी मातृभाषा में एक ठोस बुनियाद गढ़ना शैक्षिक विकास के लिए जरूरी है, साथ ही यह आगे चलकर एक अतिरिक्त भाषा सीखने में भी सहायक होती है। शिक्षाशास्त्री डॉ. कारलोस अल्बर्टो कहते हैं कि यह सही है कि ग्लोबलाइजेशन के इस युग में हम विश्व को समझें, दूसरी भाषाएं व संस्कृति को बूझें, पर सबसे पहले अपने खुद के स्रोतों को तलाशिए, अपनी जड़ों से प्रेरणा हासिल करिए। दूसरों की भाषा व संस्कृति जानने से पहले अपनी भाषा व संस्कृति जानें। अगर कोई अपने प्रदेश से बाहर निवास कर रहा है तो माता-पिता अपने बच्चों को उस क्षेत्र की भाषा के अतिरिक्त अपनी मातृभाषा सीखने के भी अवसर प्रदान करें। एक शैशव का मस्तिष्क स्पंज की तरह होता है। अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में बच्चा दो-तीन भाषाएं बड़ी आसानी से सीख सकता है अगर उसे अवसर प्राप्त हैं।

मातृभाषा अभियान के तहत एन.जी.जी. इंटरनेशनल स्कूल डेनमार्क का एक स्कूल है जहां मातृभाषा क्लब स्थापित है। इस क्लब के द्वारा स्कूल अपने अंतरराष्ट्रीय छात्रों को अपने-अपने देशों की मातृभाषा के संपर्क में रहने के लिए प्रोत्साहन करता है। हिंदी भाषा क्लब यहां सबसे बड़ा क्लब है। छात्र भारत के विभिन्न प्रांतों से हैं, जैसे केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश आदि। इस क्लब में छात्रों को हिंदी भाषा के ज्ञान के साथ भारतीय संस्कृति से भी परिचित कराया जाता है। छात्रों में हिंदी भाषा सीखने की गहरी रुचि है, क्योंकि उनका मानना है कि हिंदी हमारी आधिकारिक भाषा है और भविष्य में यह विश्व की महत्वपूर्ण भाषाओं में से एक होगी।

श्रीमती स्मिता इमैन्यल और श्रीमती अनीता हुकेरिका इस क्लब का संचालन करती हैं। हिंदी अध्यापिका श्रीमती स्मिता इमैन्यल कहती हैं कि अपनी मातृभूमि से दूर परदेश में हिंदी भाषा को प्रोत्साहन मिलना इस क्लब का संचालन करना उनके लिए सौभाग्य और हर्ष की बात है। उन्हें बच्चों को पढ़ाने के लिए सामग्री खुद ही जुटानी पड़ती है। वे कहती हैं कि अब इंटरनेट पर भी हिंदी सीखने की काफी सामग्री उपलब्ध है।

समाधान-विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग

समय के साथ शिक्षण की विविध विधियां अपनाई जा रही हैं। तकनीकी विकास में जो क्रांति आयी है उसका सबसे गहरा प्रभाव बच्चों पर पड़ा है। स्कूल व अध्यापक भी तकनीकी में आए इस क्रांति से अछूते नहीं रह सकते। पढ़ाने की पुरानी, उपदेशात्मक रीति अपना महत्व खोती जा रही है। आजकल की शिक्षणविधि पारंपरिक सिद्धांतों से अलग होकर बच्चों को खुद ही अन्वेषी होने को प्रेरित करे। ब्लैकबोर्ड टीचिंग- चॉल्क एंड टॉल्क आज के जमाने में प्रभावी शिक्षा पद्धति नहीं समझी जाती। आज अध्यापक गुरु या ज्ञानकर्ता नहीं, सुगमकर्ता है, जिसका काम ऐसा वातावरण उत्पन्न

करना है कि बच्चे प्रेरित हों। अध्यापन पढ़ना-पढ़ाना नहीं, बल्कि सीखना-सिखाना हो गया है। अब तो बच्चे की अभिव्यक्ति व अधिकार की ही बात ज्यादा है।

यह भी समझने की आवश्यकता है कि आज बच्चों के लिए मानक हिंदी का क्या अभिप्राय है। समय के अनुसार हिंदी को विकसित करने की आवश्यकता है। पचास साल पहले हिंदी में संस्कृत शब्दों का वर्चस्व था। आज मानक हिंदी में अंग्रेजी शब्दकोशों का है। समय के साथ भाषा का भी वैश्वीकरण हो रहा है। लोग कुछ शब्द व भाव अंग्रेजी भाषा में बेहतर समझते हैं। हिंदी को उदार बनाना पड़ेगा। अंग्रेजी में हजारों शब्द हर साल जुड़ते हैं जिनमें बहुत सारे दूसरी भाषाओं से आते हैं। भाषा शिक्षण के लिए एक व्यावहारिक विश्लेषणात्मक ट्रृटिकोण का होना अनिवार्य है। भाषा शिक्षण के लिए एक अंतर आम तौर पर करना अनिवार्य है कि भाषा व्यक्ति की मातृभाषा है या उसकी दूसरी भाषा या फिर विदेशी भाषा है। यह भी गौरतलब है कि आज के बच्चे किस विधि व भाषा में पढ़ना चाहेंगे। जब तक शिक्षण में अध्यापक उनके नए सोच-विचार व उनके जीवन में आए आधुनिकीरण को नहीं दर्शाएंगे, उनको शिक्षण आकर्षित नहीं करेगा। पढ़ाने के लिए एक मॉडन अप्रोच, एक आधुनिक तकनीकी शब्दावली का प्रयोग करना जरूरी है।

हिंदी शिक्षण सहायता व संसाधन : हिंदी शिक्षण को अधिक प्रभावी बनाने के लिए पाठ्य पुस्तकों के अलावा बहुविधि उपकरणों का इस्तेमाल हो रहा है, जैसे इलेक्ट्रॉनिक टीचिंग एड्स। एजुकेशनल डीवीडीज, ऐनीमेशन फिल्में व ऑडियो विजुअल सामग्री का प्रयोग आज के जमाने में हर परिवेश में संभव है। हिंदी अध्यापकों की समय-समय पर व्यावसायिक बैठकों, शैक्षिक सम्मेलनों व शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यशालाओं में सहभागिता होने से वे समय के साथ स्वयं को अपडेट कर सकते हैं। छात्रों के लिए एक विशिष्ट पाठ्यक्रम, रोचक पुस्तकों का चयन। बच्चों की कुशलता मात्र टेस्ट-पेपर्स व परीक्षाओं से न आंकी जाए। प्रोजेक्ट कार्य, प्रस्तुतियां, पुस्तक समीक्षाओं आदि से उनकी कुशलता का आकलन होना चाहिए। छात्रों की हिंदी पढ़ने, सुनने, बोलने व लिखने की दक्षताएं आंकी जाएं।

हिंदी शिक्षण व हिंदी प्रोत्साहन

'ऑस कल्चरल एंड रिजनल स्टडीज' की भूतपूर्व छात्रा केटरीन ब्रॉन्स्टेद का कहना है कि बॉलीवुड फिल्मों ने उन्हें हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया। वे जानना चाहती थीं कि शाहरुख खान कह क्या रहा है? केटरीन ब्रॉन्स्टेद अब डेनिश जिमनेजियम (इंटर कॉलेज) में अंग्रेजी की लेक्चरार हैं। भारत व भारतीय संस्कृति से उनका प्रेम इस कद्र है कि हर वर्ष अपने छात्रों के समूह को वे भारत ले जाती हैं। साझी पहनती हैं। वे बॉलीवुड फिल्में स्कूब देखती हैं और भारतीय संस्कृति पर पुस्तकें- "Narrating India", 'Bollywoodfilm- en introduktion' भी प्रकाशित की है।

केटरीन ब्रॉन्स्टेद का कहना है : 'तीन साल पहले मैंने कोय जिम्नेजियम में कुछ छात्रों को हिंदी पढ़ाई थी जो दिल्ली में हमारे साथी स्कूल जाने के लिए भारत जा रहे थे लेकिन इस बार एक्सचेंज थोड़ा अलग है, और दुर्भाग्यवश हिंदी के लिए कोई समय नहीं है। हम अपने छात्रों को भारतीय इतिहास और समाज के बारे में टेक्स्ट और फिल्मों के माध्यम से पढ़ाते हैं। हिंदी फिल्मों को डेनिश या अंग्रेजी उपशीर्षक के साथ दिखाते हैं लेकिन मेरी आशा अभी बरकरार है कि एक दिन डेनिश जिमनेजियमों चीनी, पुर्तगाली, स्पेनिश इत्यादि भाषाओं के साथ हिंदी भी पढ़ाई जाएगी, लेकिन इसके

लिए राजनेता और स्कूल इच्छुक होने चाहिए।

चाहे हम शिक्षण पद्धति में कितना ही सुधार कर लें जब तक कोई प्रोत्साहन नहीं होगा, लोग हिंदी से कठराएंगे। राजकीय बालिका इंटर कॉलेज की प्रधानाचार्य श्रीमती सरोजनी नौटियाल कहती हैं कि उनके छात्र साहित्यिक हिंदी के होते हुए भी साहित्य का कोई प्रसंग नहीं सुना पाते। कोई कविता नहीं, साहित्य से संबंधित कोई अंश नहीं है उनके पास सुनाने के लिए। ऐसा लगता है कि उनके ऊपर हिंदी थोपी गई है।

हिंदी को जब तक व्यावहारिक तौर पर उपयोगी नहीं बनाएंगे बच्चे हिंदी सीखने के लिए लालायित नहीं होंगे। कहा जाता है कि जब तक कोई भाषा पेट की भाषा न बने महत्व नहीं पा सकती। उदाहरण के तौर पर डेनिश मात्र पांच मिलियन लोगों की भाषा है और पूरे डेनमार्क में छाई है। यहां तक कि इमीग्रेंट्स व मल्टीनेशनल में काम करने आए उच्च शिक्षित विदेशियों को भी डेनिश सीखने के लिए बाध्य होना पड़ता है। हिंदी पांच सौ मिलियंस की भाषा है और हिंदी को वह महत्व प्राप्त नहीं है जो डेनिश या डेनमार्क जैसे कई छोटे मुल्कों की भाषाओं को प्राप्त है। इसका कारण वे भाषाएं रोजगार की भाषा हैं, व्यापार की भाषा हैं।

यह बात सही है कि अंग्रेजी एक बहुमुखी व अंतरराष्ट्रीय भाषा है। आज के युग में विभिन्न समुदायों के बीच पारस्परिक विचार-विमर्श व व्यापार बढ़ जाने से अंग्रेजी का उपयोग व महत्व और भी बढ़ गया है। फिर हमारे अतीत के संबंधों की वजह से और विश्व के मौजूद मांग की वजह से अंग्रेजी हम हिंदुस्तानियों के लिए हमेशा एक महत्वपूर्ण भाषा रहेगी। अंग्रेजी के प्रति उदासीनता दिखा कर हमें अपनी प्रगति नहीं रोकनी लेकिन हिंदी के मूल्य पर अंग्रेजी नहीं सीखनी। दोनों भाषाएं साथ-साथ चलनी चाहिए।

गैरअंग्रेजी भाषी देशों में भी अब लोग अधिक संख्या में अंग्रेजी सीखने लगे हैं लेकिन अंग्रेजी उनकी अपनी राष्ट्रीय भाषा के महत्व को कतई प्रभावित नहीं करती। हमारे देश में अंग्रेजी हिंदी ही नहीं हमारी समस्त क्षेत्रीय भाषाओं को तहस-नहस कर रही है। 1975 से अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों की संख्या दिन पर दिन हिंदुस्तान में बढ़ती जा रही है। हिंदी माध्यम वाले स्कूलों में ज्यादातर उन्हीं के बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं जो अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों का खर्च वहन नहीं कर पाते। अगर आज देखा जाए तो हिंदी का दारोमदार गरीबों के कंधों पर है। यदि आप समाज के मध्य व उच्चवर्गीय लोगों के बच्चों को लें तो वे अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में शिक्षा हासिल कर अंग्रेजी अखबार व साहित्य पढ़ते हैं। अगर हिंदी का अभिजात्य वर्ग हिंदी नहीं पढ़ेगा तो कैसे इसका विकास होगा?

निष्कर्ष

जनता उसी ओर रुख करेगी ही जो उसको अधिक लाभकारी दिखेगा। इसके लिए जड़ पर प्रहार करना पड़ेगा। शिक्षण पद्धति में सुधार व नई पीढ़ी के मन में हिंदी के प्रति जिज्ञासा व अभिमान पैदा करना। हिंदी शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रत्यक्ष व सुसाध्य, दोनों प्रकार के उपाय करने पड़ेंगे। प्रत्यक्ष उपायों में स्कूलों में शिक्षण का एक समुचित ढांचा, रोचक पाठ्य पुस्तकें, अध्यापकों का उचित प्रशिक्षण। कक्षाओं का आकार एक निर्धारित सीमा में। पाठ्यक्रम में लघु व दीर्घ रोचक हिंदी उपन्यास समावेश करने व बच्चों को उनकी समीक्षा करवाने से, बच्चों में पढ़ने की

आदत विकसित हो सकती है। सही उच्चारण के लिए ऑडियो लेशन्स। युग इलेक्ट्रॉनिक हो चला है तो हिंदी को हाइटेक भाषा बनाना ताकि अंग्रेजी की बोर्ड व वर्णमाला पर से सभी प्रकार की निर्भरता छूटे।

सुसाध्य उपायों में ऐसा माहौल पैदा किया जाए कि अच्छी किताबों का विकास हो। स्कूल व शैक्षिक संस्थानों के बाहर भी हिंदी सीखने का माहौल हो। हिंदी भाषा के प्रयोग को लोकप्रिय बनाने के लिए उचित गतिविधियों व कार्यक्रमों को बढ़ावा, हिंदी सोसाइटीज का गठन, साहित्यिक कार्यक्रमों के लिए मंच प्रदान करना। सार्वजनिक बोलचाल सत्र व लेखन प्रतियोगिताओं का आयोजन। हिंदी को व्यावहारिक तौर पर उपयोगी बनाना ताकि उसे अपनाकर लोग रोजी कमा सकें, स्वयं को सम्मानित व गौरवान्वित महसूस कर सके। इन सब प्रयासों से शिक्षण तो बेहतर होगा ही साथ हिंदी की स्थिति भी अच्छी बनेगी। हिंदी की सुधङ्ग स्थिति विश्व में भारत की राष्ट्रीय शक्ति को चित्रित करेगी।



ऑस्ट्रेलिया में हिंदी

रेखा राजवंशी

ऑस्ट्रेलिया एक बहु सांस्कृतिक देश है और पूरे विश्व के लोग यहां रहते हैं। भारतीयों की संख्या बढ़ने के साथ साथ यहां भारतीय संस्कृति, भाषा, भोजन और उत्सवों को भी मान्यता प्राप्त हुई है। यहां बोली जाने वाली करीब तीन सौ भाषाओं में विविध भारतीय भाषाएं हैं जिसमें हिंदी के अतिरिक्त पंजाबी, तमिल, गुजराती आदि मुख्य हैं।

ऑस्ट्रेलिया की राष्ट्रीय जनगणना 2016 के आंकड़ों के अनुसार ऑस्ट्रेलिया में भारतीय प्रवासी, यहां आने वाले मुख्य पांच प्रवासियों में से एक भारत में पैदा हुए लोग ऑस्ट्रेलियाई आबादी का 1.9% हैं।

जनगणना 2016 में यह भी पता चलता है कि ऑस्ट्रेलिया में लगभग 440,300 लोग हैं, जिनमें से 1.9% लोग हिंदू हैं। हिंदी बोलने वाले आबादी के अनुपात में वृद्धि हुई है (0.5% से 0.7% तक)। ऑस्ट्रेलिया में कुल 15,9,652 लोग हिंदी बोलते हैं। हिंदीभाषियों के राज्यवार आंकड़े यहां दिए गए हैं- एन एस डब्ल्यू- 67,034, विक्टोरिया- 51,241, क्वींसलैंड- 18,163, दक्षिण ऑस्ट्रेलिया- 7,310, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया- 10,747, तस्मानिया- 639, ऑस्ट्रेलियाई राजधानी क्षेत्र (अधिनियम)- 3,646 और उत्तरी टेरिटोरी- 852 लोग हिंदी बोलते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण और साहित्य

हिंदी शिक्षण की शुरुआत ऑस्ट्रेलिया के मंदिरों में हुई जहां भारतीय प्रवासियों ने अपने बच्चों को भाषा ज्ञान देने के लिए कक्षाएं लगाई। सिडनी में पहली बार हिंदी समाज ने यह प्रयास किया। बाद में सामुदायिक सप्ताहांत विद्यालयों की शुरुआत हुई।

सिडनी विश्वविद्यालय के एशियन स्टडीज के विभाग में हिंदी पढ़ाई जाने लगी जिसका शिक्षण प्रवक्ता हाशिम दुर्गन्धी और सुमनजी करते थे। कुछ वर्षों बाद वित्तीय कारणों से इसे बंद कर दिया गया। सिडनी विश्वविद्यालय के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत रेखा राजवंशी ने हिंदी शिक्षण किया परंतु इस कोर्स को भी अब विराम दे दिया गया।

ऑस्ट्रेलिया में सामुदायिक भाषाओं के शिक्षण के अंतर्गत हिंदी को ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में जोड़ने का श्रेय डॉ. जगदीश चावला को जाता है। सिडनी में माला मेहता ने इंडो ऑस्ट्रेलियन बाल भारती हिंदी स्कूल में हिंदी शिक्षण की औपचारिक रूप से शुरुआत की। बाद में सन् 2000 में सिडनी के दो केंद्रों में हिंदी की कक्षाएं विधिवत् शनिवार को लगाने लगीं। सिडनी में अन्य सप्ताहांत स्कूलों

में फिजी समुदाय के लोगों ने भी हिंदी और संस्कृति शिक्षा प्रदान करने हेतु कक्षाएं लगाईं। अब इन विद्यालयों में बढ़ोत्तरी हो रही है, साउथ एशियन हिंदी स्कूल ने दो केंद्र खोले हैं। ऑस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में भी हिंदी को एक विषय के रूप में स्वीकारा गया है और इसका शिक्षण मुख्यधारा के विद्यालयों में कराया जा रहा है। सिडनी के वेस्ट राइट स्कूल में लगभग बीस साल से हिंदी पढ़ाई जा रही है। इसके अतिरिक्त पांच अन्य विद्यालयों में भी हिंदी पढ़ाई जा रही है। वर्ष 2007 में भारतीय सरकार के सौजन्य से माला मेहता के बाल भारती स्कूल ने एशिया पैसिफिक हिंदी सम्मलेन का आयोजन किया।

हिंदी समाज की डा. शैलजा चतुर्वेदी ने नब्बे के दशक में सांस्कृतिक कार्यक्रम और कवि सम्मलेन आयोजित किए जिसमें अशोक 'चक्रधर' और 'नीरज' जैसे कवियों को सिडनीवासी सुन सके। हिंदी समाज ने तीन वर्ष 'चेतना' नाम की साहित्यिक पत्रिका भी प्रकाशित की।

2000 के बाद लेखिका, कवियत्री रेखा राजवंशी भारतीय ऑस्ट्रेलियाई साहित्य और कला संस्था ने हिंदी के कई कार्यक्रम आयोजित किए जिसमें डॉ. कुंवर बेचैन, अशोक 'चक्रधर', खुशबीर सिंह 'शाद' के काव्य पाठ के अलावा सिडनी यूनिवर्सिटी में हिंदी सम्मलेन का आयोजन भी सम्पन्नित है। इसी संस्था ने 2008 में युवा लोगों को प्रोत्साहन के लिए कविता प्रतियोगिता का आयोजन भी किया।

इसी तरह मेलबोर्न विक्टोरिया में भी विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज के अंतर्गत कई वर्षों से हिंदी शिक्षण कराया जा रहा है। हिंदी के विकास में डॉ. दिनेश श्रीवास्तव ने बहुत योगदान दिया। वहां भी सप्ताहांत में स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। अब रेंजबैंक पब्लिक स्कूल के अतिरिक्त अन्य स्कूलों में भी हिंदी मुख्यधारा से जुड़ी है। इसके अतिरिक्त मेलबोर्न के कवि सुभाष शर्मा और हरिहर झा कई वर्षों से साहित्य संध्या का आयोजन करते रहे हैं।

ऑस्ट्रेलिया के दो विश्वविद्यालय हिंदी पढ़ाते हैं। पहला मेलबोर्न का ला ट्रोब विश्वविद्यालय, जहां डा. इयान वुल्फोर्ड हिंदी शिक्षण करते हैं। डॉ. इयान वुल्फोर्ड ने अक्टूबर 2017 में ला ट्रोब यूनिवर्सिटी में हिंदी सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें ऑस्ट्रेलिया के हिंदी विद्वानों और साहित्यकारों के अतिरिक्त भारत से भी मृणाल पांडे और अदिति माहेश्वरी आमंत्रित थे।

ला ट्रोब के अतिरिक्त दूसरा विश्वविद्यालय हिंदी पढ़ा रहा है वह है ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी। पहले वहां डॉ. रिचर्ड बार्ज हिंदी पढ़ा रहे थे परंतु अब डॉ. पीटर फ्रीडलैंडर हिंदी के प्रवक्ता हैं। ऑस्ट्रेलिया की राजधानी कैनबरा में भी कुछ सामुदायिक विद्यालयों में हिंदी की कक्षाएं लगाई जाती हैं। वहां के कवि किशोर नंगरानी हिंदी कवि सम्मेलनों का आयोजन करते रहे हैं। कैनबरा के डॉ. पीटर फ्रीडलैंडर के प्रयासों से कैनबरा में 2015 में पहली राष्ट्रीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन हुआ, जिसमें विविध राज्यों के प्रमुख लोगों ने हिस्सा लिया।

अन्य शहरों में पर्थ और ब्रिस्बेन मुख्य हैं। पर्थ में हिंदी समाज के माध्यम से अनेकों हिंदी के कार्यक्रम आयोजित किए जाते रहे हैं और हिंदी शिक्षण का कार्य भी किया जाता है। कवि सम्मेलनों और काव्य पाठ का भी आयोजन होता है। ब्रिस्बेन में अभी हाल में ही कुछ लोगों के प्रयासों से साहित्यिक गतिविधियां आयोजित की जा रही हैं। अब तो न्यू कासल, वूलूनगांग, सेंट्रल कोस्ट, एडिलेड आदि विविध शहरों में भी हिंदी शिक्षण और साहित्यिक गतिविधियां होती रहती हैं।

ऑस्ट्रेलिया के कवियों के दो काव्य संकलन प्रकाशित हुए। पहला काव्य संग्रह ‘बूमरेंग-ऑस्ट्रेलिया से कविताएं’ 2010 में रेखा राजवंशी के संपादन और मेलबोर्न के सुभाष शर्मा और पर्थ के प्रेम माथुर के सह संपादन में किताबघर से प्रकाशित हुआ।

हिंदी और उर्दू के कवियों का दूसरा द्विभाषी काव्य संकलन ‘गुलदस्ता’ भारतीय विद्या भवन के सौजन्य से प्रकाशित हुआ जिसका संपादन कवि अब्बास रजा अल्वी और भारतीय विद्या भवन के अध्यक्ष गंभीर वत्स ने किया।

इसके अतिरिक्त अनेकों कवियों और लेखकों की पुस्तकों के प्रकाशन भी हुए। मेलबोर्न के अंग्रेजी समाचार पत्र साउथ ‘ईस्ट एशिया टाइम्स’ में दो पृष्ठ का ‘हिंदी पुष्प’ बराबर प्रकाशित हो रहा है। सिडनी के समाचारपत्र ‘इंडियन डाउन अंडर’ और ‘फिजी टाइम्स’ भी हिंदी का एक पन्ना प्रकाशित करते हैं। दो हिंदी के अखबार ‘हिंदी गौरव’ और ‘हिंद एक्सप्रेस’ भी अल्प समय के लिए प्रकाशित हुए, परंतु लोगों की रुचि और वित्तीय सहायता के अभाव में उन्हें प्रकाशन बंद करना पड़ा। अब अंतर्राजि का जमाना है तो बहुत से लोग सोशल मीडिया के द्वारा अपनी साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित करते हैं। साहित्य ऑस्ट्रेलिया वेबसाइट में इन पंक्तियों की लेखिका ने भी कई कवियों की रचनाएं प्रकाशित की हैं। ऑस्ट्रेलिया के लगभग सभी शहरों में हिंदी रेडियो स्टेशन चल रहे हैं और हिंदी फिल्मों का भी निर्माण हो रहा है व हिंदी के नाटकों का भी मंचन किया जा रहा है।

सार यही है कि जैसे-जैसे हिंदी भाषी भारतीय प्रवासियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है वैसे-वैसे हिंदी संबंधित गतिविधियां भी बढ़ रही हैं। शिक्षण हो या साहित्य सृजन, फिल्में हों या नाटकों का मंचन हिंदी की स्थिति सुधर रही है। ऑस्ट्रेलिया के भारतवर्षियों के लिए सबसे बड़ी चुनौती यही है कि अगली पीढ़ी इससे कैसे और कितना जुड़ेगी और अपने वंशजों तक पहुंचाएगी।



मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

प्रह्लाद रामशरण

‘हिंद महासागर’ के दक्षिण-पश्चिम में अवस्थित मॉरीशस गणराज्य को ढूँढ़ने वाले पुर्तगाली नाविक थे, जिन्होंने 16वीं सदी के आरंभ में इस निर्जन द्वीप का पता लगाया था। इसी सदी के अंत में डचों ने इसे अपना उपनिवेश बनाया और उनका शासन 1710 तक चला, फिर वे वटिविया चले गए। 1715 में फ्रेंच उपनिवेशवादियों का आगमन हुआ। उन्होंने अफ्रीकी और मेडागास्कर से भारी तादाद में दासों को लाकर इस निर्जन द्वीप को आबाद किया। 1810 में अंग्रेजों ने इस पर अपना अधिकार जमा लिया। उन्होंने 1833 में दासों को मुक्त किया किंतु देश के चीनी उद्योग की रक्षा हेतु, उन्होंने 1834 से शर्तबंद भारतीय कामगारों को भारी तादाद में लाकर इस देश का कायाकल्प किया। 1900 तक इस देश के भारतवंशी प्रजा की स्थिति अत्यंत दयनीय रही।

1901 में मोहनदास करमचंद गांधी अपने परिवार सहित, दक्षिण अफ्रीका से भारत लौट रहे थे। उनका जहाज 18 दिनों तक यहां रुका था। गांधी ने भारतवंशियों की दयनीय स्थिति देखी। छह साल बाद, उन्होंने बड़ौदा के बैरिस्टर मणिलाल डॉक्टर को यहां भेजा। मणिलाल डॉक्टर ने 1907 से 1911 तक यहां रहकर भारतवंशियों के स्वत्व की रक्षा की और उनमें जन-चेतना-जागरण के लिए संघर्ष किया। इसी संघर्ष के अंतर्गत, उन्होंने ‘हिंदुस्तानी’ नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन चालू किया। आरंभ में यह अंग्रेजी-गुजराती में निकलता था और बाद में यह हिंदी-अंग्रेजी में निकलने लगा। इस तरह से उन्होंने ‘हिंदुस्तानी’ समाचार पत्र के जरिए, मॉरीशस में ‘हिंदी आंदोलन’ का सूत्रपात देश को 1968 और भारतवंशियों के हृदय में हिंदुत्व की चेतना और हिंदी भाषा की गरिमा की अनुभूति जगाई थी।

मणिलाल डॉक्टर के चार वर्षीय संघर्ष के परिणामस्वरूप मॉरीशस के भारतवंशियों में नवजागरण का आना स्वाभाविक था। इन्हीं के प्रयत्न से मॉरीशस में आर्य समाज का सुदृढ़ीकरण संभव हो पाया था। 1900 में जन्मे डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने मणिलाल डॉक्टर और आर्य समाज के कार्यों से प्रभावित होकर, भारतवंशियों का नेतृत्व किया और काफी लंबे समय तक संघर्ष करके देश को 1968 में स्वतंत्र किया। 1991 में अनिरुद्ध जगन्नाथ ने इसे गणराज्य बनाया। 1976 में द्वितीय और 1993 में चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस में हो चुके हैं। इस साल 18 से 20 अगस्त, 2018 तक पुनः मॉरीशस में ग्यारहवां विश्व हिंदी सम्मेलन होने जा रहा है।

मणिलाल डॉक्टर के ‘हिंदुस्तानी-पत्र’ की विशेषता

मणिलाल डॉक्टर एम.ए., एल.एल.बी. 11 अक्टूबर 1907 को मॉरीशस आए। यहां आते ही

उन्होंने न्यायालयों में भारतवर्षी प्रजा का बचाव शुरू किया। वे भारतवर्षियों के हित और उनके कल्याण की बातें सोचा करते थे। उनकी पहचान के लिए उन्होंने ‘हिंदुस्तानी’ नामक पत्र का प्रकाशन 15 मार्च 1909 से शुरू किया। पत्र के प्रथम पृष्ठ पर आदर्श वाक्य था ‘व्यक्ति की स्वतंत्रता! मनुष्य का भाईचारा!! जातियों की समानता!!!’ इससे पता चलता है कि मणिलाल डॉक्टर फ्रांस की जनक्रांति-घोषणा ‘स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा’ से प्रभावित था और इसी के जरिए, वे मौरीशस के भारतवर्षियों की सापूहिक और राजनीतिक जीवन में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के भाव को समावेश कराना चाहते थे।

‘हिंदुस्तानी’

आरंभ में ‘हिंदुस्तानी’ का प्रकाशन अंग्रेजी-गुजराती में होता रहा और बाद में इसे अंग्रेजी-हिंदी में परिणत कर दिया गया था किंतु यह बताना असंभव है कि 1910 के किस तारीख से ‘हिंदुस्तानी’ के अंक में हिंदी का प्रयोग किया गया था, क्योंकि इस समाचार पत्र की फाइल, जो 1909 से 1913 तक निकलती रही, न हमारे अभिलेखागार में और न अन्यत्र उपलब्ध है किंतु सौभाग्य से मौरीशस के राष्ट्रीय अभिलेखागार में ‘हिंदुस्तानी’ के केवल दो अंक सुरक्षित हैं। उसका प्रथम अंक 15 मार्च, 1909 का अंग्रेजी-गुजराती में और दूसरे अंक की तिथि है 2 मार्च 1913, जो अंग्रेजी-हिंदी में है। यह भी संयोग है। दोनों उपलब्ध अंक साप्ताहिक हैं और दोनों का प्रकाशन-माह है, मार्च का महीना। यह भी दुख की बात है कि ‘दैनिक हिंदुस्तानी’ का अंक अब तक अनुपलब्ध है किंतु इससे, इसके अस्तित्व पर संदेह नहीं किया जा सकता। यह इसीलिए कि इसके दैनिक होने का प्रमाण तत्कालीन फ्रेंच समाचार पत्रों में तथा सरकारी दस्तावेजों में है, विशेषकर ‘मौरीशस उपनिवेश की नीली पुस्तक’ आदि में ‘हिंदुस्तानी’ दैनिक पत्र का ज्ञान महात्मा गांधी को था, तभी उन्होंने दक्षिण अफ्रीका से निकलने वाले अपने पत्र में इसकी चर्चा की थी।

‘हिंदुस्तानी’ दैनिक का प्रकाशन करके मणिलाल डॉक्टर ने मौरीशस में 1773 से प्रकाशित प्रथम फ्रेंच पत्र ‘आनोस ऑफिस’ और 1832 से प्रकाशित ‘सेरनेएं’ दैनिक, जो स्थानीय गोरे जर्मीदारों और फ्रेंच उपनिवेशवासियों द्वारा प्रकाशित होता था, को चुनौती दी थी। 1773 से 1954 के बीच प्रकाशित फ्रेंच और अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं की संख्या 606 बताई जाती है। इसमें 1909 से 1954 के बीच प्रकाशित भारतीय भाषाओं के पत्रों की संख्या 23 बताई गयी है, जिनमें हिंदी पत्रिकाओं की संख्या 17, तमिल की 3, गुजराती की 2 और उर्दू की एक बताई जाती हैं।

पं. आत्माराम विश्वनाथ ने स्वलिखित ‘मौरीशस के इतिहास’ में कहा है- ‘‘हिंदुस्तानी’ ने यहां के गोरे जर्मीदारों में हाहाकार मचा दिया। मणिलाल डॉक्टर के अनेक लेख तेजस्वी और प्रभावशाली हुआ करते थे। वे पक्षपात रहित थे, चाहे धर्म, चाहे राजनीति हो, यूरोपियन या भारतीय हो। उनका चाबुक सब पर बराबर चलता था। इसमें संदेह नहीं कि उनके लेख, देशाभिमान, जातीय उन्नति, भारतीय प्रजा का कर्तव्य, उनकी वर्तमान (दयनीय) स्थिति, उनकी उन्नति के उपाय, धर्मरक्षा तथा राजनीति में उनका स्थान आदि विषयों पर केंद्रित होते थे। वे भारतीय प्रजा में जातीय स्वाभिमान और आत्मविश्वास पैदा करने और उनके जीवन में तथा उनके विचारों में परिवर्तन एवं उनकी स्वतत्वों की रक्षा के लिए ही ‘हिंदुस्तानी’ समाचार पत्र का प्रकाशन किया था।’

‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ का जन्म

पं. आत्माराम विश्वनाथ के मतानुसार, आर्य समाज पोर्ट लुई का जन्म सन् 1910 में मणिलाल डॉक्टर की उपस्थिति में हुआ था। उसके एक साल बाद अर्थात् 1 जून, 1911 से ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ का जन्म हुआ था। ओगुस्त तूर्से और एच. आदोल्फ इतिहासकारों के मतानुसार, यह पाक्षिक पत्र था। यह अंग्रेजी-हिंदी में निकलता था। शुरू में इसके संपादक थे, खेमलाल लाला, जो स्थानीय आर्य समाज के पितामह थे। उनके अस्वस्थ हो जाने के बाद और अवसान होने पर स्वामी स्वतंत्रानंद ने लगभग दो वर्षों तक इसका संपादन कार्य संभाला था। यह पत्र 1916 में बंद हो गया।

‘द ओरियन्टल गजट’

जिस आर्य समाज आंदोलन के जरिए, बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से देश के भारतवर्षियों में नवजागरण आया था, उसी धार्मिक आंदोलन के जरिए इस देश में हिंदी आंदोलन एवं हिंदी पत्रकारिता का सूत्रपात संभव हो पाया था। यह रोचक तथ्य है कि शुरू से ही मॉरीशस के सनातनी धर्मावलंबी भाइयों ने एक ओर आर्य समाज आंदोलन का जबर्दस्त विरोध किया था तो दूसरी ओर उन्होंने मणिलाल डॉक्टर की प्रगतिवादी विचारधारा का भी प्रतिरोध किया था। यही नहीं उन्होंने ‘हिंदुस्तानी’ पत्र और ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ के समकक्ष ‘द ओरियन्टल गजट’ का प्रकाशन मार्च 1912 से शुरू किया था। इसके संस्थापक थे रामलाल तिवारी, जो देश के गोरे पूँजीपतियों के साथ और उनके हक में कार्य करते थे।

दो सफल संपादक

मणिलाल डॉक्टर के बुलाने पर, पूना, भारत से पं. आत्माराम विश्वनाथ ‘हिंदुस्तानी’ के संपादन के लिए 1912 के अंत में मॉरीशस आए। इसी तरह से मणिलाल डॉक्टर के आंदोलन से प्रभावित होकर, युवा काशीनाथ किष्टो 1911 में उच्च शिक्षा के लिए लाहौर गए और शिक्षा प्राप्त करके 1915 में मॉरीशस लौटे। पं. आत्माराम विश्वनाथ जहां महाराष्ट्री थे, वहीं पं. काशीनाथ किष्टो, बंगाली, किंतु दोनों हिंदी के विद्वान थे और पत्रकारिता में दोनों की रुचि थी। इन दोनों विद्वानों ने प्रथम विश्व युद्ध के वर्षों में इस देश के भारतवर्षियों का नेतृत्व किया था और इन्हीं के कार्यों की बढ़ाव आंदोलन, मॉरीशस में हिंदी आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता का भावी स्वरूप निखरा था।

मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता का पुनरुत्थान

सन् 1920 से मॉरीशस में हिंदी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के पुनरुत्थान की सार्थकता की अनेक दलीलें दी जा सकती हैं। 1916 से 1920 तक प्रवास में हिंदी की कोई पत्र-पत्रिकाएं नहीं निकलीं, किंतु इसी बीच इस देश के प्रथम हिंदू वैरिस्टर रामखेलावन बुधन का आगमन हुआ। ये विलायत जाने से पहले आर्य समाज के सदस्य थे। 1915 में लंदन में इनकी भेंट महात्मा गांधी से हुई थी। इनके जीवन पर महात्मा गांधी के के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा। यह 1943 में इन्होंने अंग्रेजी में महात्मा गांधी के जीवन-संघर्ष पर कोई डेढ़ सौ पृष्ठों का ग्रंथ लिख डाला था, जिसका नाम था ‘द स्पीरिचुअल ट्राइम्प अव गांधी महाराज’।

‘मॉरीशस इंडियन टाइम्स’ दैनिक का प्रकाशन

आर.के. बुधन और कौलेसर सिंह, दोनों रोज हील शहर के रहने वालों ने 6 सितंबर, 1920 से ‘मॉरीशस इंडियन टाइम्स’ एक द्विभाषी दैनिक को जन्म दिया। मणिलाल डॉक्टर के ‘हिंदुस्तानी’

के बाद यह भारतवंशियों का दूसरा समाचार पत्र था। इस दैनिक के कुछ अंक जब मणिलाल डॉक्टर के पास फिजी भेजे गए, तब भारतवंशियों के चिंतक मणिलाल डॉक्टर बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि उनकी दृष्टि में इस देश के भारतीयों ने काफी प्रगति की थी और तब उन्होंने वहीं से इनको अपना आशीर्वाद दिया था।

‘मॉरीशस इंडियन टाइम्स’ एक राजनीतिक पत्र था जो अंग्रेजी-फ्रेंच और हिंदी में निकलता था। इसके अंग्रेजी-फ्रेंच विभाग के संपादक थे एच. द्वारका और हिंदी विभाग के पं. रामअवध शर्मा। इस पत्र की भाषा अपरिष्कृत थी, क्योंकि उस समय हिंदी, अंग्रेजी और फ्रेंच के जानने वाले भारतवंशी प्रजा ने बहुत कम साक्षर लोग थे। इस पत्र को बंद होने से रोकने के लिए संपादक ने जुलाई 1924 के अंतिम दो अंकों में भारतवंशी जनता से अपील करते हुए, उस पत्र की ‘दुर्घागौ’ और ‘वृद्ध माता’ से तुलना की थी, परंतु इसका कोई लाभ नहीं हुआ और पत्र अगस्त 1924 में बंद हो गया।

‘मॉरीशस मित्र’ का जन्म

1920 से मध्य में स्थानीय भारतवंशियों के बीच एक अन्य नेता का आविर्भाव हुआ था। वे और कोई नहीं, देश के लखपति राजकुमार गजाधर थे अतः उन्हीं के प्रयत्न से 26 अगस्त 1924 से हिंदी जगत में एक दूसरे दैनिक समाचार पत्र ‘मॉरीशस मित्र’ का आगमन हुआ। यह भी राजनीतिक पत्र था और इसका प्रकाशन अंग्रेजी, फ्रेंच और हिंदी में होता था। इसके प्रथम संपादक पं. रामअवध शर्मा थे। पं. मुक्ताराम अंग्रेजी-फ्रेंच के संपादक थे और बाद में हिंदी विभाग का कार्य लक्षण सिंह संभालते थे। इस पत्रिका की भाषा और शैली परिष्कृत थी। इसमें प्रेरित पत्र कालम के अंतर्गत, आर्य समाज की खूब आलोचना प्रकाशित की जाती थी।

‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ का पुनरागमन

1924 में पं. बेणीमाधव सतिराम भारत से और 1926 में डॉ. झागरु शिवगोविंद फ्रांस से उच्च शिक्षा लेकर लौटे और उनके आगमन से आर्य समाज आंदोलन का पुनरुत्थान हुआ था। अतः उग्र धर्म प्रचारक-पत्रकार, पं. काशीनाथ किष्टो की देख-रेख में आर्य परोपकारिणी सभा ने 17 अक्टूबर, 1924 से ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ का पुनः प्रकाशन शुरू किया था। फरवरी 1925 में स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्म शताब्दी मनायी गयी थी। उसी अवसर पर ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ का एक सुंदर विशेषांक ‘शताब्दी अंक’ नाम से प्रकाशित किया गया था। यह मॉरीशस में प्रकाशित प्रथम पुस्तकाकार विशेषांक था। इस में पं. आत्माराम विश्वनाथ, पं. रामअवध शर्मा, पं. काशीनाथ किष्टोर और वानप्रस्थी मेहता जैमिनि आदि के लेख छपे हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के जन्म शताब्दी महोत्सव के समय विष्णु दयाल भाइयों का आर्यपरोपकारिणी सभा में प्रवेश हुआ था, और 1926 में स्वामी विज्ञानानंद के आगमन के बाद से आर्य परोपकारिणी सभा में दरार पड़ गयी थी। पं. गया सिंह रामखेलावन सिंह, पं. काशीनाथ किष्टो और छत्तर मास्टर आदि सदस्यों को सभा से अलग कर दिया और ये एक अन्य संस्था बनाने के बारे में सोचने लगे।

‘आर्यवीर पत्रिका’ : हिंदी पत्रकारिता का गौरव

1925 में आर्य समाज के अहम महोत्सव (स्वामी दयानन्द जन्मशती) के बाद स्थानीय आर्य समाज में एक समानांतर संस्था की स्थापना के बाद, मॉरीशस आर्य समाज संगठन का कमज़ोर पड़ना

स्वाभाविक था। तत्कालीन परिस्थितियों से मजबूर होकर, आर्य समाज के आदि काल के सदस्यों ने 1927 में ‘आर्य प्रतिनिधि सभा’ की स्थापना की और पं. काशीनाथ किष्टो को एक और साप्ताहिक पत्र स्थापित करने का भार सौंपा गया।

इसी दशक में कुछ पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन अल्प समय तक हुआ था। सोमदत बखोरी के अनुसार ‘अलंकारिक’ का प्रकाशन 1926 में हुआ था, जिसकी सूचना ‘मॉरीशस मित्र’ के 12.3. 1926 अंक में छपी थी। यह पत्र पं. रामलखन शर्मा द्वारा संपादित हुआ था। इसी प्रकार से 1930 में पं. गिरजानंद ने हिंदी भाषा में ‘वसंत’ नाम की पत्रिका के कुछ अंक प्रकाशित करवाए थे किंतु इन पत्र-पत्रिकाओं की भी कोई प्रति उपलब्ध नहीं है।

अतः 3 मई, 1929 से ‘आर्यवीर’ साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरंभ किया गया। इसके संस्थापक- संपादक थे, आर्य समाज के आदि प्रचारक पं. काशीनाथ किष्टो। इनके द्वारा संपादित पत्र, शुरू में ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ रही और बाद में ‘आर्यवीर’ जिसकी भाषा-शैली परिष्कृत होती थी। इनके संपादकीय का विषय मनुष्य के समग्र जीवन के विभिन्न पहलुओं पर आधारित होता था। ये क्रांतिकारी सुधारक थे और सामाजिक बुराइयों पर जबर्दस्त प्रहार करते थे। ये गरीबी, अशिक्षा और अंधविश्वास को जड़ से उखाड़ देना चाहते थे।

‘सनातन धर्मार्क’ का प्रकाशन

मॉरीशस देश के सनातन धर्मावलंबी भाइयों द्वारा ‘सनातन धर्मार्क’ का प्रकाशन 1933 से शुरू किया गया। इसके संपादक थे निर्भीक हिंदी के विद्वान नरसिंह दास। यह साप्ताहिक पत्र था हो अंग्रेजी, फ्रेंच और हिंदी में पुस्तकाकार निकलता था। यह पत्र हमेशा आर्य समाज के सिद्धांतों का खंडन-मंडन करता था इसीलिए, ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ और ‘आर्यवीर’ में इस पत्रिका के प्रत्युत्तर में उग्र समालोचनात्मक लेख छपते रहते थे। लगभग एक दशक तक ‘सनातन धर्मार्क’ का प्रकाशन होता रहा और 1942 में बंद हो गया किंतु दोनों वर्गों में इस संघर्ष ने इस देश के भारतवर्षियों को सजग किया और उन्हें धर्म-कर्म के मामले में आत्म-संशोधन का पाठ पढ़ाया। उनमें राजनीतिक चेतना जगाई। उक्त संघर्ष का बुरा प्रभाव इसीलिए कि काल-क्रम से प्रायः समस्त सनातनी पत्रों का प्रकाशन बंद हो गया, जबकि आर्य समाज की दोनों पत्रिकाएं सफलतापूर्वक प्रकाशित होती रहीं। यहीं नहीं 1942 में सनातन धर्मार्क के बंद हो जाने पर भी ‘जागृति’ और ‘आर्यवीर’ साप्ताहिक-पत्र 1950 तक बराबर निकलते रहे।

शुरू से ही पत्रकारिता के क्षेत्र में आर्य समाजियों की व्यवस्था सनातनियों से अच्छी होती थी। 1946 में पैडिट लक्ष्मी नारायण चतुर्वेदी ने वर्तमान पत्रों की दुर्दशा उपशीर्षक के अंतर्गत लिखा था- ‘इस समय इस प्रवास में जो पत्र-पत्रिकाएं निकल रही हैं, उनमें सबसे पुराना ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ दूसरा ‘आर्य वीर’, तीसरा ‘सनातन धर्मार्क’ हैं। ये तीनों धर्म के नाम पर आठ-आँसू गिराते हैं। ‘आर्य पत्रिका’ और ‘आर्यवीर’ संस्थाओं की सहायता नहीं पाते तो ग्राहकों को मुंह दिखाना असंभव हो जाता।’

हस्तलिखित साहित्यिक पत्रकारिता

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक मॉरीशस में राजनीतिक एवं धार्मिक विषयों पर चार-चार समाचार पत्र और पत्रिकाएं निकाली जाती रहीं किंतु सही तौर पर एक भी साहित्यिक पत्र का जन्म अभी नहीं हुआ था। इस कमी की पूर्ति करने वाले थे, मोंताई लोंग स्थित हिंदी प्रचारिणी सभा के

मुख्य संचालक- सूरजप्रसाद मंगर भगत। उन्हीं की पहल पर हिंदी प्रचारिणी सभा ने जनवरी 1936 से 'दुर्गा' नामक हस्तलिखित साहित्यिक मासिक को जन्म दिया। इस में संपादकीय के अलावा सामयिक लेख, कहानी, कविता, पुस्तक, समीक्षा, सांस्कृतिक समारोहों की रपट, एकांकी, जीवनी, भेट-वार्ता आदि प्रकाशित होते थे। इसका अपना ऐतिहासिक महत्व था। इस मासिक ने दर्जनों नवोदित लेखकों को साहित्य सृजन की दिशा में मार्गदर्शन किया। यह दो वर्षों तक चला।

वर्ष 1980 में जब वर्तमान लेखक इसमें शोध करने गए, तब उन्हें केवल 1936 के दो फाइल मिले। वर्षों बाद पता चला कि इसका तीसरी फाइल प्रदर्शनी हेतु नई दिल्ली भेजी गयी थी और वह वहीं रह गई थी किंतु सौभाग्य से नई दिल्ली वाली फाइल, मित्रवर कमल किशोर गोयनका के हाथ लगी और उसे पुनः मॉरीशस लाया जा सका। इस हस्तलिखित पत्रिका का उपयोग हिंदी प्रचारिणी सभा के छात्र, अध्यापक और मॉरीशस के गिने-चुने विद्वानों द्वारा होता था। इस में शुरू से ही पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज' की कविताएं प्रकाशित होती रहीं। इसी में नवोदित कवि ब्रजेंद्र कुमार भगत की दर्जनों कविताएं 'कुमार' नाम से प्रकाशित हुई हैं। इसके संपादक थे सूरज प्रसाद मंगर भगत, किंतु वे 'अंगारे' उपनाम का प्रयोग करते थे। दिसंबर 1936 में प्रकाशित अंक में बताया गया है कि पंडित आत्माराम विश्वनाथ 'दुर्गा' परिवार से आ मिले हैं।

पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़

1909 से 1939 तक मॉरीशस की पत्र-पत्रिकाओं ने जो आयाम तय किया था, उसका निखार सन चालीस में देखने को आया। इसके कारण थे, 1939 तक इस देश के भारतवंशी बुद्धिजीवी दो वर्गों में बंटकर हिंदी पत्रकारिता की दिशा में कार्यरत थे। आर्य समाजियों और सनातनियों के बीच खूब प्रश्नोत्तर होते थे। लंबे समय तक दोनों वर्गों के बीच के वैचारिक संघर्ष का एक दूसरे पर अच्छा व बुरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। एक वर्ग सजग था तो दूसरा वर्ग भी कालक्रम से सजग होता गया। एक वर्ग जहां धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में सर्वांगीण सुधार का हिमायती था, तो दूसरा वर्ग सुधार का नाम लेता तो था, पर वह अपने परंपरावादी सिद्धांतों से तिल भर भी हटना नहीं चाहता था। ऐसी विषम परिस्थिति में भारतवंशियों के बीच तीन बुद्धिजीवियों का आगमन हुआ, जिन्होंने दोनों वर्गों के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न किया किंतु वे इस प्रयत्न में असफल ही नहीं, आपस में एक दूसरे के बैरी बन गए।

भारतवंशी प्रजा के तीन नेतृत्वकर्ता

डॉ. शिवसागर रामगुलाम विलायत से डॉक्टरी शिक्षा पाकर 1935 में स्वदेश लौटे। डॉक्टरी के साथ-साथ उन्होंने सामाजिक सेवा को अपनाया। 1940 से वे पोर्ट लुई की नगरपालिका में और विधानसभा में भारतवंशियों का प्रतिनिधित्व करने लगे। वे देश की राजनीति में कुछ मित्रों के साथ सक्रिय भाग लेने लगे। 1940 में थी, उन्होंने मणिलाल डॉक्टर के रास्ते पर चलकर 'एडवांस' नामक अंग्रेजी-फ्रेंच दैनिक पत्र को जन्म दिया तभी से वे भारतवंशियों के नेतृत्व में अत्यधिक रुचि लेने लगे थे।

जयनारायण राय इलाहाबाद से एम.ए.,एल.एल.बी. की डिग्री लेकर 1937 में स्वदेश लौटे। वे हिंदी में कविताएं, लेख लिखने लगे। हिंदी प्रचारिणी सभा के साथ जुड़कर हिंदी की सेवा करने लगे। 1948 में जब डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने हिंदी में 'जनता' पत्र निकाला, तब जयनारायण राय उसके प्रथम संपादक बने। 1941 में जयनारायण राय ने 'जीवनसंगिनी' नामक ग्रंथ लिखकर, स्थानीय

नाट्य साहित्य की नींव रखी।

ठीक वैसे ही पं. वासुदेव विष्णुदयाल कलकत्ता से एम.ए. करके, दिसंबर 1939 को स्वदेश लौटे। भारत जाने से पहले विष्णुदयाल बंधु आर्य समाज के मंच से कार्य करते थे किंतु पंडित वासुदेव के लौटने पर, ये और इनके अनुज सुखदेव विष्णुदयाल ने आर्य समाज से कटकर, अपना स्वतंत्र कार्यक्षेत्र का निर्माण किया। इस अभियान में दोनों भाई, सुखदेव और वासुदेव, डॉ. शिवसागर रामगुलाम, आर्य समाज और जयनारायण राय से अलग-थलग होकर कार्य करने लगे। इन्हीं दोनों भाइयों ने 1948 में हिंदी में ‘जमाना’ पाक्षिक पत्र अंग्रेजी, फ्रेंच और हिंदी में निकालना शुरू किया। यह एक पारिवारिक पत्र था और इसमें दोनों भाइयों के विचारों को प्राथमिकता दी जाती थी।

‘जागृति’ एवं अन्य अल्पकालिक पत्रिकाएं

आर्य परोपकारिणी सभा का मुख पत्र था ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’, जो 1924 से निकलता आ रहा था। 1939 में कुछ अज्ञात लोगों के दबाव में आकर, सभा को उक्त पत्र का नाम बदलने पर विवश होना पड़ा। इसकी सूचना जब दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भवानीदयाल संन्यासी को हुई, तब उन्होंने क्षोभ में आकर इसकी आलोचना की। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ का पुनः नामकरण किया गया और ‘जागृति’ नाम से उसका प्रकाशन होने लगा। 1939 में ही द्वितीय विश्व युद्ध के छिड़ने पर, कागजों के आयात पर पाबंदी लगा, जिसके कारण दोनों आर्य समाजी पत्रों ‘जागृति’ और ‘आर्यवीर’ का संयुक्त प्रकाशन ‘आर्यवीर- जागृति’ नाम से 1950 तक होता रहा।

सन् 1940 के दशक में आर्य समाजी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएं ‘आर्यवीर-जागृति’, ‘जनता’ और ‘जमाना’ के अतिरिक्त, कुछ और हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहा। इनमें अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं का आकार छोटा और कुछ ही पृष्ठों का होता था। ‘मासिक चिट्ठी’, अप्रैल, 1942 से दिसंबर, 1945 तक प्रति सप्ताह और जनवरी, 1946 से जून, 1950 तक मासिक रूप से निकलता रहा। यह हिंदी पत्र सरकारी सूचना विभाग के जनसंपर्क कार्यालय से निकलता था। इसके संपादक थे पं. देवदत्त शर्मा। इसी प्रकार से दूसरा हिंदी साप्ताहिक था ‘सैनिक’ जो 1 जुलाई 1946 से 1 मई 1947 तक, हिंद प्रेस से निकलता रहा। इसी प्रकार से ‘मजदूर’ नाम का पाक्षिक पत्र के कुछ अंक, जुलाई, 1948 में निकलने लगा था और इन दोनों अल्पकालिक पत्रों के संपादक थे बिका बखतवर सिंह।

‘आर्योदय’ हिंदी पत्रकारिता की शान

26 जनवरी, 1950 को भारतीय गणतंत्र समारोह में भाग लेने के लिए, स्वामी स्वतंत्रानंद और मणिलाल डॉक्टर एक साथ मॉरीशस आए थे। समारोह के बाद स्वामी स्वतंत्रानंद ने खंडित आर्य समाज (परोपकारिणी-प्रतिनिधि) की दोनों शाखाओं का एकीकरण किया और ‘आर्य सभा मॉरीशस’ नाम दिया। इसी के परिणामस्वरूप ‘आर्यवीर-जागृति’ को भी ‘आर्योदय’ में परिणत किया। इसका प्रथम अंक 4 दिसम्बर 1950 को निकला था और इसके संपादक थे— पं. आत्माराम विश्वनाथ। इन्हीं के संपादन काल में इस देश के अनेक नवोदित हिंदी लेखक उभरे थे।

18 सितंबर, 1953 से हिंदी का एक अन्य पत्र निकलना प्रारंभ किया था, उसका नाम था ‘वर्तमान’। यह हिंदी साप्ताहिक था और इसका प्रकाशन ज्योति प्रेस से होता था। इसके संपादक थे पं. रामसेवक तिवारी। इसी पत्र में भावी सशक्त लेख मुनीश्वरलाल चिंतामणि के प्रारंभिक लेख

छपे मिलते हैं। धनाभाव और ग्राहकाभाव के कारण 25 जून, 1954 तक निकलकर, यह बंद हो गया।

पंडित मोहनलाल मोहित ने 1955 से 1959 तक ‘दीवाली संदेश’ नामक हिंदी पत्रिका का संपादन किया था। इसमें धार्मिक विषयों के साथ-साथ, कविता, समसामयिक विषयों पर लेख तथा आर्य समाज और महर्षि दयानन्द पर सुलझे हुए लेख होते थे।

1 नवंबर, 1956 से ‘मजदूर’ नाम का पाक्षिक पत्र निकलना प्रारंभ किया। इसके मालिक थे पं. हरिप्रसाद रामनारायण, जो ‘आमालगामेट लेबर एसोसिएशन’ के अध्यक्ष थे। इसके संपादक थे रामसुंदर बालगोविन। यह हिंदी, अंग्रेजी और फ्रेंच में निकलता था। यह देश के मजदूर वर्ग का मुख पत्र था और उन्हीं के हक के लिए क्रियाशील था और 1961 तक निकलता रहा।

साहित्यिक पत्रिकाओं का आविर्भाव

बीसवीं सदी के छठवें दशक तक, मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता के मुख्य प्रसंग होते थे : धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षिक गतिविधियाँ, किंतु विशुद्ध रूप से 1960 तक स्थानीय हिंदी पत्रकारिता ने साहित्यिक पत्रिका का अंजाम नहीं दिया था किंतु पिछले पचास वर्षों में मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता ने एक लंबी यात्रा तय की थी और तब हिंदी भाषा का एक शक्तिशाली माध्यम बन गयी थी। अतः हिंदी के कुछ समर्थकों ने एक साहित्यिक पत्र प्रकाशित करने का विचार किया। यहां यह बताना उचित होगा कि मॉर्ताई लोंग की ‘हिंदी प्रचारिणी सभा’ ने 1936 में ‘दुर्गा’ नामक हस्तलिखित-साहित्यिक पत्रिका निकालकर प्रयोगात्मक अनुभव प्राप्त किया था।

अतः हिंदी प्रचारिणी सभा के ही, मंत्री सूर्य प्रसाद मंगर भगत ने 2 अक्टूबर, 1960 से ‘नवजीवन’ नामक हिंदी के स्वतंत्र पाक्षिक पत्र का प्रकाशन आरंभ किया। इनके सहयोगी थे विक्रमसिंह रामलाल, जो ‘मॉरीशस टाइम’ के भी संपादक थे। वास्तव में यह पूर्ण रूप से साहित्यिक पत्र था। इसका आकार प्रकार ‘एडवांस’ अथवा ‘ले मैरिसियें’ जैसा था। इसी पत्र में मुनीश्वरलाल चिंतामणि, ब्रजेंद्र कुमार भगत, सोमदत्त बखोरी आदि नवोदित लेखक के रूप में उभरे थे। इसमें साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विषयों पर भी लेख प्रकाशित होता था। इसका प्रकाशन 1964 तक चलता रहा। 1961 में इसी पत्र पर ‘लंदन से स्वयंवर’ जैसे व्यंग्य-चित्र सहित ‘ब्लॉक रामायण’ के नाम से एक पैरोडी कविता प्रकाशित हुई थी। इसमें उच्च स्तर की कविताएं, जीवनियाँ और गद्य लेख प्रकाशित होते थे।

पंडित दौलत शर्मा ने 1960 में एक साहित्यिक पत्रिका ‘अनुराग’ का प्रकाशन आरंभ किया था। परंतु कुछ की अंकों के बाद यह बंद हो गया। इस पत्र का भी साहित्यिक महत्व था। इसी समय एक यशस्वी युवक दुर्जन नेपाल ने 29 अक्टूबर 1960 में ‘समाजवाद’ नामक समाचार पत्र को जन्म दिया और इस साप्ताहिक के संपादक थे पं. बेणीमाधव सतिराम। यह राजनीतिक विषयों की चर्चा अधिक और धार्मिक, संस्कृति की चर्चा कम करता था। इसमें भी लेख, कविताएं, कहानी आदि का प्रकाशन होता था। 1963 के चुनाव में दुर्जन नेपाल की हार के बाद यह बंद हो गया।

इसी समय स्थानीय ‘ऑल मॉरीशस हिंद कांग्रेस’ द्वारा एक हिंदी पत्र का प्रकाशन आरंभ किया गया। इसका नाम था ‘कांग्रेस’। यह राजनीतिक पत्र था, किन्तु इसमें साहित्यिक और सांस्कृतिक लेख छपते थे। 1967 के निर्णायक चुनाव में उक्त राजनीतिक दल के समस्त सदस्यों की हार के बाद इसका प्रकाशन बंद हो गया।

‘अनुराग’ साहित्यिक त्रैमासिक का शुभारंभ

वास्तव में 1964 से निकलने वाली पत्रिका थी ‘अनुराग’ जो पोर्ट लुई की हिंदी परिषद के केंद्रीय समिति द्वारा प्रकाशित होती थी। यह सोमदत्त बखोरी की देख-रेख में निकलती थी। इसमें नवोदित लेखकों की कहानियां, कविताएं, एकांकी, शोधमूलक लेख आदि प्रकाशित होते थे। इसी पत्र से अभिमन्यु अनत और प्रस्ताव रामशरण जैसे लेखकों का जन्म हुआ। यह काफी लंबे अर्से तक निकलता रहा। इसमें देश-विदेश के अनेक उच्चकोटि के लेखकों की रचनाएं प्रकाशित होती रहीं। बहुत से बुद्धिजीवियों का मत है कि इसी साहित्यिक-पत्रिका ने स्वातंत्र्योत्तर वर्षों के विपुल साहित्यिक हस्तियों का मार्गदर्शन किया था। यह त्रैमासिक पत्रिका थी। 1977 तक आते-आते छपाई की कठिनाई के कारण पत्रिका के संचालकों का उत्साह मंद पड़ गया और पत्रिका बंद हो गयी।

स्थानीय हिंदी लेखक संघ जिसकी स्थापना 1961 में हुई थी, 1965 से ‘बाल सभा’ नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था। मुनीश्वरलाल चिंतामणि और पं. धर्मवीर घूरा इसके संपादक थे। दो महीनों तक इसका प्रकाशन चला, फिर यह बंद हो गया। काफी वर्षों बाद से इन्द्रदेव भोला इंद्रनाथ की देख-रेख में कभी-कभी इसका प्रकाशन होता रहा है। 1965 से अब तक इसके कोई बारह-पंद्रह अंक निकले हैं। 1971 से 1974 तक हिंदी का साप्ताहिक पत्र ‘हमारा देश’ का प्रकाशन त्रियोले ग्राम से होता रहा। इसके प्रबंधक-संपादक थे विष्णुदत्त मिधु। यह पत्र उन्हीं के अदम्य प्रयास और साहस से निकलता रहा। इसी अवधि में यह पत्र कोई एक सप्ताह तक दैनिक निकलता रहा। इसमें तरह-तरह के लेख, व्यंग, चुटकुले, सांस्कृतिक समाचार, उत्सवों की रपट आदि को प्राथमिकता दी जाती थी।

‘दर्पण’ और ‘आभा’ का उदय

देश के उत्तर प्रांत के प्रसिद्ध गांव, त्रिओले के हिंदी सेवी, छबीलाल बिदेसी, द्वारा संचालित ‘हिंदी अध्यापक संघ’ ने ‘दर्पण’ नाम की त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन 1973 से 1975 तक किया था। इसके संपादक थे-- छबीलाल बिदेसी। यह साहित्यिक पत्रिका थी और नवोदित लेखकों के लेखों को परिष्कृत करके छापती थी। इसी तरह से त्रिओले के प्रसिद्ध रंगकर्मी महेश रामजीयावन की देख-रेख में ‘आभा’ त्रैमासिक का प्रकाशन 1971 से 1974 तक चला था। इसका भी साहित्यिक क्षेत्र में योगदान रहा। ऐसे ही देश के उत्तर के दूसरे गांव पेची राफरे के ‘हिंद उत्थान संघ’ ने ‘प्रभात’ नाम की वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया था जिसके संपादक थे चंद्रदीप जोधन और यह 1976 से 1979 तक प्रकाशित होती रही।

‘प्रकाश’ और ‘वसंत’ का आगमन

बोबासें शहर में स्थित प्रशिक्षण महाविद्यालय के छात्रों ने प्रोफेसर राम प्रकाश की प्रेरणा से ‘प्रकाश’ नाम की साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया था। इसका प्रकाशन अनियमित रहा और 1974 से 1977 तक चला था। इसी शहर में स्थित त्रिवेणी सर्कल द्वारा खेर जगत सिंह की देख-रेख में 1974 में ‘त्रिवेणी’ नाम की साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ था।

इसी तरह से सरकार की सूचना मंत्रालय द्वारा एक हिंदी त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन 1977 से 1979 तक होता रहा। पत्रिका का नाम ‘परिवर्तन’ था। आर्थिक एवं मुद्रण की समस्या के कारण हिंदी परिषद की साहित्यिक पत्रिका ‘अनुराग’ के 1977 में बंद हो जाने पर, उसी वर्ष, अर्थात् 1977

से महात्मा गांधी संस्थान द्वारा ‘वसंत’ मासिक का प्रकाशन चालू किया गया। यह साहित्यिक पत्रिका थी और इसके संपादक अभिमन्यु अनन्त थे, और सहयोगी संपादकों में थे रामदेव धुरंधर और पूजानंद नेमा। साहित्यिक पत्रिकाओं में यह सर्वाधिक समय तक नवोदित रचनाकारों, साहित्यकारों और कलाकारों को पैदा किया है। तब से अब तक इसमें नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, भेंटवार्ता प्रकाशित होते रहते हैं। 1953 से 1973 तक ‘जनता’ साप्ताहिक पत्र का संपादन पं. लक्ष्मीप्रसाद बट्री ने किया था। 1974 में राजेंद्र अरुण इसके संपादक नियुक्त हुए। उन्होंने इसका कायाकल्प किया। राजेंद्र अरुण भारत के एक प्रसिद्ध पत्रकार थे और मॉरीशस में उनकी उपस्थिति ने स्थानीय हिंदी पत्रकारिता को एक नया आयाम दिया था।

आर्य सभा मॉरीशस ने भी अपनी पत्रिका ‘आर्योदय’ का सन् 1970 में नवीनीकरण किया और तभी से इस पत्रिका के विशेषांकों का प्रकाशन पुस्तकाकार किया जाने लगा। आर्य सभा के युवा वर्ग के नेता डॉ. सुदर्शन जगेसर ने ‘वैदिक जनरल’ का प्रकाशन, अंग्रेजी-हिंदी में 1977 से 1979 तक किया था। इसी प्रकार से दयानंद लाल बसंतराय ने हिंद महासभा के तत्वावधान में प्रतिवर्ष ‘शिवरात्रि’ के अवसर पर ‘शिवरात्रि’ नामक विशेषांक का प्रकाशन करवाते रहे। यह विशेषांक 1972 से 1984 तक बराबर प्रकाशित होता रहा।

हिंदी पत्र-पत्रकारिता (1980-1990)

1982 में मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता को एक विकट गत्यारोध की अनुभूति से गुजरना पड़ा था। डॉ. शिवसागर रामगुलाम तत्कालीन प्रधानमंत्री, अपने दल के सभी उम्मीदवारों के साथ आम चुनाव हार गए। वे 42 वर्षों तक विधानसभा के सदस्य रहे, मजदूर दल के नेता बनकर 1968 में देश को स्वतंत्र किया, और तब से 1982 तक प्रधानमंत्री के पद पर कार्यरत रहे। इस लंबे संघर्ष में दैनिक ‘एडवांस’ और ‘जनता’ साप्ताहिक से उनको काफी सहयोग मिला था। 1982 के निर्णायक चुनाव के बाद ‘एडवांस’ और ‘जनता’ बंद हो गए। इसी तरह से हिंदी पत्रकारिता का 1976 के आम चुनाव के बाद प्रथम गतिरोध तब हुआ था जब सुखदेव विष्णुदयाल चुनाव हार गए थे और उसके कुछ समय बाद से ‘जमाना’ का प्रकाशन बंद हुआ था।

अतः 1982 से 1987 तक ‘आर्योदय’, ‘वसंत’, ‘शिवरात्रि’ के अलावा हिंदी की कोई पत्र-पत्रिका नहीं निकली थी। इस खालीपन को ‘मानव सेवा निधि’ ने दूर किया। उसने धनदेव बहादुर के नेतृत्व में एक पूर्ण विकसित हिंदी साप्ताहिक ‘स्वदेश’ का प्रकाशन आरंभ किया था। यह बारह पृष्ठों का पत्र था और 1977 से 1991 तक निकलता रहा। इसके संपादक थे अजामील माताबल और राज हीरामन। इसमें हिंदी साहित्य के प्रायः सभी विधाओं पर रचनाएं प्रकाशित होती थीं। धनाभाव से उत्पन्न संकट के कारण इसका प्रकाशन 1991 में बंद करना पड़ा। इसी प्रकार से ‘सनातन धर्म मंदिर परिषद’ के तत्वावधान में सुरेश रामबरण ने ‘दर्पण’ नामक हिंदी साप्ताहिक का प्रकाशन 1988 से 1990 तक किया था। ऐसे ही मॉरीशस स्थित भारतीय दूतावास ने डॉ. राजेंद्र सिंह कुरावाहा की देख-रेख में ‘भारत-दर्शन’ त्रैमासिक का प्रकाशन 1989 से 1991 तक किया था।

‘इन्द्रधनुष’- हिंदी पत्रकारिता की शान

देश के अनुसंधाता साहित्यकार प्रह्लाद रामशरण ने बोबासें शहर, जहां वे रहते हैं कुछ सहयोगियों के साथ 1988 में ‘इन्द्रधनुष सांस्कृतिक परिषद’ का गठन किया और इसी संस्था के

तत्वावधान में ‘इंद्रधनुष’ साहित्यिक हिंदी पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। शुरुआत से अब तक वे ही इसके संपादक रहे हैं। वास्तव में ‘इंद्रधनुष’ पत्रिका निकालने का मुख्य उद्देश्य था-- स्थानीय हिंदी साहित्य में व्याप्त छदम लेखन का पर्दाफाश। छदम लेखन का अस्तित्व इस देश में सन बीस से सन अस्सी तक रहा है। एक सुनियोजित समुदाय के जरिए छदम लेखन द्वारा, इस देश के सशक्त रचनाकारों, कर्मठ हिंदी सेवियों और सजग साहित्यकारों को विस्मृत के गर्व में डाल दिया जाता रहा है। अतः ‘इंद्रधनुष’ ऐसे ही उपेक्षित एवं विस्मृत हिंदीसेवियों और रचनाकारों के जीवन एवं कृतित्व को प्रकाश में लाने के कार्य का उत्तरदायित्व लिया था। यह पत्रिका शुरू में त्रैमासिक थी और बाद में चलकर द्विवार्षिक बनी। 1988 से 1999 तक यह केवल हिंदी में निकलती थी। पत्रिका में शोध लेख, पुरानी पत्र-पत्रिकाओं की दुर्लभ सामग्री, कहानियां, भेट-वार्ताएं, समालोचना, महिला और बाल जगत की समस्याएं, लोक कथाएं और वर्तमान कवियों की कविताएं, आदि प्रकाशित होती रहीं। इस पत्रिका ने मणिलाल डॉक्टर, पं. आत्माराम विश्वनाथ, सूरज प्रसाद मंगर भगत, जयनारायण राय, श्रीनिवास जगदत्त, आदि पर विशेषांक निकालकर हिंदी जगत को चमत्कृत कर दिया था।

इंद्रधनुष सांस्कृतिक परिषद ने ‘इंद्रधनुष’ पत्रिका को 2000 से त्रिभाषी (हिंदी-अंग्रेजी-फ्रेंच) का जामा पहनाकर, विश्व की हिंदी पत्रकारिता में एक अभूतपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया है। पत्रिका ने डॉ. शिवसागर रामगुलाम पर 254 पृष्ठों का विशेषांक निकालकर मील के पत्थर का काम किया। इसके अतिरिक्त मोहनदास करमचंद गांधी की मॉरीशस यात्रा विशेषांक, रोबर्ट एडवर्ड हार्ट, मोहनलाल मोहित, मालकोम दे शाजाल, पं. काशीनाथ किष्टो, मार्सेल काबों, अनत बिजाधर, दुखी गंगा, श्री अरविन्द, प्रो. रामप्रकाश, डॉ. झगरु शिवगोविन्द, पंडित आत्माराम विश्वनाथ, जान दे लिंगन, लेओविल लोम और डॉ मुनीश्वरलाल चिंतामणि पर उच्च कोटि के विशेषांक का प्रकाशन करके, मॉरीशस के वास्तविक हिंदी साहित्य को प्रस्तुत किया है।

प्राथमिक अध्यापक संघ ने 1990 से ‘आक्रोश’ नामक हिंदी पत्रिका निकालना आरंभ किया। इसका प्रकाशन नियमित रूप से अब तक होता रहा है। राजनारायण गति ने ‘मुक्ता’ नाम की एक बाल पत्रिका का प्रकाशन 1990 से 1992 तक किया था। इसी प्रकार हिंदी प्रचारिणी सभा 1990 से अब तक ‘पंकज’ नाम के त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन करती आ रही है। इसी दशक में हिंदी संगठन ने ‘सुमन’ बाल पत्रिका निकालना आरंभ किया था। महात्मा गांधी संस्थान से एक बाल पत्रिका ‘रिमझिम’ का प्रकाशन किया गया जो अब तक निकल रही है।

डॉ. सरिता बुधु ने अपने पति हरीश बुधु के सहयोग से 2001 में ‘जनवाणी’ साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन शुरू किया। यह सोलह से बीस पृष्ठों का पत्र था। डॉ. सरिता बुधु इसकी संपादिका थीं। जनवाणी में समसामयिक राजनीतिक लेख भी प्रकाशित होते थे। इसमें देश-विदेश के सधे हुए लेखक-लेखिकाओं के लेख होते थे। नवोदित रचनाकारों की कविताएं, शोधमूलक लेख, पुस्तक समीक्षा, इतिहास की झलकियां, कहानी, भेटवार्ता, लोककथाएं इस पर प्रकाशित होती रहीं किंतु देश की राजनीति में चढ़ाव-उत्तार के कारण, इस साप्ताहिक पत्र का अवसान 2006 में हुआ।

‘विश्व हिंदी पत्रिका’ का आविर्भाव

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में मॉरीशस की पावन धरती पर ‘विश्व हिंदी सचिवालय’ जनवरी 2007 के कार्यरत है। सचिवालय के प्रथम महासचिव डॉ. विनोद बाला अरुण रहीं और उप

महासचिव के पद पर डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र रहे। 11 फरवरी, 2008 से सचिवालय का कार्यारंभ किया गया और सचिवालय द्वारा ‘विश्व हिंदी समाचार’ का प्रकाशन मार्च, 2008 से प्रारंभ किया गया। यह त्रैमासिक हिंदी पत्रिका है। इसमें देश-विदेश में हो रही हिंदी की गतिविधियों की ज्ञांकी देखने को मिलती हैं। सचिवालय द्वारा दूसरा महत्वपूर्ण कार्य था ‘विश्व हिंदी पत्रिका’ के प्रवेशांक का प्रकाशन जो दिसंबर 2009 को संपन्न हुआ। विश्व हिंदी सचिवालय के इन दोनों प्रकाशनों ने मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता को सक्षम बनाया है और स्थानीय हिंदी आंदोलन को सुदृढ़ किया है। और अंत में मॉरीशस

वर्तमान समय में जिस देश में 11वां विश्व हिंदी सम्मेलन होने जा रहा है वहां न हिंदी की कोई साप्ताहिक पत्रिका है, न कोई हिंदी का दैनिक समाचार-पत्र। मॉरीशस का समग्र प्रेस जगत छह फ्रेंच दैनिकों और छह फ्रेंच साप्ताहिकों से आप्लावित है। अतः स्थानीय हिंदी पत्रकारिता को केवल ‘आर्योदय’, ‘वसंत’, ‘पंकज’, ‘रिमझिम’, ‘इंद्रधनुष’, ‘आक्रोश’ और ‘विश्व हिंदी पत्रिका’ पर आधारित रहना पड़ रहा है।

मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता के बृहत् परिदृश्य का सर्वेक्षण करके कोई पचास पत्र-पत्रिकाओं के अस्तित्व का पता लगाया गया है। यह इस तथ्य को पुष्टि करता है कि हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं यह इस तथ्य को भी प्रमाणित करता है कि शुरू से आज तक कुछ हिंदी लेखकों ने हिंदी पत्रकारिता को निखारने में काफी सक्रियता और सजगता दिखाई है। अतः ऐसे कुछ नामों का उल्लेख करना अनुचित न होगा, जैसे- मणिलाल डॉक्टर, पं. रामअवधा, पं. काशीनाथ किष्टो, पं. आत्माराम विश्वनाथ, नरसिंह दास, सूरज प्रसाद मंगर भगत, पं. देवीदत्त शर्मा, पं. सुन्दर शर्मा, जयनारायण राय, सोमदत्त बखोरी, पं. मोहनलाल मोहित, पं. वासुदेव विष्णुदयाल, अभिमन्यु अनत, डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि और प्रह्लाद रामशरण आदि।

हिंदी समाचार पत्रों की फाइलों के अवलोकन के बाद बहुत सारे तथ्य सामने आए हैं। पहला यह कि मॉरीशस के समान एक भी भारतेतर देश ऐसा नहीं जहां हिंदी भाषा में इतनी पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुई हैं। दूसरा यह कि मॉरीशस के भारतवंशी लेखकों और पत्रकारों को भारत के उच्चकोटि के समाचार पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाएं प्रकाशित करने का सम्मान प्राप्त है। तीसरा यह कि आर्य समाजी पत्र-पत्रिकाओं के परिदृश्य को देखकर ऐसा लगता है कि उनके मुकाबले में सनातनधर्मी पत्र-पत्रिकाएं सीमित दायरे में प्रकाशित होती रही हैं। चौथा यह कि मॉरीशस में प्रकाशित समस्त पत्र-पत्रिकाओं की कथावस्तु सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विषयों पर अत्यधिक आधारित रही है और राजनीतिक आर्थिक और साहित्यिक पर न्यून रही है।

यद्यपि मणिलाल डॉक्टर ने शुरू-शुरू में एक राजनीतिक पत्र को जन्म दिया था, फिर भी बाद की अधिकांश पत्र-पत्रिकाएं धार्मिक और सामाजिक विषयों का प्रतिपादन करती रहीं। 1920 से 1932 तक इस देश में हिंदी का एक दैनिक पत्र निकलता रहा, जिसमें महात्मा गांधी और पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा चलाए जा रहे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का विवरण प्रचुर मात्रा में दिया जाता रहा और उसका प्रभाव मॉरीशस के भारतवंशियों पर अखंड रूप से पड़ता रहा।

1942 से पूर्व यहां के अधिकांश समाचार पत्र और पत्रिकाएं द्विभाषी व त्रिभाषी होती थीं किंतु बीसवीं शती के चौथे दशक में पूर्ण रूप से हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की नींव डाली गयी थी। अतः प्रथम

हिंदी पत्र ‘भासिक चिट्ठी’ था जो सरकार के सावजनिक कार्यालय द्वारा प्रकाशित होता था। इसी दशक में ‘जनता’ का प्रकाशन शुरू हिंदी में प्रारंभ किया गया था। 1950 के बाद ‘आर्योदय’, ‘दिवाली सन्देश’, ‘वर्तमान’, ‘नवजीवन’, ‘समाजवाद’, ‘कांग्रेस’ आदि पूर्ण रूप से हिंदी के समाचार पत्र निकलते रहे।

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का निखार 1960 और 1970 के बाद संभव हो पाया था। ‘नवजीवन’, ‘समाजवाद’, ‘कांग्रेस’, ‘आभा’, ‘दर्पण’, ‘प्रकाश’, ‘बसंत’, ‘इंद्रधनुष’, ‘पंकज’, ‘आक्रोश’, आदि साहित्यिक पत्रिकाएँ इसका उज्ज्वल प्रमाण हैं। ‘बाल सरवा’, ‘पुक्ता’ और ‘रिमझिम’ का प्रकाशन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि स्थानीय पत्रकारिता ने अनेक मोर्चों पर प्रयोगात्मक कार्य किया है। यही भी देखा गया है कि प्रायः सभी साहित्यिक पत्रिकाओं में महिलाओं के स्तंभ होते हैं, फिर भी आज तक देश में एक भी महिला पत्रिका का प्रकाशन, हिंदी में नहीं हो पाया है।

इन तत्वों को देखते हुए ऐसा लगता है कि इस देश में हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र को अथवा उसके क्षितिज को और विस्तृत करने की गुंजाइश है। यह दुःख के साथ उल्लेख करना पड़ता है कि एक हिंदी दैनिक व साप्ताहिक के अभाव में हिंदी पाठकों को दैनंदिन जीवन में फ्रेंच और अंग्रेजी भाषाओं के समाचार पत्र और पत्रिकाओं के जरिए विभिन्न विषयों की जानकारियां जैसे, विज्ञान, कृषि, उद्योग, खेलकूद आदि का ज्ञानार्जन करना पड़ता है।

इस विषय में एक अन्य गत्यारोध, बीसवीं शती के दूसरे दशक में यद्यपि भारतवंशियों के बीच जयनारायण राय और पं. वासुदेव विष्णुदयाल जैसे हिंदी के प्रकांड विद्वान एवं समर्थक विद्यमान नहीं थे, तो भी इस देश में एक द्विभाषी (हिंदी-अंग्रेजी) दैनिक समाचार पत्र विद्यमान था। इसके विपरीत आज बड़ी संख्या में हिंदी के स्नातकों, प्राध्यापकों, पाठकों के होते हुए भी एक भी दैनिक या साप्ताहिक का प्रकाशन संभव नहीं हो पा रहा है। क्या यह मौरीशस के भारतवंशियों के बीच के आपसी फूट का परिणाम तो नहीं! फिर यह गत्यारोध क्यों?

अंत में श्यामधर मैथानी के विचारों को उपसंहार में उद्भूत करना अनुचित न होगा, ‘मौरीशस की हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में तब तक अंधकार का वातावरण बना रहेगा, जब तक कि एक हिंदी ‘दैनिक पत्र’ का नियमित प्रकाशन नहीं होता। फिलहाल सरकारी प्रयास से यह कार्य संभव नहीं है। यह कार्य या तो आर्य समाज जैसी संस्था के कतिपय उन्नायकों के द्वारा संभव हो सकता है या किसी व्यक्तिगत प्रयास, अदम्य साहस, उत्कट अभिलाषा वाले व्यक्ति के द्वारा हो सकता है। इसके लिए उसके पास निजी प्रेस का होना आवश्यक है, क्योंकि मौरीशस में हिंदी के छापेखाने कम ही हैं। इस दिशा में भारत सरकार या भारत की कोई संस्था या कोई व्यक्ति आगे आकर सहयोग दे सकता है। इसके बावजूद ‘क्रियासिद्धि: सत्ये की भवति महतां नोपकरणे’ के बीज-मंत्र को स्मरण करते हुए इस कार्य को बेहतर अंजाम दिया जा सकता है।’

सदर्भ

- प्रह्लाद रामशरण, मौरीशस हिंद महासागर का नवोदित राष्ट्र
- दयानंदलाल बसंत राय, ‘शिवरात्रि’ के विभिन्न विशेषांक
- श्यामधर मैथानी, मौरीशस में हिंद पत्र-पत्रिकाओं का उद्भव और विकास
- पं. आत्माराम विश्वनाथ, मौरीशस का इतिहास

फिजी में हिंदी और हिंदुस्तानी : भाषा और संस्कृति के उभरते आयाम

कमल किशोर मिश्र

भौगोलिक रूप में फिजी गणराज्य, दक्षिण प्रशांत महासागर में स्थित 322 द्वीपों का एक समूह है। यहां के मूल निवासी काईबीटी समुदाय के हैं। देश की पूरी आबादी लगभग 8 लाख है। इसमें 50 प्रतिशत काईबीटी, 44 प्रतिशत भारतीय तथा 6 प्रतिशत अन्य समुदाय के लोग हैं। फिजी में भारत से दो तरह के प्रवासन हुए : सन् 1919 के पहले गिरमिटिया के रूप में तथा बाद में व्यवसाय के लिए व्यापारियों का, जिसमें गुजराती मूल के भारतीयों की संख्या सर्वाधिक है। तदनंतर, डॉक्टर, इंजीनियर, विश्वविद्यालय के अध्यापक, सूचना और संचार के विशेषज्ञ इत्यादि के रूप में भी प्रवासन हुआ है, जो आज की देश अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में सकारात्मक सहयोगी बन रहे हैं।

ब्रिटिश राज के दौरान भारत में गरीबी का यह हाल था कि लोग रोजी रोटी की खोज में अपना देश छोड़ने के लिए विवश थे। सन् 1889 से 1916 के बीच अंग्रेज टेकेदारों ने 61000 मजदूरों को यह आश्वासन दे कर पानी के जहाजों से लेकर गए थे कि बस पास के ही द्वीप पर जाना है, अच्छा काम और आमदनी दोनों ही संभव होगी। अंग्रेज भी यह अच्छी तरह जानते थे कि भारतीय बड़े परिश्रमी होते हैं और इसी कारण वे मजदूरों के रूप में उन्हें ले जाना चाहते थे। यह ऐसी यात्रा थी जो खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही थी, जहाज में एक दूसरे का दुःख सुनते-बांटते सभी यात्री जहाजी भाई बन गए। आज फिजी में भारतीय मजदूरों की पांचवीं पीढ़ी रहती है।

14 मई, 1879 को भारत से पहली बार गिरमिटिया श्रमिकों के साथ ‘लियोनिडास’ जहाज फिजी के समुद्रतट पर पहुंचा। बाद में भारत से अधिक जहाजों के आगमन के साथ उनकी संख्या में वृद्धि हुई। कलकत्ता से चलकर ‘लियोनिडास’ में 471 भारतीयों को लेकर फिजी की धरती के निकट पहुंचा। उन दिनों भारतवर्ष और फिजी दोनों ही देश ब्रिटिश उपनिवेश के अधीन थे। गन्ने की खेती के लिए सस्ते मजदूरों को, पांच वर्षों के लिए विशेष अनुबंध कर फिजी लाया गया था। इस अनुबंध से लेकर फिजी तक की पंचवर्षीय यात्रा कारुणिक, कठिन और संघर्ष से भरी थी। चुनौतियां और संघर्ष, इन प्रवासी भारतीय श्रमिकों की नियति थी और उन्हें अपने परिश्रम और बुद्धिमत्ता से इन चुनौतियों और संघर्षों को संभावनाओं में तब्दील करना था।

अनुबंध-गिरमिट प्रथा के अंतर्गत आए प्रवासी भारतीयों ने फिजी देश को जहां अपने खून-पसीने से आबाद किया वहीं हिंदी भाषा और रामायण जैसे धार्मिक ग्रंथों की ज्योति भी प्रज्वलित की, जो आज भी फिजी में अपना प्रकाश फैला रही है। इस दौर में स्पंदनशील भारतीय-फीजियन समुदाय के लिए, जो दोनों देशों के बीच सेतु निर्माता के रूप में कार्य करता है, एक विशेष भावनात्मक अनुगृंज सुनी गई। गिरमिटिया श्रमिकों के रूप में भारतीय ब्रिटिश शासन द्वारा गन्ने की रोपाई के काम के लिए ले जाए गए भारतीय मूल के लोगों की संख्या अब 8,49,000 हो गई है। भारतीय- फीजियन अब फिजी में जीवन के हर क्षेत्र में अपना स्थान बना चुके हैं और अपनी बहुमुखी प्रतिभा से अपनी अपनाई हुई मातृभूमि को समृद्ध किया है। व्यवसाय, राजनीति, संस्कृति, मनोरंजन, हर क्षेत्र में भारतीय- फिजीयों ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

इन श्रमिकों की संतान जो अब पांचवीं पीढ़ी है, जनसंख्या का लगभग 38% है और देश के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक ताने-बाने का हिस्सा है। श्री महेंद्र पाल चौधरी ने 1999 के चुनावों को जीतने के बाद फिजी के प्रथम भारतीय- फीजियन प्रधानमंत्री बनने की विशेष उपलब्धि प्राप्त की थी। यह समुदाय फिजी जीवन-शैली में भली-भाँति घुल-मिल गया है, परंतु इसने उस भारत भूमि के साथ भी अपने महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक रिश्तों को बनाए रखा जिसे उनके पूर्वजों ने दशकों पहले छोड़ा था। फिजी में बसे भारतीयों की उपस्थिति से दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों में बहुत योगदान मिला है। फिजी के मूल निवासी पूरी तरह प्रकृति से जुड़े थे, वहां समुद्र-संसाधन और वन संपदा की कमी नहीं थी।

भारत से दूर और भारत

इतिहास, संस्कृति एवं सभ्यतागत स्मृतियों का मिश्रण करने वाली प्रवासी भारतीय श्रमिकों का जीवन समुद्र पार की यात्रा की महागाथा है। दक्षिण प्रशांत महासागर में हजारों मील दूर स्थित लगभग 800 से अधिक चकित कर देने वाले वाले नयनाभिराम मूँगा द्वीप समूहों की एक शृंखला से बना हुआ फिजी देश, आज भारतीय मूल के व्यक्तियों के जरिए भारत से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है जिन्होंने इस प्रशांत राष्ट्र को सदियों पूर्व अपना घर बना लिया था। इन प्रवासी भारतीयों का संबल गोस्वामी तुलसीदास की 'रामायण' और 'हनुमान चालीसा' थे जिसे ये साथ लेकर फिजी आए थे। इनकी दशा में धीरे-धीरे सुधार आया और घर-द्वार बन गए। अगली पीढ़ी ने शिक्षा की ओर ध्यान दिया। ये लोग अवधी, भोजपुरी और हिंदी बोलते हैं और अंग्रेजी का प्रचलन होने पर भी अपनी संस्कृति और उसकी विरासत को कभी नहीं भूलते। भारतीय मूल के लोग, शादी विवाह अपने ही लोगों में करना चाहते हैं। जाति प्रथा लगभग समाप्त हो चुकी है और ज्यादातर लोग सम्मान के तौर पर अपने पूर्वज का नाम अपने नाम के साथ लगाते हैं। बड़े उच्च पद पर आसीन होने पर भी, ब्राह्मण होने के नाते पंडिताई भी बिना हीन भाव के करते हैं। फिजी में इनका बहुत मान है। संस्कारों का ही फल है कि लोग भारतीय रीति-रिवाज के अनुसार शादी कर अपने परिवार को भारत की सनातन संस्कृति से जोड़ना चाहते हैं, जबकि परिवार में हर संस्कृति और हर जाति के रिश्तेदार हुआ करते हैं। विवाह में भी वे कोई रस्म छोड़ना नहीं चाहते। परिवार के बजुर्गों से पूछकर हर रस्म मनोयोग से संपन्न करते हैं। सभी रस्मों को कैमरों में उतारा जाता है। फिजी के मंदिरों में लगाने के लिए देवी की मूर्ति मंगवाई गई तथा सुनहरे रंगों से पेंटिंग की गयी।

उल्लेखनीय है कि फिजी की अर्थव्यवस्था पर भारतीय मूल के लोगों का अधिकार था भारतीय मूल के लोग कुल जनसंख्या का 44 थे। वहाँ के मूल निवासियों का मानना है कि हमारे वंशजों ने श्रीराम और रावण के बीच हुए युद्ध में भगवान राम का साथ दिया था और हमें भी युद्ध के लिए श्रीराम जी के पक्ष से युद्ध के लिए आमंत्रित किया गया था। भारतीय मूल के लोगों का खानपान वही है जो भारत में प्रचलित है स्थानीय कंदमूल भी प्रयोग में लाते हैं जो प्रोटीनयुक्त भोजन का श्रोत है।

जिंदगी में रिश्तों का महत्व कुछ ऐसा ही जैसे हम हवा, पानी, खाना आदि, जीवन जीने के लिए जरूरी हैं- वैसे ही रिश्तों का होना भी बहुत जरूरी है। जन्म लेते ही हम रिश्तों की डोर में बंध जाते हैं। मां-बाप, भाई-बहन, दादा-दादी, नाना-नानी, आदि जैसे रिश्तों को फिजी समाज में आदर दिया जाता है। फिजी का समाज भी मूल एवं पारंपरिक भारतीय समाज जैसा ही है।

फिजी की संस्कृति एक सामासिक संस्कृति है, जिसमें काईबीती, भारतीय, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड के निवासी शामिल हैं। इनकी भाषा काईबीती (फीजियन) हिंदी तथा अंग्रेजी है। भारतीय बच्चे पढ़ाई की ओर बहुत ध्यान देते हैं, विदेश जाकर पढ़ने के इच्छुक रहते हैं, शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है। जब फिजी में रम्बूका का मिलिटरी कू हुआ, बहुत सारे लोग न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया और अमेरिका बस गए।

हिंदी भाषा की प्रगति

आरंभ में अंग्रेजों द्वारा भारत के उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तथा बिहार से श्रमिक फिजी में लाए गए थे। वे लोग अपने मूल निवास स्थान की हिंदी की बोली बोलते थे। इसे नीचे की सारिणी में दर्शाया गया है :

श्रमिकों द्वारा बोली जाने वाली बोलियां

भाषा/बोली	संख्या	अनुपात%
बिहारी	17,868	39.3%
पूर्वी हिंदी	16,871	37.1%
पश्चिमी हिंदी	6,903	15.2%
राजस्थानी	1,111	2.4%
अन्य भाषाएं	1,546	3.4%
अन्य उपनिवेशों के लोग	640	1.4%
अझात	500	1.1%
कुल योग	45,439	100%

इस समय 'फिजी हिंदी' फिजी में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है। इसे 'फिजियन हिंदी या 'फिजियन हिंदुस्तानी' भी कहते हैं। यह फिजी की आधिकारिक भाषाओं में से एक है। फिजी हिंदी देवनागरी और रोमन दोनों ही लिपियों में लिखी जाती है।

फिजी हिंदी मुख्य रूप से अवधी और हिंदी की अन्य बोलियों से व्युत्पन्न है, जिसमें कई अन्य भारतीय भाषाओं का भी समावेश है। इसमें फिजी और अंग्रेजी से बड़ी संख्या में शब्द लिए गए हैं। फिजी हिंदी में बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द भी हैं, जो फिजी में रह रहे भारतीयों के नए माहौल

में ढलने के लिए जरूरी थे। फिजी भारतीयों की पहली पीढ़ी, जिसने इस भाषा को बोलचाल के रूप में अपनाया इसे ‘फिजी बात’ कहते थे। भाषाविदों के अध्ययन से इस बात की पुष्टि हुई है कि फिजी हिंदी भारत में बोली जाने वाली हिंदी भाषा पर आधारित एक विशिष्ट भाषा है, जिसमें फिजी के अनुकूल विशेष व्याकरण और शब्दावली है।

ध्यान रखने योग्य है कि भोजपुरी, जिसे लगभग 35.4% उत्तर भारतीय प्रवासी बोलते थे, और अवधी, जिसे लगभग 32.9% लोग बोलते थे, को ‘पूर्वी हिंदी’ कहा गया है। अवधी उत्तर प्रदेश में ‘अवध क्षेत्र’ में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त इसकी एक शाखा बघेलखण्ड में ‘बघेली’ नाम से प्रचलित है। ‘अवध’ शब्द की व्युत्पत्ति ‘अयोध्या’ से है। तुलसीदास ने अपने ‘मानस’ में अयोध्या को ‘अवधपुरी’ कहा है। संसार के विभिन्न देशों- फिजी मॉरीशस, त्रिनिदाद एवं टुबैगो, गुयाना, सूरीनाम सहित आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हॉलैंड में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग हैं।

फिजी हिंदी, अवधी भाषा, भोजपुरी और उत्तर प्रदेश तथा बिहार की अन्य बोलियों पर आधारित है। लगभग 70% लोग यह भाषा बोलते हैं। फिजी की अन्य भाषाओं में सामान्य हिंदी, उर्दू, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पंजाबी और मलयालम शामिल है।

शीघ्र ही फिजी में एक ऐसी भाषा का जन्म हुआ, जो इन सभी बोलियों की मेल थी। इसमें फिजी और अंग्रेजी से बड़ी संख्या में शब्द उधार लिए गए हैं। फिजी हिंदी में बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द भी हैं, जो फिजी में रह रहे भारतीयों के नए माहौल में ढलने के लिए जरूरी थे।

फिजी का भारतीय समुदाय हिंदी में कहानी और कविताएं भी लिखता है। हिंदी प्रेमी लेखकों ने हिंदी समिति तथा हिंदी केंद्र बनाए हैं जो वहां के प्रतिष्ठित लेखकों के निर्देशन में गोष्ठियां, सभा तथा प्रतियोगिताएं आयोजित करते हैं। इनमें हिंदी कार्यक्रम होते हैं कवि और लेखक अपनी रचनाएं सुनाते हैं। फिजी में औपचारिक एवं मानक हिंदी का प्रयोग पाठशाला के अलावा शादी, पूजन, सभा आदि के अवसरों पर होता है। शिक्षा विभाग द्वारा संचालित सभी बाह्य परीक्षाओं में हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। फिजी के संविधान में हिंदी भाषा को मान्यता प्राप्त है। कोई भी व्यक्ति सरकारी कामकाज, अदालत तथा संसद में भी हिंदी भाषा का प्रयोग कर सकता है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं तथा रेडियो कारगर माध्यम हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार में फिजी हिंदी साहित्य समिति वर्ष 1957 से बहुमूल्य योगदान दे रही है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को बढ़ावा देना।

फिजी के हिंदी रचनाकारों में पद्म विवेकानंद शर्मा का बहुत आदर है और उनकी रचनाओं से इनमें जागृति आई। भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं ने भी बहुत ही प्रेरित किया है। फिजी के रचनाकारों में तोताराम सनाढ़ी, डॉ. ब्रजलाल, डॉ. सुब्रह्मणी, जोगिन्दर सिंह कवल, सत्येन्द्र नंदन, डॉ. ब्रजलाल, सात्यिक दास, तथा किरणबाला प्रमुख हस्ताक्षर हैं। आजकल फिजी में हिंदी अत्यंत लोकप्रिय है। फिजी नेशनल यूनिवर्सिटी, यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसेफिक तथा यूनिवर्सिटी ऑफ फिजी में हिंदी विभाग अकादमिक सक्रिय है। जनजीवन में हिंदी पत्रकारिता भी लोकप्रिय है उनमें, साप्ताहिक शांतिदूत, एफ.बी.सी, फिजी-वन, तथा अन्य स्थानीय टेलीविजन संस्था, आदि हिंदी को जीवंत बना रहे हैं। हिंदी सिनेमा भी वहां के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

समुद्र केंद्रित प्रकृति यहां के जन जीवन को समृद्ध करती है। यहां मुख्यतया गन्ने की खेती होती है। पर्यटन के लिहाज से फिजी में बड़ी मात्रा में पर्यटक आते हैं। यह प्रकृति की निराली छटा, सुंदर वनों और खूबसूरत समुद्री किनारों की वजह से पर्यटकों का मन मोह लेता है। वन संपदा की भी कमी नहीं है। नाव लेकर समुद्र में दूर तक निकल जाना यहां के लोगों का प्रिय मनोरंजन है।

यहां के भारतीय डायस्पोरा में ‘भारतीय भाषा और संस्कृति’ जीवन की मूल धारा है। इसके बिना यहां जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। हिंदी यहां की धड़कन है, पर तमिल भाषा और भरतनाट्यम् के प्रति यहां दक्षिण भारत के मूल निवासियों में एक विशेष प्रकार का प्रेम और अनुग्रह है।

सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाएं

फिजी में भारतवंशियों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्थाएं सार्थक कार्य कर रही हैं। समाज में इन संस्थाओं का सक्रिय योगदान अविस्मरणीय है, कालक्रम से इन्हें समझा जा सकता है यथा :

ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन	(1911)
इंडियन इम्पीरियल एसोसिएशन	(1918)
आर्य प्रतिनिधि सभा ऑफ फिजी	(1918)
इंडियन केन ग्रोवर एसोसिएशन	(1919)
इंडियन एसोसिएशन ऑफ फिजी	(1920)
इंडियन रिफॉर्म लीग	(1924)
देन इंडिया सन्मार्ग ईक्या संगम	(1926)
हिंदू महासभा ऑफ फिजी	(1926)
फिजी मुस्लिम लीग	(1926)
फिजी नेशनल कांग्रेस	(1929)
फिजी टीचर्स एसोसिएशन	(1929)
फिजी भारतीय मजदूर संघ	(1930)
अहमदिया अंजुमन इस्लॉ-ए-इस्लाम	(1933)
फिजी किसान संघ	(1937)
फिजी इंडियन फुटबॉल एसोसिएशन	(1938)
दक्षिण इंडिया आंग्रे संघ	(1941)
मौनतुल इस्लाम एसोसिएशन ऑफ फिजी	(1941)
रेवा प्लांटर्स यूनियन	(1943)
साऊर्दन डिविजन किसान संघ	(1946)
फिजी विशाल संघ	(1946)
लंबासा किसान संघ	(1950)
फेडरेशन ऑफ केन ग्रोवर्स	(1959)
अहमदिया मुस्लिम कम्यूनिटी	(1960)

फिजी सीटीजन फेडरेशन (1964)

नेशनल कांग्रेस ॲफ फिजी (1965)

उपर्युक्त संस्थाओं में से कुछ आज भी सक्रिय हैं और फिजी के समाज निर्माण में उनका विशेष महत्व है। संयोगवश भारत के उच्चायोग के भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक के रूप में, अपने चार वर्षों के कार्यकाल में सभी लोगों के साथ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ था विशेषकर सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा ॲफ फिजी, आर्य समाज ॲफ फिजी, देन इंडिया सन्मार्ग ईक्या संगम ॲफ फिजी, सिख-गुरुद्वारा समाज ॲफ फिजी, रामकृष्ण मिशन ॲफ फिजी, गुजरात समाज ॲफ फिजी, प्रजापति बब्हकुमारी समाज ॲफ फिजी, रामलीला कमेटी फिजी, फिजी मुस्लिम लीग जैसी संस्थाएं खूब सक्रिय हैं। देन इंडिया सन्मार्ग ऐक्य संगम फिजी, की व्यापकता पूरे देश में है। यह अत्यंत संगठित संस्था है। इनके 100 से अधिक शिक्षण संस्थान हैं और 'संगम यूनिवर्सिटी ॲफ फिजी' के निर्माण हेतु संस्था प्रयासरत है।

आर्य प्रतिनिधि सभा ॲफ फिजी (1918) को महात्मा गांधी की प्रेरणा पर डॉक्टर मणिलाल ने स्थापित किया था। इसके प्रथम अध्यक्ष स्वामी मनोहरानंद सरस्वती थे। यूनिवर्सिटी ॲफ फिजी इनकी उच्च शिक्षा संस्थान है। इसके अतिरिक्त अनेक विद्यालय और महाविद्यालय भी देश भर में सुचारू रूप से चल रहे हैं।

सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा ॲफ फिजी (1958), की स्थापना श्रीधरमहाराज ने की थी। वास्तव में यह सनातन धर्म सभा (1920) का विस्तार है जिसकी स्थापना में तोताराम सनाढ़ी, पं. वशिष्ठमुनी, पं. रामचंद्र शर्मा, पं. मुरारीलाल शास्त्री थे। सभा मुख्य रूप से अपने गिरमिटिया पूर्वजों के द्वारा लाए गए रामचरितमानस, वात्मीकीय रामायण, सत्यनारायण की कथा, तथा सूर्य पुराण का प्रचार और प्रसार करते हैं। पूरे फिजी देश में इस सभा के 117 प्राथमिक और उच्च विद्यालय, सरस्वती कालेज, श्रीधरकालेज, 85 मंदिर, हजारों रामायण मंडलिया हैं। ब्राह्मण सभा, एजुकेशन बोर्ड, बाल विकास : मानवीय मूल्यों में शिक्षा, interfaith search of fiji, हिंदी संस्कृत शिक्षण, पौरोहित्य एवं कर्म कांड शिक्षण प्रशिक्षण का नियमित कार्य भी सभा के द्वारा संचालित किया जाता है।

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, भारत का उच्चायोग

भारत के उच्चायोग का भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, इस दिशा में 1972 से सक्रिय है। भारतीय सांस्कृतिक केंद्र (आईसीसी), सुवा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा विदेश में 1972 में स्थापित पहला सांस्कृतिक केंद्र था। आई.सी.सी., सुवा कर्नाटक स्वर संगीत, कथक और भरतनाट्यम नृत्य, भारतीय शास्त्रीय वाद्य यंत्र-स्स्वर तबला, हारमोनियम, योग और हिंदी में पाठ्यक्रम संचालित करता है। आईसीसी उपकेन्द्र, लौतोका भरतनाट्यम नृत्य, भारतीय शास्त्रीय वाद्य यंत्र- स्स्वर तबला/हारमोनियम और योग में पाठ्यक्रम संचालित करता है। सभी विषयों का संचालन शुरुआती, मध्यवर्ती, और उन्नत- तीन समूहों में प्रत्येक मानकीकृत पाठ्यक्रम के साथ, अंशकालिक स्थानीय शिक्षकों द्वारा किया जाता है। सभी कक्षाएं निःशुल्क हैं। आईसीसी नियमित कक्षाओं की गतिविधियों के साथ-साथ, सांस्कृतिक संध्या, प्रदर्शनियां, फिल्म शो, नृत्य और संगीत का प्रदर्शन, सेमिनारों और कार्यशालाओं का आयोजन भी करता है। आईसीसी, सुवा भारतीय संस्कृति और विरासत के पहलुओं पर व्याख्यान एवं प्रदर्शन के साथ ही पुस्तकों एवं संगीत वाद्ययंत्रों का उपहार देने जैसी सेवा की

गतिविधियां भी चलाता है। वर्ष 2011 में फिजी में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के अस्तित्व के 40 साल हो चुके हैं। आईसीसी द्वारा इस अवसर पर एक साल के लंबे उत्सव का आयोजन किया गया।

राजनीति और उसका फिजियन परिदृश्य : कल, आज और कल

फिजी एक विकासशील देश है। 1970 में फिजी आजाद हो गया और राष्ट्रमंडल का सदस्य बन गया। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय मूल के लोगों को आश्वासन दिया था कि किसी समस्या के आने पर उन्हें ब्रिटिश नागरिकता भी दी जाएगी। 1987 तक फिजी में लोकतांत्रिक शासन था। 1987 के चुनाव में महेंद्र चौधरी के दल की सरकार चुनी गई लेकिन जल्दी ही सरकार को अपदस्थ कर दिया गया। कर्नल रम्बूका ने बिना रक्तपात के तख्ता पलट दिया, महेंद्र चौधरी और उनकी सरकार को बंधक बनाकर रखा गया। 1990 में नए संविधान का गठन किया गया। नए संविधान के अंदर चुनाव हुए। 1992 में रंबूका देश के प्रधानमंत्री बने। यह दो सैनिक विद्रोह थे एक भारतीयों के प्रभुत्व के खिलाफ, दूसरा ब्रिटिश गवर्नर जनरल के स्थान पर कार्यपालिका अध्यक्ष की नियुक्ति की गई और फिजी का नाम फिजी गणराज्य कर दिया गया। जनमत के दबाव में संविधान के लिए एक आयोग का गठन किया गया और इस नए संविधान को भारतीय मूल और स्वदेशी समुदाय के नेताओं ने स्वीकार किया। फिजी को फिर से राष्ट्रमंडल की सदस्यता मिल गई। 1997 में फिजी को फिजी द्वीप समूह गणराज्य कर दिया गया। अंतरराष्ट्रीय समुदायों ने भी तख्ता पलट का विरोध किया गया था परन्तु महेंद्र चौधरी की मदद के लिए कोई प्रयास नहीं किया। 1997 के चुनाव में महेंद्र चौधरी की फिर सरकार बनी लेकिन 2000 में उन्हें जार्ज स्पीत ने हटा दिया। एक बार फिर से सैनिक विद्रोह हुआ। 2001 में उच्च न्यायालय के आदेश से फिर से संविधान को लागू किया, फिर से चुनाव हुए इन कू से भारतीय मूल के लोग फिजी में अपने भविष्य के प्रति चिंतित हो गए। संपन्न भारतीय मूल के लोगों ने आस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड और अमेरिका के लिए पलायन करना शुरू कर दिया जिससे फिजी की आर्थिक दशा को झटका लगा पर्यटन भी कम हो गया।

फिजी में संसदीय प्रणाली की सरकार है। राष्ट्रपति कार्यपालिका अध्यक्ष और राष्ट्र का अध्यक्ष है। प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख। फिजी की जनसंख्या के हिसाब से सेना है परंतु इनकी सुरक्षा का आस्ट्रेलिया ध्यान रखता हैं चीन की इस क्षेत्र में सैदेव निगाह रहती है।

भारत की तरह ही, आज, नए संविधान के अनुसार फिजी भी गणराज्य है और राजनीति में बहुदलीय व्यवस्था है। यहां की मुख्य राजनीतिक दल और उसके मुख्य नेता का विवरण निम्नवत् है :

फिजी फर्स्ट पार्टी (FijiFirst) : वराक वेनिमरामा, (देश के प्रधानमंत्री हैं)

फिजी फेडरेशन पार्टी (NFP) : प्रो विमान प्रसाद

फिजी लेबर पार्टी (FLD) : महेन्द्र चौधरी

सोशल डेमोक्रेटिक लिबरल पार्टी (SODELPA) : सी. रबुका

फिजी यूनाइटेड फेडरेशन पार्टी (FULP) : जगन्नाथ करुणारत्ने

पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (PDP) : फीलिक्स ऐन्थोनी

यूनिटी फिजी पार्टी (UFP) : स. नलबे

इन दिनों, फिजी फर्स्ट पार्टी की सरकार है और प्रधानमंत्री वराक वेनिमरामा हैं। जब 2013

के पूर्व, जब भारत सरकार के महत्वपूर्ण प्रतिनिधि के रूप में मैं वहां कार्य कर रहा था, तब वराक वेनिमरामा, मिलिटरी शासक के रूप में फिजी को विकास और शांति के पथ पर अग्रसर कर रहे थे। हमारे भारतीय लोक राजनयिक कार्य से वे भली-भाँति परिचित थे, और अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उनसे मिलना भी हुआ। हमने यह अनुभव किया कि फिजी के प्रधानमंत्री का भारतीय सांस्कृतिक विरासत के साथ गहरा रिश्ता बन चुका था। तत्कालीन राजदूत विनोद कुमारजी के सहयोग से फिजी के उन तमाम छोटे बड़े द्वीपों में जहां भारतवंशी सदियों से रह रहे हैं, उन सबसे मिलना और भारतीय सांस्कृतिक विरासत के साथ जोड़ना संभावनाओं और चुनौतियों से भरपूर एक अद्भुत अवसर था।

भारत सरकार के सांस्कृतिक प्रतिनिधि के रूप में फिजीवासियों को वर्तमान भारत में उपलब्ध शिक्षा और संस्कृति के लाभ से परिचित कराने में सबके सहयोग से अद्भुत सफलता मिली थी, जिससे पूरा फिजी परिचित हो चुका था। मुझे वह दिन भी याद है, जब मैं अपने दायित्व को समाप्त कर वापस भारतवर्ष लौटने के लिए तैयार हो रहा था, और पूरे फिजी में अलग-अलग शहरों, गांवों में लोगों के द्वारा विदाई समारोह आयोजित किया गया और अंतः: एयरपोर्ट पर अश्रुपूर्ण नेत्रों में सैकड़ों लोग वहां विदाई के लिए उपस्थित थे। भावनाओं से भरा यह क्षण स्मरणीय और प्रेरक था। ग्राउंड वर्क तैयार हो चुका था। कुछ ही दिनों के पश्चात, फिजी के प्रधानमंत्री वराक वेनिमरामा ने हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदीजी को आमंत्रित किया। भारत और फिजी के बीच बहु-रंगी रिश्तों को नई चमक मिली जब फिजी की राजधानी सुवा में 19 नवंबर 2014 को भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी का स्वागत किया गया। 33 वर्ष पहले 1981 में जब इंदिरा गांधी ने इस प्रशांत राष्ट्र का दौरा किया था, उसके बाद से भारत के प्रधानमंत्री की यह पहली फिजी यात्रा रही। मोदीजी ने फिजी संसद में भाषण दिया। उनका भारतीय मूल के लोगों ने हार्दिक स्वागत किया। वहां के प्रधानमंत्री वेनिमरामा से द्विपक्षीय वार्तालाप में अंतरराष्ट्रीय मुद्दों, रक्षा सहयोग निवेश एवं व्यापार पर सहमति बनी। भारत अंतरिक्ष, आईटी के क्षेत्र में फिजी की मदद करने का इच्छुक है फिजी के ग्रामीण उद्योग को मदद देने के लिए 50 लाख डालर, एक बिजली संयंत्र के 70 मिलियन डालर की मदद का आश्वासन दिया। वीजा के नियमों को भी सरल बनाने का प्रयत्न किया जाएगा। फिजी एक प्रकार से छोटा भारत रहा है। वहां के लोग अपने को सदा भारत भूमि से जुड़ा महसूस करते हैं।

सुवा में भारत-फिजी संबंधों की नवीन गरमाहट महसूस की जा सकती है। फिजी के प्रधानमंत्री वोरेक (फ्रेंक) वैनिमरामा ने भारतीय नेता को शीघ्र फिजी आने का निमंत्रण देते हुए कहा था, ‘मुझे विश्वास है कि हमारे दोनों देशों और अपनी जनता के बीच अटूट रिश्ता बनाने वाली मित्रता और सहयोग की भावना आने वाले वर्षों में और मजबूत होगी।’ श्री मोदी ने अपने दौरे से पहले एक उत्साहपूर्ण टिप्पणी भी की है जिसमें कहा है कि प्रशांत महासागर के इस राष्ट्र में इस वर्ष के चुनावों के शीघ्र पश्चात फिजी का दौरा करना विशेष लाभकारी होगा। उन्होंने कहा- ‘हम अपने चंद्र मिशन के सहयोग के रूप में उस द्वीपसमूह पर हमारे वैज्ञानिकों की मेजबानी करने के लिए उनके आभारी हैं। हम प्रशांत द्वीपसमूह में हमारे मित्र देशों के साथ अंतरराष्ट्रीय और बहुपक्षीय मंचों में मजबूत आर्थिक सहयोग एवं घनिष्ठ भागीदारी बढ़ा सकते हैं।’

2014 में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी की फिजी यात्रा के दौरान प्रशांत समुदाय तक भारतीय कूटनीति के मधुर पहलू देखने को मिला। भारत के साथ प्रथम शिखर सम्मेलन में, दक्षिण

प्रशांत द्वीप समूह के सभी 14 देशों, जिनकी निराली संस्कृति और जीवन-शैली है, के नेताओं के साथ भारत के प्रधानमंत्री की सार्थक बैठक हुई। इन प्रशांत देशों के साथ भारत के विशेष संबंध हैं। भारत के विदेश मंत्रालय के तत्कालीन सचिव (पूर्व) अनिल वाधवा कहते हैं, ‘भारत और प्रशांत द्वीपसमूह की जलवायु परिवर्तन संबंधी चुनौतियां समान हैं परंतु हमारे विकास के प्रयासों में सहयोग के लिए बड़े अवसर भी मौजूद हैं। हम संयुक्त राष्ट्र से संबंधित निकायों के साथ-साथ इस द्वीप समूह के देशों के प्रशांत क्षेत्र के मंचों पर भागीदारी करते रहे हैं और हमारे बीच अच्छी समझ भी है। वे हमें नीतियों, विकास सहायता और क्षमता-निर्माण के लिए नेतृत्व प्रदान करने वाले देश की भूमिका में देखना चाहते हैं। इस बैठक में कूटनीति के अभाव के मुद्दों का समाधान होने और प्रशांत द्वीपसमूह के राष्ट्रों के साथ भारत के संबंधों में सुधार के लिए महत्वाकांक्षी रोडमैप हुई है, जिसने एक विशाल एशियाई पड़ोसी देश का ध्यान भी आकर्षित किया है। एक समावेशी वैश्विक व्यवस्था को प्राप्त करने की दिशा में, भारत अपने सभी छोटे और बड़े देशों के साथ भागीदारी को आकार दे रही है और उसे बढ़ा भी रही है।

●

सिंगापुर में हिंदी

संध्या सिंह

सिंगापुर में हिंदी और हिंदीभाषियों का इतिहास जानने से पहले सिंगापुर का संक्षिप्त इतिहास जान लेना समीचीन होगा। अगर हांगकांग को ‘पूर्व का मोती’ कहा जाता है तो सिंगापुर निस्संदेह पूर्व का हीरा है। दक्षिण-पूर्व एशिया में, निकोबार द्वीप समूह से लगभग 1500 कि.मी. दूर एक छोटा, अति सुंदर व अति विकसित देश सिंगापुर पर्यटन व व्यापार के एक प्रमुख केंद्र के रूप में उभरा है। इस देश की खोज के पीछे एक किंवदंती है कि चौदहवीं शताब्दी में एक तड़ित वृष्टि अर्थात बिजली की कड़कड़ाहट वाले तूफान के कारण सुमात्रा के राजकुमार सांगनीलाउत्तामा इस द्वीप पर पहुंचे और उन्होंने एक शुभ चौपाया देखा जो संभवतः मलायन शेर था अतः द्वीप का नामकरण संस्कृत भाषा के सिंह अर्थात शेर और पुर यानी शहर के आधार पर ‘सिंगापुरा’ कर दिया। दूसरी ओर सांगनीलाउत्तामा के शिकार के दौरान सिंह के देखे जाने की बात भी प्रचलित है। सांगनीलाउत्तामा की कहानी के कई रूप किंवदंतियों के रूप में प्रचलित दिखाई देते हैं¹ पर हर किंवदंती में एक बात सामान्य है कि सांगनीलाउत्तामा उन तीन राजकुमारों में से एक हैं जो स्वर्ग से धरती पर आए थे। आज भी सिंगापुर ‘डॉलर’ व ‘सेंट’ के सिक्कों पर आधुनिक नाम ‘सिंगापुर’ व पुराना नाम ‘सिंगापुरा’ अंकित रहता है।

सन् 1818 में भारत के ब्रितानी गवर्नर जनरल ‘लॉर्ड हास्टिंग’ ने ‘सर स्टैम्फर्ड रैफल्स’ को मलाया प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर व्यापारिक स्टेशन बनाने के लिए नियुक्त किया।² उस समय भारत में ब्रितानी सरकार अपना प्रभुत्व फैला रही थी साथ ही चीन से उनका व्यापार बढ़ रहा था तो अपने वाणिज्य की सुरक्षा दृढ़ करने के लिए उन्हें बंदरगाह की आवश्यकता थी और डच लोगों के विस्तार को रोकना भी उनका लक्ष्य था। अतः काफी सर्वेक्षण के बाद सन् 1819 में सर स्टैम्फर्ड रैफल्स और ईस्ट इंडिया कंपनी ने सिंगापुर में पदार्पण किया। धीरे-धीरे सिंगापुर ब्रितानी साम्राज्य का खास व्यापारिक व सैन्य केंद्र बन गया।

हिंदी/भोजपुरी भाषी लोगों का आगमन

सिंगापुर में भारतीय आखिर क्यों आए? किन परिस्थितियों में आए? यहां आकर क्या किया? आदि ऐसे सवाल हैं जिनका उत्तर मिलना कठिन है। उस दौर में भारत और मलाया प्रायद्वीप में ब्रितानी राज था। सिंगापुर में स्ट्रेट सेटलमेंट यानी जलडमरुमध्य बस्तियों का इतिहास सन् 1826 से 1942 तक के समय को प्रदर्शित करता है। जलडमरुमध्य बस्तियां दक्षिण पूर्व एशिया में स्थित

ब्रितानी सीमा को नियंत्रित करने के लिए स्थापित किए गए क्षेत्र थे। पहली अप्रैल 1867 से स्ट्रेट सेटलमेंट 'क्राउन कॉलोनी' के रूप में प्रत्यक्ष ब्रितानी शासन में आ गया था। स्ट्रेट सेटलमेंट मलाका, दिन्दिंग, पिनांग और सिंगापुर नामक चार मुख्य सेटलमेंट का मेल था।⁴ सिंगापुर के इतिहास में एक समय ऐसा दिखाई देता है जब वह भारतीय शासन के अधीन था।⁵ इस दौरान मलाका और पिनांग सहित सिंगापुर स्ट्रेट सेटलमेंट का हिस्सा थे।

ब्रितानी राज तो सस्ती मजदूरी चाहता ही था पर सन् 1875 की क्रांति के बाद स्थिति और बदलती गई। अब गरीब और गरीब हो गए। उनके पास कोई काम नहीं था, ऊपर से बाढ़, सूखे व अकाल जैसी विभीषिकाओं ने सोने पर सुहागे का काम किया। गरीब मजदूर बेहतर जीविका और परिवार का भरण-पोषण करने के लिए समृद्ध देशों की ओर रुख करने के लिए मजबूर थे।⁶

सिंगापुर में हिंदी बेल्ट वालों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है- सिंगापुर में अगर हिंदी बोलने व बरकरार रखने वालों को श्रेणियों में बांटा जाए तो स्वाभाविक रूप से दो श्रेणियों में विभक्त होंगे। दोनों ही समूह समय-समय पर सिंगापुर में आर्थिक जरूरत व विकास के संबंध में कानूनी तौर पर उपस्थित हुए। एक वर्ग का कुछ हिस्सा मजबूरी में आया तो दूसरे वर्ग को सरकार ने अपनी जरूरत के हिसाब से बुलाया।

जनवरी 1819 में सर थॉमस स्टैमफर्ड रैफल्स के आगमन के साथ सिंगापुर में भारतीयों का प्रवास शुरू हुआ। शुरुआती अनुचर पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तरी पश्चिमी बिहार से लाए गए जो धोबी, दूधवाला, चायवाला और घरेलू नौकर के रूप में सेवा देने लगे। यहाँ से हिंदी बेल्ट वालों की आवाजाही की शुरुआत हुई। यह बीच-बीच में कम जरूर होती रही पर एक कड़ी बन गई थी जो अब तक जारी है। सिंगापुर में भारतीयों के आगमन का लिखित साक्ष्य तो 1819 के आस-पास से ही मिलने लगता है अगर जोड़ें तो यहाँ का लगभग दो सौ वर्ष का इतिहास भारतीयों के हिस्से आता है। भारतीय भी किस रूप में आए; बंदी बनकर, अंग्रेजों की मजदूरी करने और उनकी गुलामी सहने।⁷

सिंगापुर में भारतीय कैदियों का पहला दल सुमात्रा से 1825 के अप्रैल महीने में आया।⁸ पहली बार सन् 1825 में 80 कैदियों को मद्रास से लाया गया तथा बाद में 122 कैदियों को बंगाल के बंदरगाह से लाया गया जो भिन्न भारतीय भू-भाग से जुड़े हुए थे जैसे बनारस के ब्राह्मण, सिक्ख और डोगरा क्षत्रिय, चेतियार, बंगाली और पारसियों के साथ ही अलग-अलग हिस्सों के अद्यूत भी शामिल थे।⁹ उन कैदियों को ब्रास बासाह रोड में निवास करने का स्थान मिला और उनका मुख्य काम जंगलों को साफ करना, सड़क निर्माण, नहर, पुल, इमारत आदि का निर्माण था।

पचास-साठ के दशक में सिंगापुर की सरकार ने अपने अप्रवासन नियम को बहुत सख्त कर दिया और भारत से आने वाले लोगों की संख्या पर पड़ाव आ गया। सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में जब सरकार ने नियम में थोड़ी ढील दी तब पुनः वह आवागमन प्रारंभ हो सका। पुराने हिंदी बोलने वाले भारतीय ज्यादातर उत्तर प्रदेश व बिहार से आए थे अतः उनमें एकरूपता कई मामलों में थी क्योंकि वे सभी लगभग एक सा कार्य करने भी आए थे।

पुराने हिंदीभाषी लोग ज्यादातर सिंगापुर के नागरिक बन चुके हैं और अब उनकी दूसरी, तीसरी या चौथी पीढ़ी सिंगापुर की नागरिक है, जबकि नए भारतीय सिंगापुर में 'इंप्लॉयमेंट पास' पर काम करने आते हैं और समय के साथ कुछ 'परमानेंट रेजिडेंट' बन जाते हैं।

नए प्रवासी सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि में काफी भिन्न हैं। असल में नए भारतीय नए बदलाव के रूपक हैं जो अस्सी के दशक में भारत में हुआ। भारत को ‘स्लीपिंग जायंट’ की संज्ञा दी गई।¹⁰

सिंगापुर सरकार की मुक्त बाजार व्यवस्था व वैशिक प्रतिभा के खुले निमंत्रण ने कई प्रतिभा संपन्न भारतीयों को अपनी ओर आकर्षित किया है। सन् 2004 में मुंबई के एक सेमिनार में बोलते हुए तब सिंगापुर के उप प्रधानमंत्री श्री ली सेंग लूंग ने कहा था, ‘Over the years, we have benefited greatly from an inflow of talent from India, as well as of NRIs from around the world, and we will continue to welcome them.’¹¹

सिंगापुर में औपचारिक व अनौपचारिक रूप से बोली जाने वाली भाषाएं

सिंगापुर संविधान के अनुसार चार भाषाओं को औपचारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है : अंग्रेजी, मंदारिन, मलय और तमिल। मलय क्षेत्र होने के कारण मलय यहां की प्रतीक भाषा है हालांकि कभी यह सिंगापुर बाजार की ‘लिंगुआ फ्रांका’ हुआ करती थी पर यह भाषा आज मलय परिवारों तक ही सीमित हो रही है।

सिंगापुर एक बहुप्रजातीय देश है अतः यहां कई अन्य भाषाएं बोलने वाले लोग भी हैं। यहां की जनसंख्या के वर्गीकरण पर गौर किया जाए तो लगभग 3.2 प्रतिशत अन्य वर्ग में आता है। जाहिर सी बात है ये लोग जातीय आधार पर तो भिन्न हैं ही, इनकी भाषा में भी भिन्नता है। इस वर्ग में यूरेशियन लोगों की संख्या काफी है। इसके अलावा पुतर्गाली, जापानी, कोरियाई, थाई और परान्कान लोग शामिल हैं।

सिंगापुर में भारतीय भाषा तमिल को तो औपचारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है परंतु अन्य पांच भारतीय भाषाओं को द्वितीय भाषा के रूप में स्थानीय विद्यालयों में पढ़ाने की मान्यता प्राप्त है जिसमें हिंदी, गुजराती, बंगाली, पंजाबी और उर्दू शामिल है। सिंगापुर में इन भाषाओं के अलावा मराठी, तेलुगू, कन्नड़, मलयाली लोगों की संख्या भी काफी है।

हिंदी शिक्षण के प्रमाण

जब बात आती है हिंदी भाषा की तो सन् 1920 के आसपास कई छात्रों ने कैंब्रिज की हिंदी परीक्षा दी थी जिसके अभिलेख मिलते हैं। इसके अलावा आर्य समाज से जिसका आधिकारिक रूप में पंजीकरण 1957 में हुआ था पर वह 1914 से अस्तित्व में आ चुका था, हमें 1930 में हिंदी के लिए छात्रों के पंजीकरण की बात पता चलती है। समाचार पत्रों से कुछ उदाहरण देखकर स्पष्ट हो जाता है कि 1920 के आस-पास से ही हिंदी पढ़ने के लिखित प्रमाण मिलने लगते हैं।

‘द सिंगापुर फ्री प्रेस एंड मर्चेटाइल एडवटाईजर (1884-1942), 27 जनवरी 1931, पेज 18’- ‘मैटर्स ऑफ इंडिया इंट्रेस्ट’ में दो अन्य मामलों के साथ ‘लोकल हिंदी क्लासेस’ नामक लेख के अनुसार- ‘बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आर्य समाज सिंगापुर द्वारा शुरू की गई हिंदी कक्षाएं उतनी सफल नहीं रहीं जितनी होनी चाहिए थीं। निश्चित रूप से कहा जा सकता है शुरुआत में जो आकर्षण इस अच्छे कार्य के प्रति था वह सामान्य उदासीनता के कारण खत्म होने लगा। पिछले साल (1930) के संवाददाता ने हिंदी के मुख्य भाषा (भारत में) बनने की जब बात की थी तो यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि यह भविष्य में भारत की लिंगुआ-फ्रांका का दर्जा पाएगी। यह सुझाव दिया

गया कि कोई संस्था उन लोगों को सुविधाएं प्रदान कर सकती है जो इस भाषा को सीखने के इच्छुक हैं। आर्य समाज सिंगापुर की प्रबंधन समिति ने भावी छात्रों से आवेदन की मांग की। 57 छात्रों के पंजीकरण वाली कक्षा आर्य समाज के परिसर में पिछले साल जुलाई (1930) में लगी, जिसकी संख्या बढ़कर 80 तक पहुंच गई। प्रारंभिक आकर्षण धीरे-धीरे कम होता गया और साल के अंत तक छात्रों की संख्या 10 रह गई। अगर यह संख्या और कम होती है तो आश्चर्य की बात न होगी। हालांकि आर्य समाज, एम.पी. चौधरी, एस.डी. राय और एस. एन रॉय इस हतोत्साहित करने वाली स्थिति में भी अपनी अवैतनिक सेवा को जारी रख रहे हैं।¹²

‘द स्ट्रेट्स टाइम्स, 24 अगस्त 1949, पेज 7’ के अनुसार पिनांग, कुआलालम्पुर के साथ सिंगापुर में हिंदी परीक्षाएं होंगी।¹³

शुरुआती हिंदी का स्वरूप

प्रारंभ में हिंदी शिक्षण बहुत सफल नहीं रहा। कुछ लोगों के प्रयास ने इसे कुछ समय तक जीवित तो रखा पर धीरे-धीरे यह कम होने लगा। शुरुआती लोगों में हिंदी बेल्ट से आने वाले ज्यादातर लोग भोजपुरी भाषी थे अतः उन्होंने भोजपुरी को तो घर में जीवित रखा पर हिंदी को बचाने की अधिक कोशिश नहीं की।

हिंदी शिक्षण की आवश्यकता व प्रयास

विदेशों में हिंदी सीखने के कारण अनेक हैं- कहीं सांस्कृतिक संबंधों को दृढ़तर बनाने की इच्छा, कहीं अपनी अस्मिता बनाए रखने की चिंता, कहीं विशुद्ध रूप से ज्ञानार्जन की इच्छा, कहीं राजनैतिक प्रचार अथवा सामाजिक लाभ की दृष्टि, कहीं निजी लाभ, कहीं भारत का भ्रमण और भारतीय फिल्मों को जानने की इच्छा, कहीं भारत के साहित्य और संस्कृति को जानने की इच्छा आदि। ऐसा भी कहा जाता है कि द्विभाषी लोग एक भाषा से दूसरी भाषा में सोचने और बोलने का काम आसानी से कर पाते हैं और इससे उनके दिमाग की खासी कसरत हो जाती है, जो उन्हें भूलने की बीमारी से लंबे समय तक बचाकर रखती है।¹⁴ जो भी हो, इन सब कारणों से सिंगापुर में हिंदी का अध्ययन तथा अध्यापन विविध रूप से होता आ रहा है।

सिंगापुर को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में 9 अगस्त 1965 को पहचान मिली। उस समय ‘मलय’ भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया जबकि चीनी, अंग्रेजी और तमिल को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया गया। सरकार ने विद्यालयों में द्विभाषी नीति की शुरुआत 1966 में की।

जब बच्चा अपनी मातृभाषा सीखता है तो उसे ज्यादा श्रम नहीं करना पड़ता क्योंकि कहीं न कहीं उसके जेहन में वे शब्द, वाक्य रचना समाहित होती है। परंतु जब उसे परिश्रम से सीखना पड़ता है तो कुछ बच्चे आसानी से सीख लेते हैं पर कुछ को एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ता है। घर पर एक भाषा, दोस्तों के साथ दूसरी और पढ़ने में कोई और भाषा।¹⁵

सिंगापुर में मातृभाषा का अध्ययन आवश्यक होने के कारण हर विद्यार्थी अगर संभव हो तो, अपनी मातृभाषा को चुनकर पड़ता है, पर विश्व की सारी भाषाएं तो किसी भी देश में सिखाना जरा अतिशयोक्ति ही होगी। अतः यहां भी विद्यालयों में सिर्फ तीन भाषाओं चीनी, मलय और तमिल को ही पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। सरकार के इस कदम से अन्य भारतीय भाषाओं के बच्चों को मजबूरन चीनी, मलय, तमिल में से एक भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में चुनना पड़ा। यह विकल्प

उनके लिए सहज नहीं था। विद्यार्थियों को इन भाषाओं के कारण शैक्षणिक उपलब्धियों में काफी नुकसान उठाना पड़ता था, साथ ही उनकी रुचि भी भाषा-अध्ययन के प्रति विकसित नहीं हो पा रही थी।

6 अक्टूबर 1989 का दिन सिंगापुर में हिंदीभाषियों के लिए अत्यंत खास रहा क्योंकि इसी दिन संसद में शिक्षामंत्री श्री टोनी तानजी ने घोषणा की कि गैर तमिलभाषी भारतीय छात्र माध्यमिक विद्यालय में पांचों (हिंदी, गुजराती, पंजाबी, बंगाली, उर्दू) में से एक भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में 1990 से पढ़ सकते हैं अर्थात् अब दसवीं यानी ‘ओ लेवल’ की परीक्षा छात्र हिंदी में लिख सकते थे।¹⁶

हिंदी संस्थान : स्थानीय व अंतरराष्ट्रीय

हिंदी को मान्यता मिलने के बाद कक्षाएं शुरू करना, योग्य अध्यापक मिलना, उचित पाठ्यक्रम तैयार करना जैसी अनेक समस्याएं सामने आई। आज स्थानीय विद्यालयों में द्वितीय भाषा के रूप में ‘हिंदी सोसाइटी ऑफ सिंगापुर’ या ‘डी.ए.वी. हिंदी स्कूल’ द्वारा संचालित कक्षाएं चलाई जाती हैं लेकिन 1989 में यह प्रयास सिर्फ हिंदी सोसाइटी ऑफ सिंगापुर द्वारा ही शुरू हुआ। पहले ये दोनों संस्थाएं स्वतंत्र रूप से शिक्षा मंत्रालय के बनाए पाठ्यक्रम पर कार्य करती थीं पर अब शिक्षा मंत्रालय ने ‘बीटीटीएसएल’ (Board for Teaching and Testing South Asian Languages) नामक बोर्ड के अंतर्गत इन दोनों संस्थाओं को कर दिया है। ये दोनों संस्थाएं स्थानीय विद्यालयों के छात्रों के लिए कक्षाएं संयोजित करती हैं। इन विद्यालयों में दसवीं और बारहवीं में हिंदी के लिए ‘कैब्रिज बोर्ड’ की परीक्षा लेनी पड़ती है।

इनके अलावा सिंगापुर में कई अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में हिंदी द्वितीय व तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। इन विद्यालयों में मुख्य नाम ‘ग्लोबल इंडियन इंटरनेशनल स्कूल’, एनपीएस इंटरनेशनल स्कूल, डीपीएस इंटरनेशनल स्कूल, युवा भारती इंटरनेशनल स्कूल, यूनाइटेड वर्ल्ड कॉलेज आदि हैं।

यूनाइटेड वर्ल्ड कॉलेज में सिर्फ ‘इंटरनेशनल बैकलौरेट डिप्लोमा (आईबी)’ पाठ्यक्रम के तहत हिंदी पढ़ाई जा रही है जबकि अन्य भारतीय विद्यालयों में ‘सीबीएसई’ या ‘आईसीएसई’ जैसे भारतीय पाठ्यक्रमों के तहत भी हिंदी पढ़ाई जा रही है और ‘आईजीसीएसई’ और ‘आईबी’ जैसे विदेशी पाठ्यक्रमों के अनुसार भी।

सिंगापुर के दो प्रमुख विश्वविद्यालयों ‘नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर’ और नान्यांग टेक्नोलॉजिकल यूनिवर्सिटी में भी हिंदी विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाई जा रही है। इसे फिलहाल ‘इलेक्ट्रिव कोर्स’ के रूप में पढ़ाया जा रहा है पर उम्मीद है जल्द ही हिंदी में ‘माइनर’ अर्थात् गौण डिग्री भी उपलब्ध हो जाए। इस दिशा में प्रयत्न जारी हैं। इसके साथ ही व्यस्कों के लिए निजी रूप से कक्षाएं भी लगाई जाती हैं और उनमें भी हिंदी सीखने वालों की काफी संख्या दिख जाती है।

हिंदी पढ़ने वाला वर्ग लगभग 9-10 हजार छात्र सिंगापुर में हिंदी को द्वितीय या तृतीय भाषा के रूप में पढ़ रहे हैं तो अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर इतनी बड़ी संख्या में हिंदी पढ़ने वाला वर्ग है कौन?

स्थानीय विद्यालयों की बात करें तो सिंगापुर में द्विभाषी नीति अनिवार्य है और सिर्फ छह भारतीय भाषाओं तमिल, हिंदी, गुजराती, बंगाली, पंजाबी और उर्दू को मान्यता प्राप्त है। तमिल का दर्जा अलग है। वह यहां की चार औपचारिक भाषाओं में से एक है अतः लगभग सभी विद्यालयों में मातृभाषा के घंटे में पढ़ाई जाती है। अन्य पांचों भाषाओं में से हिंदी संस्थाओं का प्रयास ही सबसे

अधिक रहे हैं और इसी कारण हिंदी कई विद्यालयों में मातृभाषा के घटे में ‘हिंदी सोसाइटी’ या ‘डीएवी’ द्वारा पढ़ाई जा रही है। यह एक बड़ा कारण है हिंदी के प्रति बढ़ते रुझान का।

भारत से आए अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में भी द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी, तमिल और फ्रांसीसी ही पढ़ाई जा रही है। समय की मांग के अनुसार अब कुछ विद्यालय स्पेनिश और चीनी जैसी भाषाएं भी पढ़ाने लगे हैं। भारतीय भाषाओं में तमिल और हिंदी या केवल हिंदी का ही विकल्प उपलब्ध होने के कारण कई बार न चाहते हुए भी छात्र हिंदी ही चुनते हैं।

वर्ष 2014 में हिंदी को लेकर एक सर्वेक्षण किया गया था। यहां हिंदी पढ़ने वाले छात्रों की मातृभाषा पर गौर करने पर कुछ अन्य सवाल भी खड़े होते हैं- उन विद्यार्थियों से बात करने पर यह स्पष्ट था कि अभिभावकों के दबाव या अन्य विकल्प न होने की स्थिति में उन्होंने यह भाषा चुनी है। यही कारण है कि काफी छात्रों को यह बोझ लगती है।

छात्रों से बातचीत करने पर ‘आपने यह भाषा क्यों चुनी?’ या ‘आप इस भाषा का इस्तेमाल कहां करेंगे?’ जैसे प्रश्नों का उत्तर बहुत निराशाजनक होता है। माता-पिता का दबाव, सरकारी नीतियों का रोना, कोई अन्य विकल्प न सूझना, कहीं यह भाषा काम नहीं आने वाली, एक बोझ ढ़ो रहे हैं जैसे वाक्य मन को व्यथित ही करते हैं। फिल्में देखना या हिंदी गानों पर नाचना तो काफी छात्रों को अच्छा लगता है और वे इसमें बड़ा आनंद भी लेते हैं पर हिंदी पढ़ना भार समान लगता है। इसके कई कारण भी उनकी बातों से उजागर होते हैं। आखिर भारत में ही हिंदी छूटती जा रही है। हिंदी पढ़कर कोई काम देश में ही नहीं मिलता तो विदेश में इसकी क्या उपयोगिता?

एक सच यह भी सामने आता है जैसा कि आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि हिंदी पढ़ने वाले 50 प्रतिशत से ज्यादा विद्यार्थी गैर हिंदीभाषी हैं तो इस स्थिति में हिंदी एक तीसरी भाषा के रूप में उन पर बहुत अधिक जोर डालती है।

‘हिंदी मेरी मातृभाषा नहीं है और मैं अंग्रेजी में अच्छी तरह बात कर सकता हूं। हिंदी में बात नहीं कर सकता।’ इस तरह के वाक्य एक नहीं कई विद्यार्थियों के हैं। लगभग 8-10 वर्षों से हिंदी पढ़ने के बावजूद हिंदी का यह स्तर है।

स्थानीय विद्यालयों में हिंदी अध्यापन

हिंदी जब भारतीय परिवेश से बाहर निकलती है तो अपने साथ कई चुनौतियां भी लाती है। विदेशियों को हिंदी सिखाने के लिए कई तरह की पुस्तकों की रचना की गई पर वे सिर्फ व्यावहारिक प्रशिक्षण तक ही सीमित रहीं। सिंगापुर में चूंकि हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में मान्यता मिली अतः यह जिम्मेदारी ज्यादा गहन हो गई कि इस मांग को पूरा कैसे किया जाए।

शुरुआत तो कुछ भारतीय पुस्तकों के सहारे से ही हुई। इन पुस्तकों को पूरा न पढ़ाकर रोचक, सूचनाप्रद एवं बच्चों के हिसाब से पाठ चुने जाते थे। भारत के हिसाब से कक्षाओं में एक-दो कक्षा नीचे की पुस्तकों लगाई जाती थीं। इस प्रकार भारत से बाहर रहने के कारण कठिनाई के स्तर को कम करने का प्रयास किया जाता था क्योंकि हिंदी पढ़ने वाले सभी हिंदीभाषी नहीं होते। अगर वे हिंदीभाषी भी हैं तो शायद दूसरी या तीसरी पीढ़ी के हैं जहां हिंदी अब एक विदेशी भाषा ही बन गई हो।

इन पुस्तकों के अलावा कैब्रिज की परीक्षा को ध्यान में रखते हुए वर्कशीट अर्थात् अभ्यास पत्र अध्यापिकाओं द्वारा तैयार किए जाते थे। इन अभ्यास पत्रों में व्याकरण पर काफी जोर रहता था ताकि

विद्यार्थियों को व्याकरण का अभ्यास ठीक तरीके से करवाया जा सके। यहाँ यह जान लेना आवश्यक हो जाता है कि सिंगापुर के स्थानीय विद्यालयों में प्रयुक्त सभी बोर्ड हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में मानकता प्रदान करते हैं। इन परीक्षाओं में कुछ भी पहले से पढ़ा हुआ नहीं आता अर्थात् सब कुछ अपठित होता है। अध्यापिकाओं के लिए यह भी एक तरह की चुनौती है कि उन्हें भाषा के कौशल सिखाना है कुछ भी रटवाकर काम नहीं निकल सकता। भाषाई कौशल सिखाना इतना आसान नहीं।

जब से ‘बोर्ड फॉर टीचिंग एंड टेस्टिंग साउथ एशियन लैंग्वेज’(BTT SAL) ने सभी पांच भाषाओं का अपनी देखरेख में निरीक्षण करना शुरू किया है तब से अभ्यास पत्रों या पाठ्य सामग्री में भी परिवर्तन शुरू हो गया है। कुछ समय पूर्व बीटीटीएसएल बोर्ड ने सभी पांच भाषाओं में एक जैसी पाठ्य सामग्री का निर्माण करवाया। पहले ये पुस्तकें अंग्रेजी में बनीं तदुपरांत इनका अनुवाद पांचों भाषाओं में किया गया। जाहिर है हिंदी सोसाइटी व डीएवी हिंदी स्कूल में एक तरह की ही पुस्तकें प्रयुक्त होने लगीं। अभ्यास पत्रों को इन पुस्तकों में ही समाहित कर दिया गया तो अब अलग से अभ्यास पत्र देने की प्रथा कम या कहाँ खत्म हो गई है।

इन पुस्तकों के गहन निरीक्षण और कई छात्रों तथा उनके माता-पिता से बातचीत के बाद कुछ तथ्य सामने आए जैसे कि पाठ्यक्रम को एक सा करने की होड़ में किताबें एक-सी तो कर दी गई हैं पर संस्कृति का पुट खत्म सा हो गया है।

पहले कुछ तुलनात्मक बातों की ओर नजर डालना समीचीन होगा- कई माता-पिता के अनुसार, ‘पहले वर्कशीट हर सत्र में नई बनती थी तो गद्यांश ज्यादा अद्यतन होते थे और साथ ही गुजरातीभाषी जब वर्कशीट बनाएगा तो अपने आप उसमें गुजराती के तत्व समा जाएंगे और यही हिंदी के साथ भी था। बच्चों को कई हिंदी रचनाकारों, कई संस्कृतियों के बारे में कब सिखा दिया जाता, पता ही नहीं चलता था। आज जो चलन है वह सिर्फ भाषा पर है।’

सीधे-सीधे अनुवादित किताबें कई बार भाषा भी नहीं सिखा पातीं। वैसे भी पाठ्यक्रम एक होने के लिए कहानियां या चित्र एक ही होना कहाँ तक उचित है? क्या बच्चों को वह परिवेश नहीं दिखाना चाहिए जिससे वो ताल्लुक रखते हों? और किताबों में पंजाबी प्रभाव कुछ ज्यादा है खासकर चित्रों में। कुछ भारतीय कहानियां या रोचक घटनाओं का समावेश अवश्य इन पुस्तकों में हुआ है और विविधता का प्रयास भी किया गया है पर इन पुस्तकों ने अध्यापकों की रचनात्मकता को खत्म कर दिया है। उनमें अब बस पुस्तक को खत्म करने की होड़ है बच्चे को क्या समझ आया, क्या नहीं इससे ज्यादा लेना-देना नहीं?

अब लिंगिया के बारे में अगर एक गद्यांश है और उसका लक्ष्य बच्चों को भौगोलिक स्थिति से जुड़े शब्द या वाक्यांश सिखाना है तो क्या उसकी बजाय कश्मीर या राजस्थान का कोई हिस्सा लेकर वही बातें नहीं सिखाई जा सकतीं! फिर बच्चा अपनी अंग्रेजी की कक्षा में भी लिंगिया के बारे में पढ़ सकता है पर कितनी अंग्रेजी कक्षाओं में उसे राजस्थान या कश्मीर के बारे में बताया जाएगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि स्थानीय विद्यालयों में हिंदी पढ़ने वाले सिर्फ अप्रवासी भारतीयों के बच्चे नहीं हैं बल्कि दूसरी-तीसरी या चौथी पीढ़ी के वे भारतीय भी हैं जिनका अब भारत से नाता न के बराबर रह गया है। उनमें से कई तो कभी भारत गए ही नहीं हैं। कई बार अनुवाद भी इस ढंग से है कि वह हिंदी का नहीं अंग्रेजी का ही वाक्य लगता है। अनुवाद में भाषा कई बार अपना

मूल तत्व खो देती है।

जस तरह के शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है उस पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। प्राथमिक विद्यालयों में मौखिक अभिव्यक्ति को काफी बड़ा स्थान दिया जाता है क्योंकि 25% अंक मौखिक अभिव्यक्ति पर ही होते हैं। ऐसा नहीं है कि परीक्षा में अब तक ऐसा कोई विचित्र दृश्य आया हो पर तैयारी में अध्यापक व माता-पिता न जाने कैसे-कैसे चित्रों का अभ्यास बच्चों से करवाते हैं।

कुछ उदाहरणों द्वारा इस बात को स्पष्ट करना बेहतर होगा-अंग्रेजी में बिजली से चलने वाली सीढ़ियों को एस्केलेटर (Escalator) कहा जाता है। अब भारतीय संस्कृति में तो ‘सीढ़ियां’ या ‘जीना’ ही था तो इस नई परिकल्पना को यहां की हिंदी अध्यापिकाओं ने नाम दिया ‘स्वचालित सीढ़ियां’। ऐसे ही कई अन्य हिंदी नाम दिए गए जैसे- इमारत का भूतल, झुम्मा-झुम्मी, स्वचालित दूरभाष आदि।

अब कल्पना कीजिए बच्चा अपनी मौखिक प्रस्तुति में कहता है कि राम अपने दोस्त के साथ स्वचालित सीढ़ियों पर था तभी इमारत के भूतल में उसे सोहन स्वचालित दूरभाष पर वार्तालाप करते हुए दिखा। क्या यह वाक्य स्वाभाविक होगा? अगर इसकी जगह वह बोले कि राम अपने दोस्त के साथ सीढ़ियों पर था तभी उसे सोहन फोन पर बात करते हुए नीचे दिखा, तो क्या गलत है? सीढ़ी तो सीढ़ी ही होगी और निचला तल नीचे ही होगा। आखिर यह कैसी हिंदी सिखाई जा रही है? परेशान सब हैं चाहे माता-पिता हों या छात्र, बस सबके हाथ बंधे हैं और कोई कुछ नहीं कर सकता है। 12 साल का बच्चा पीएसएलई की परीक्षा देता है और इसी उप्र में उससे अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसे भारी-भरकम शब्दों व वाक्यों का प्रयोग करे जिनका भारत में रहने वाले बच्चे भी नहीं करते जहां चौबीस घंटे हिंदी का माहौल ही रहता है। उसे खुद से ऐसे-ऐसे विचार देने होते हैं जो वह उस स्थिति को देखकर किसी बड़े की तरह सीख दे सके।

एक दूसरा उदाहरण, प्राथमिक दो में चिड़िया का पिंजरे में से निकलते हुए एक चित्र आया और उन बच्चों को अच्छे अंक मिले जो बता पाएं कि स्वतंत्रता पक्षियों को ही नहीं सबको प्रिय होती है। उनको नहीं जिसने कहा कि चिड़ियों को खुले आसमान में उड़ना अच्छा लगता है क्योंकि यही उनका काम है। ऐसी स्थिति में हिंदी से मन उचटना जायज है और आज ऐसा ही कुछ यहां हो रहा है। हिंदी को क्लिप्ट से क्लिप्टम किया जा रहा है और शायद अंक भी उन्हें ही दिए जाते हैं जो या तो भारी-भरकम शब्दावली के जाल में परीक्षक को फँसा सके या जो मात्राओं की गलतियां न करता हो।

दक्षिण भारतीय पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों का बड़ा वर्ग हिंदी कक्षाओं में है। चूंकि उनके लिए हिंदी कक्षाओं तक ही सीमित है, वे इस भाषा से जूझ रहे हैं। कहीं-कहीं उचाटपन का बड़ा ही वीभत्स रूप दिखाई देने लगा है। कई वर्षों तक यह भाषा पढ़ने के बाद भी दो वाक्य भी ठीक ढंग से अगर बोलना न आए तो मन कुंठित होगा ही।

निष्कर्ष

सिंगापुर में भारतीयों के मध्य हिंदी भाषा ने अपनी पकड़ काफी हद तक बना ली है। शिक्षण के क्षेत्र में हिंदी के लिए जो कार्य हो रहा है, वह अवश्य सराहनीय है। स्थानीय पाठ्यक्रम में लगभग सात हजार विद्यार्थी हिंदी को मातृभाषा के रूप में पढ़ रहे हैं। इतनी बड़ी संख्या में हिंदी लेने वालों को देखकर भविष्य में हिंदी की बढ़त को नकारा नहीं जा सकता। शिक्षण व प्रशिक्षण से संबंधित कई सवाल समय-समय पर उठते रहे हैं और रहेंगे, पर कम से कम आधार तो भारतीय जनता को

मिल ही रहा है। एकभाषी देशों में तो धीरे-धीरे हिंदी सिफ बोलचाल तक ही कुछ घरों में सीमित रह गई है जबकि सिंगापुर की द्विभाषी नीति ने पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर इसके लिखित रूप को भी जीवित रखा है। यहां के बालक व किशोर पढ़ाई व अंकों के डर से ही सही, भाषा पढ़ने-लिखने-बोलने का प्रयास कर रहे हैं।

इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि हिंदी पढ़ना कई विद्यार्थियों के लिए बोझ से कम नहीं खासकर जब उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हिंदी भाषी न हो या मिश्रित संस्कृतियों के बाहक हों। अंतरजातीय विवाह का चलन आज कई सामाजिक कुरीतियों का दमन कर रहा है। इसने दहेज, जाति-पांति जैसी समस्याओं को रोकने में पहल दिखानी शुरू की है पर इस पहल के कारण भाषाई संस्कृति पर खतरा मंडराने लगा है। माता-पिता की भिन्न भाषी पृष्ठभूमि बच्चे के भाषाई अस्तित्व पर प्रश्न लगा देती है। बच्चा माता की भाषा बोले या पिता की, यह प्रश्नचिह्न के घेरे में आ जाता है। ऐसी स्थिति में ज्यादातर बच्चे अंग्रेजी जो विश्व की ‘लिंगुआ फ्रांका’ का दर्जा पा रही है, को चुनना पसंद करते हैं। सिंगापुर में भी यही हाल है। कई युवक सिफ इसलिए हिंदी से दूर हैं क्योंकि माता-पिता में कोई एक हिंदी भाषी है। ऐसी स्थिति में घर में संपर्क की भाषा अंग्रेजी बन गई है और हिंदी से दुराव उत्पन्न हो गया है। कुछ परिवार ऐसे भी हैं जिनमें माता-पिता ने अपनी-अपनी मातृभाषा को बच्चों तक पहुंचाने का प्रयास किया है पर बहुत कम ही इसमें सफल हो पाए हैं। ज्यादातर महज गिनी-चुनी संज्ञाओं तक ही सीमित रह गया है।

हिंदी के स्तर पर भी काफी बहस करने की आवश्यकता है क्योंकि जिस प्रकार की अनुवादित भाषा को माध्यम बनाया जा रहा है वह किताबों तक ही सीमित रह जाएगी। स्थानीय ही नहीं अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में भी हिंदी की सहजता आवश्यक है, अन्यथा फ्रांसीसी पढ़ने का जो रुझान बन रहा है, वह हिंदी के विकास के लिए धातक साबित हो सकता है। आज ऐसा लगने लगा है कि अधिक विद्यार्थी हिंदी से पीछा छुड़ाना चाहते हैं और फ्रांसीसी पढ़ना चाहते हैं। यह भी सत्य है कि फ्रांसीसी को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है जो अपेक्षाकृत काफी आसान होता है। भाषा संवाहक होनी चाहिए अन्यथा उसकी रोचकता और उपयोगिता खत्म हो जाएगी। शब्दों का अनुवादित जाल बुनने की बजाय अगर बोलचाल की भाषा पर जोर दिया जाए तो मुकिन है ज्यादा पहुंच बढ़ पाएगी। शब्द हमारे जीवन के अंग के समान हैं, वे हमारी किसी न किसी मानसिक अवस्था का चिन्ह होते हैं, अतः जीवन की गतिशील चेतना के साथ क्रमशः परिवर्तित एवं विकसित होने वाली भाषा जीवंत भाषा होती है, पर जीवंतता में सहजता होना भी आवश्यक है। इस दिशा में विश्लेषण की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. http://eresources.nlb.gov.sg/infopedia/articles/SIP_93_2005-01-26.html
2. Miksic, J. N. (1984). Archaeological research on the “Forbidden Hill” of Singapore: Excavations at Fort Canning pp. 19-23. Singapore: National Museum.
3. A history of Singapore. /edited by Ernest C.T. Chew and Edwin Lee. Singapore : Oxford University Press, 1991
4. http://en.wikipedia.org/wiki/Straits_Settlements

5. 'India and Indians in the making of Singapore, 1819-1990' (with Andrew Major), in Singapore-India Relations: A Primer, edited by Assoc Prof Yong Mun Cheong, pp. 1-20. Singapore: Singapore University Press, 1995.
Extract by Brij V. Lal, Peter Reeves and Rajesh Rai (eds.), The Encyclopedia of the Indian Diaspora, Singapore: Editions Didier Millet, 2007.p 177
Singapore under 'Indian' rule (1826-67)
6. Kahe Gaile Bides, Where Did You Go?: by Mousumi Majumder (Dec 2010) p19,58
7. Brij V. Lal, Peter Reeves and Rajesh Rai (eds.), The Encyclopaedia of the Indian Diaspora, Singapore: Editions Didier Millet, 2007, p 176,177
8. Indian Communities in Southeast Asia, edited by K.S. Sandhu & A. Mani, Times academic Press, 1993, pg-774
9. Brij V. Lal, Peter Reeves and Rajesh Rai (eds.), The Encyclopaedia of the Indian Diaspora, Singapore: Editions Didier Millet, 2007.p177
10. INDIA FEVER THE NEW INDIAN PROFESSION IN SINGAPORE, 2009, Amrit Barman, Singapore Indian association book series no.2, p4
11. Keynote Address by DPM Lee at StanChart Conference, 2004, Mumbai
12. The Singapore free press and mercantile advertiser 1884-1942, 27 Jan 1931 page 18
13. The Straits times, Singapore, 24 Aug 1949 page 7
14. Possible benefits for infants exposed to two languages, Straits times article, 3rd Sep2014, pg A3
15. Life with Two languages: an introduction to bilingualism, Francois Georsjean, p. 99-103
16. The Straits Times, Singapore, 7 oct 1989, p24

हिंदी और दक्षिण कोरियाई भाषाओं में अनुवाद

दिविक रमेश

सबसे पहले मैं अपने बंगाल की भूमि को नमन करता हूं जिसने हमें ही नहीं बल्कि कोरिया सहित पूरे विश्व को साहित्य, संस्कृति और विचार के क्षेत्र में, गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के रूप में, एक सदाबहार महत्व का नायाब प्रेरणादायी उपहार दिया है। इस कथन को मैं कोरिया के संदर्भ में विशेष रूप से रेखांकित करना चाहता हूं।

वस्तुतः कोरिया में भारत की विशिष्ट पहचान प्रायः बुद्ध, गांधी और टैगोर के देश के रूप में होती आई है। बौद्ध धर्म तो एक समय में कोरिया का राजधर्म भी रहा है। 1929 में, अर्थात् जापान के पराधीन कोरिया के समय में टैगोर द्वारा लिखित कुछ कवितानुमा पंक्तियां ‘पूर्व का दीप’ कोरिया के बच्चे-बच्चे की जबान पर हैं जिन्हें उन्होंने जापान में रह रहे अपने देश के लिए स्वतंत्रता के इच्छुक युवा कोरियाई के अनुरोध पर अपने हस्ताक्षर के साथ लिखा था। नोबल पुरस्कार को एशिया के कोरियाई लोगों ने एशिया के पहले साहित्यकार को मिले पुरस्कार के रूप में अपनाया था। खैर। ये पंक्तियां मूलतः अंग्रेजी में लिखी गई थीं जिनका लगभग 62 वर्ष बाद पहली बार मुझे ही, अपने दक्षिण कोरिया-प्रवास के समय, हिंदी-अनुवाद करने का मौका मिला। यह अनुवाद, टैगोर सोसायटी ऑफ कोरिया की संस्थापक-सदस्या पद्ममंत्री सम्मान से विभूषित पहली और अब तक अकेली कोरियाई तथा साहित्य अकादेमी का फेलो के रूप में सर्वोच्च सम्मान भी प्राप्त करने वाली वरिष्ठ कवयित्री किम यांग शिक के आग्रह पर किया गया था जिसे वे अपने द्वारा संपादित पत्रिका कोरियन इंडियन कल्चर के पिछले पृष्ठ पर कोरियाई अनुवाद और अंग्रेजी मूल के साथ प्रकाशित करती हैं। अनुवाद में पंक्तियां हैं :

एशिया के स्वर्णिम युग में
रहा कोरिया एक दीप वाहकों में
और कर रहा फिर प्रतीक्षा
वही दीप होने को ज्योतित
करने को फिर से आलोकित
पूरब का प्रांगण यह सारा
मूल अंग्रेजी पाठ इस प्रकार है :
In the golden age of Asia

*Korea was one of its lamp-bearers,
And that lamp is waiting
To be lighted once again
For the illumination of the East.*

जानकर अचरज नहीं होना चाहिए कि इन पंक्तियों ने उस समय तो कोरिया को एक नया उत्साह और ऊर्जा दी ही थी लेकिन 1945 में स्वतंत्र होने के बाद भी इनका महत्व नहीं घटा। इनका कोरियाई अनुवाद स्कूल स्तर पर पाठ्यक्रम में लगा कर टैगोर (जिसका उच्चारण वे ठागोर करते हैं) और भारत को सम्मान दिया। सच तो यह है कि टैगोर के लेखन और विचारों ने कोरिया के अनेक साहित्यकारों को प्रभावित किया है जिनमें सर्वोपरि नाम हान योंग उन का है जो मानहे के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस संदर्भ में विस्तार से अंग्रेजी में लिखे मेरे एक लेख ‘टैगोर : ए सांग ऑफ होप इन डिस्पेर (Tagore : A Song of Hope in Despair) जो साहित्य अकादमी, नई दिल्ली की अंग्रेजी पत्रिका ‘इंडियन लिटरेचर’ के मई-जून, 2012 अंक में प्रकाशित हुआ था को पढ़ा जा सकता है।

मूल विषय पर आने से पहले, कोरिया और भारत को मजबूती से जोड़ने वाले प्रमुख सूत्रों में दो और का जिक्र संक्षेप में करना चाहता हूं। एक है बौद्ध धर्म और दूसरा है अयोध्या की राजकुमारी का कोरियाई राजा से विवाह। सब जानते हैं कि बौद्ध धर्म चीन से कोरिया होते हुए जापान गया था। बौद्ध धर्म की वैचारिकी ने कोरियाई साहित्य को भी प्रभावित किया है।

पहली शताब्दी के 48वें साल में अयोध्या की राजकुमारी हो (हॉ) हवांग ओक और (किमहे) गाया राज्य के राजा किम सूरो (जिनका जन्म अंडे से माना जाता है) के विवाह की कथा (समग्रुक यूसा, 1986, पृ. 158) में आती है। इस कथा को किवदंती अथवा मिथक भी मान लिया जाए तो भी कोरियाई लोगों की भारत के साथ अपने सांस्कृतिक संबंध जोड़ने की ललक की पुष्टि तो यह कथा भी कर ही देती है।

अतः भारत और कोरिया में एक दूसरे के प्रति भारतीय और कोरियाई लोगों की बढ़ती हुई दिलचस्पी के उपर्युक्त ये सांस्कृतिक, पारंपरिक एवं महत्वपूर्ण कारण तो हैं ही, इधर पिछले कुछ वर्षों में कोरियाई कंपनियों की भारत में होती गई प्रभावशाली उपस्थिति ने व्यावहारिक जरूरत के तौर पर भी भारत और हिंदी को कोरियाई लोगों के करीब ला दिया है। विशेष रूप से कोरिया की नई पीढ़ी में भारत और हिंदी का महत्व सहज ही बढ़ भी रहा है। मीडिया ने इस कार्य को सुगमता भी प्रदान की है।

उत्सुकता हो सकती है कि कोरियाई नई पीढ़ी में हिंदी सीखने के लिए दिलचस्पी बढ़ने के मुख्य कारण जाने जाएँ। बातचीत के आधार पर ही कह सकता हूं कि सर्वप्रमुख कारण तो भारत की संस्कृति, जीवन और दर्शन की गहरी जानकारी लेना है। वस्तुतः आज भारत के अनेक पक्षों को उजागर करने वाली सामग्री कोरियाई भाषा में उपलब्ध है। उनकी जानकारी ने कोरियाई नई पीढ़ी को भारत के संबंध में विस्तार और गहरे से जानने का इच्छुक बना दिया। और इस तरह वे हिंदी के अध्ययन की ओर झुके। कोरियाई अपनी भाषा को बहुत महत्व देते हैं। अतः भारत की भाषा हिंदी के प्रति, भारत को जानने की दृष्टि से, उनका झुकाव स्वाभाविक ही माना जाएगा। यह भ्रम भी काफी हद तक टूटा है कि भारत को अंग्रेजी के माध्यम से पूरी तरह जाना जा सकता है और यह भी कि

अंग्रेजी जानकर भारत में पूरी तरह काम चलाया जा सकता है। व्यवसायियों ने तो इस तथ्य को और अच्छे ढंग से समझ लिया है। वे अपने प्रबंधकों को भारत भेजने से पहले कामचलाऊ हिंदी सीखने की सलाह देते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में जो बदलाव आए हैं और जिस प्रकार वह विश्व के लिए खुलती गई है, उस कारण से भी कोरियाई नई पीढ़ी भारत और भारत की कोरिया में उपलब्ध भाषा हिंदी की ओर उत्सुक हुई है।

एक और दिलचस्प कारण की जानकारी चौंका सकती है। कोरिया में एक विशेष धर्म के लोग हैं। वे अपने धर्म को ‘यो हो वा ज्युन इन’ कहते हैं। वे इसका प्रचार कोरिया के बाहर भारत में भी करना चाहते हैं। अतः हिंदी सीखने वाले कुछ ऐसे कोरियाई विद्यार्थी भी हैं जो अपने धर्म के सार्थक एवं व्यापक प्रचार के लिए हिंदी सीखते हैं। इसका प्रभाव यूं अभी कम ही देखने को मिल रहा है।

हिंदी सीखने वाले विद्यार्थियों को तीन समूहों में बांटा जा सकता है। एक वर्ग है जो कोरिया में औपचारिक रूप से हिंदी सीखता है, उपाधि प्राप्त करता है। दूसरा समूह ऐसा है जो अपने आप हिंदी सीखता है और तीसरा वह है जो भारत जाकर हिंदी सीखता है।

हाँ कोरियाई भाषा के सीखने-सिखाने के अवसरों और साहित्य आदि की उपस्थिति भारत में भी बढ़ी है। दिल्ली, हैदराबाद, नालंदा आदि स्थानों पर तो विशेष रूप से कोरियाई विश्वविद्यालयी स्तर पर पढ़ाई जा रही है।

जहां तक हिंदी का विशिष्ट कोरियाई संदर्भ है, बहुबी एवं विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वह अपने वर्तमान रूप में तो उत्साहवर्धक है ही, साथ ही प्रभावशाली संभावनाओं से भी लहलहा रहा है। यह बात मैं अपने 1994 से 1997 तक आई.सी.सी.आर. की ओर से दक्षिण कोरिया में अपने अध्यापन से जुड़े प्रवास और अप्रैल 2007 में, अपनी दस दिवसीय दक्षिण कोरिया की राजधानी सोल की यात्रा से उपजे अनुभव के आधार पर पूरे आत्मविश्वास से दोहरा सकता हूं।

दक्षिण कोरिया में सोल स्थित हांगुक विश्वविद्यालय और बूसान स्थित पूसान विश्वविद्यालय भारत और हिंदी के पठन-पाठन के गढ़ हैं। हांगुक विश्वविद्यालय के एक कैंपस इमुन में हिंदी विभाग सन् 1972 में खुल गया था। दूसरे कैंपस योगिन में 1984 में खुला। इस विभाग के अंतर्गत हिंदी भाषा सीखने के साथ-साथ, व्याकरण, हिंदी साहित्य, भारतीय संस्कृति, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, भूगोल(क्षेत्रीय), मल्टी मीडिया, भारतीय व्यापार आदि का भी अध्ययन किया जा सकता है। बातचीत और संरचना पर भी जोर दिया जाता है जिसका दायित्व प्रायः भारतीय प्रोफेसर पर होता है। आजकल तो उर्दू भी सीख सकते हैं। विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी मिलती है। कोरिया में 12वीं कक्षा के परिणाम के आधार पर विश्वविद्यालय और विषय दिया जाता है। आज हिंदी विषय लेने वालों में खुशी से हिंदी लेने वालों का प्रतिशत 50 से ऊपर पहुंच गया है। बहुत अच्छे अंक प्राप्त करने वाले कोरियाई छात्र भी अपनी रुचि से हिंदी पढ़ना चाहते हैं। पहले हांगुक विश्वविद्यालय में लगभग 250 विद्यार्थियों के लिए 4 कोरियाई और एक भारतीय प्रोफेसर का प्रबंध था। आज तो वहां 5 कोरियाई और 4 भारतीय प्रोफेसर हो गए हैं।

पूसान (बूसान) विश्वविद्यालय में भी लगभग 120-130 विद्यार्थी हिंदी पढ़ रहे हैं। बूसान यूनिवर्सिटी में हिंदी विभाग 1983 में खोला गया था। कोरिया में हिंदी की प्रबल संभावनाओं और

वहां की युवा पीढ़ी में ‘हिंदी’ का अध्ययन करने और भारत के प्रति उनकी बढ़ती हुई जिज्ञासा का एक सबल प्रमाण यह भी है कि वहां के एक अत्यंत प्रतिष्ठित सरकारी विश्वविद्यालय- सोल नेशनल विश्वविद्यालय में भी सेमीस्टर के आधार पर हिंदी पढ़ाने का प्रबंध करना पड़ा।

बूसान विश्वविद्यालय में आजकल (नवंबर, 2017) हिंदी पढ़ा रहे युवा भारतीय प्रोफेसर धीरज मिश्र के अनुसार विश्वविद्यालय गुणवत्ता आदि की दृष्टि से पहले से काफी बेहतर हो गया है। इस समय वहां पहले ग्रेड में 55 और दूसरे ग्रेड में 20 विद्यार्थी हैं। चौथे ग्रेड के 14 विद्यार्थी जे.एन.यू. में प्रवेश-पाठ्यक्रम में संलग्न हैं और तीसरे ग्रेड के कुछ विद्यार्थी भी भारत के कोलकोता तथा अन्य स्थानों पर शोध संबंधी परियोजनाओं से जुड़े हैं। अर्थात् भारत आकर अध्ययन करना भी वहां के हिंदी के विद्यार्थियों की एक विशेषता है। कोरिया में हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों के समूह हर वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय में आकर 21 दिनों तक हिंदी सीखने के एक विशेष कार्यक्रम में हिस्सेदारी करते रहे हैं। अब अलग-अलग समूह में 4-4 महीने के लिए वर्ष भर आते हैं। पूरा खर्चा स्वयं वहन करते हैं। यही नहीं पूसान विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय के बीच भी आदान-प्रदान का एक करार हुआ था जिसके तहत वहां के विद्यार्थी यहां आकर एक महीने के लिए हिंदी का विशेष अभ्यास और अध्ययन कर सके। ये विद्यार्थी हिंदी के न होकर मैनेजमेंट के थे। हांगुक विश्वविद्यालय में भी व्यवस्थागत नया परिवर्तन हो चुका है। अपनी पिछाली यात्रा में मुझे हिंदी के विद्यार्थियों ने बताया कि फिलहाल इटेलियन, चीनी, सुहाली, स्पैनिश और जापानी भाषाओं के कुछ विद्यार्थी हिंदी भी सीख रहे हैं। प्रोफेसर धीरज मेजर हिंदी, धर्म और भारतीय संस्कृति तो पढ़ाते ही हैं साथ ही बिजनेस हिंदी भी पढ़ाते हैं जिसके अंतर्गत जैसी जरूरत हो वैसी हिंदी, साहित्य और इतिहास की पढ़ाई की जाती है। विशेष बात यह भी है कि पढ़ाते समय भाषा वैज्ञानिक औजारों का भी इस्तेमाल करना होता है। कहानी पढ़ाते हुए वाक्य, संरचना आदि की दृष्टि से भी पढ़ाया जाता है। जरूरत और सुविधा होने पर अंग्रेजी का भी सहारा ले लिया जाता है यद्यपि कोरियाई विद्यार्थी अंग्रेजी में बहुत पारंगत नहीं होते। पहले ग्रेड के बाद के विद्यार्थी हिंदी का भी प्रयोग करने लगते हैं। एक अन्य भारतीय अध्यापक जो कोरियाई भी जानते हैं विद्यार्थियों को बुनियादी व्याकरण और हिंदी बोलना सिखाते हैं। विभाग में चार वरिष्ठ अध्यापक और हैं जो कोरियाई हैं।

यूं तो कोरियाई विश्वविद्यालयों में हिंदी में बी.ए. की उपाधि के लिए ही सामान्यतः विद्यार्थी प्रवेश पाते हैं लेकिन व्यवस्था एम.ए. करने की भी है और पी-एच.डी. की भी। हांगुक विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी ने पी-एचडी के लिए संस्कृत-हिंदी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन भी किया है। हिंदी साहित्य में एम.ए. के लिए भी कुछ विद्यार्थी हैं। दिलचस्प यह जानना भी होगा कि प्रायः हर विद्यार्थी अपना हिंदी नाम भी रख लेता है। मसलन ओ मिन सैक ने आकाश, शिन स्योल योन ने सरला, ची योंग मिन ने सीता और किम ह्यन जिन ने जीवन नाम रखा है। वैसे यह चलन चीनी विद्यार्थियों में भी देखा जा सकता है। शायद अन्य देशों के विद्यार्थियों में भी।

हिंदी फिल्मों का पहले भी प्रभाव था लेकिन वह अब और अधिक बढ़ा है। यहां तक कि हिंदी के प्रति या हिंदी-अध्ययन को अधिक रोचक एवं दिलचस्प बनाने के लिए हिंदी फिल्मों का सहारा लिया जाता है। हांगुक विश्वविद्यालय के योगिन कैंपस के हिंदी के प्रोफेसर डॉ. ई उंग गू ने मल्टीमीडिया हिंदी-1 नामक पुस्तक तैयार की है जिसमें उन्होंने एक लंबी भूमिका तो लिखी ही है,

हिंदी फिल्मों और उनके गानों के संबंध में जानकारी भी दी गई है, साथ ही राष्ट्र गान के अतिरिक्त 37 पुराने-नए फिल्मी गानों का एक चयन भी प्रस्तुत किया है। वे इन गानों को विद्यार्थियों को सुनाते-सुनवाते हैं, गवाते हैं और फिर उनके विश्लेषण, उन पर बातचीत के आधार पर हिंदी में बोलने और लिखने का अभ्यास भी कराते हैं। प्रो. ई उंग गू ने भारत में ही डॉ. रामदरश मिश्र के निदेशन में 'प्रेमचंद एवं योम सेंग सोप के उपन्यासों में यथार्थ चेतना : तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर पी. एच.डी की उपाधि प्राप्त की थी। भारतीय संस्कृति में उनकी गहरी दिलचस्पी है और उसके ज्ञाता भी हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति संबंधी एक पुस्तक भी लिखी है- कोरियाई भाषा में। 477 पृष्ठों का यह एक गंभीर कार्य है।

हिंदी के ही (अब सेवानिवृत्त) वरिष्ठ प्राचार्य प्रो. ली.जंग हो ने स्वातंत्र्योत्तर हिंदी और कोरियाई कहानी विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि भी प्राप्त की है। यह ग्रंथ पराग (अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली) से प्रकाशित भी हुआ था। वे हिंदी की सेवा निरंतर कर रहे हैं। इन्होंने ही अपने संपादन में पहला हिंदी-कोरियाई शब्दकोश भी मेरे कोरिया में रहते (1995 में) तैयार किया और उसे प्रकाशित भी कराया। यह कोश 67000 शब्दों से संपन्न है। हिंदी शब्द के साथ कोष्ठकों में हिंदी उच्चारण दे दिया गया है। जरूर रहने पर शब्द के साथ जुड़ सकने वाले अन्य शब्द/शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं, जैसे- अंतिम और अंतिम चेतावनी। इस कोश की भूमिका तत्कालीन भारतीय राजदूत शशांक ने लिखी है। प्रोफेसर ली (ई) जंग हो की ही एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य उनके द्वारा रचित और हांगुक विश्वविद्यालय (वे दे) से प्रकाशित ग्रंथ 'हिंदी व्याकरण' (हिंदी मुन बाप) है। यह 381 पृष्ठों का एक विशाल ग्रंथ है। हांगुक विश्वविद्यालय (वे दे) की ही प्रो. किम ऊ जो ने अपनी देख-रेख में पहला कोरियाई-हिंदी शब्दकोश तैयार करके प्रकाशित कराया है। यह कार्य 1994 में प्रारंभ हुआ था लेकिन संपन्न 2000-08 में ही हो सका। इस 700 पृष्ठों के कोश में 50000 मुख्य और 20000 उपमुख्य प्रविष्टियां हैं। प्रोफेसर किम ऊ जो की एक पुस्तक बेसिक हिंदी भी हांगुक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर स है जंग ने भी मानक हिंदी उच्चारण शिक्षण शीर्षक से एक पुस्तक की रचना की है। भाषाशास्त्री प्रोफेसर छै भी बहुत सक्रियता से हिंदी के कोरियाई सरोकारों को निरंतर आगे बढ़ा रहे हैं। भारत के केंद्रीय हिंदी संस्थान ने हिंदी-कोरियाई वार्तालाप (conversational) निदेशिका (guide) तैयार की है। इसमें दो भाग हैं। पहले भाग में विभिन्न विषयों जैसे भाषा, अभिनंदन, पर्यटन आदि पर हिंदी-वाक्य हैं; दूसरे भाग में अकरादि क्रम से रोजमर्रा प्रयोग में आने वाले शब्दों को संजोया गया है। इस 153 पृष्ठीय पुस्तक की कीमत 335 रुपए हैं और विद्यार्थियों के साथ-साथ इसकी उपयोगिता पर्यटकों के लिए भी है। भारत की ही हांगुक विश्वविद्यालय में रह चुकी हिंदी की अतिथि आचार्य (वर्तमान में मैसूर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष हैं) ने प्राथमिक कोरियाई विद्यार्थियों के लिए हिंदी वार्तालाप शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की है, साथ ही सी.डी. भी तैयार की है।

कोरिया के मशहूर बाजार इटेवान में जाइए और बांगलादेशी द्वारा खोली गई दुकान का नजारा देखिए। कौन सा मसाला है, कौन सी दाल है या चाय है जो वहां नहीं मिलती। यहां तक कि बनी बनायी रोटियां और पराठे भी वहां उपलब्ध हैं और मैगी व आटा भी। इन भोजनालयों और दुकानों

ने कितने ही हिंदी शब्द प्रचलित कर दिए हैं। समोसा, तंदूर, दाल आदि कितने ही शब्द आज नई पीढ़ी अच्छी तरह जानती हैं।

न्यूयार्क में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन (जुलाई, 2007) में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्कालीन महासचिव महामहिम बान की मून ने, जो कोरियाई हैं, अपने भाषण में हिंदी का उपयोग और हिंदी की महत्ता को रेखांकित करके दक्षिण कोरिया में हिंदी एवं भारत-प्रेम की ही स्थापना की थी।

अनुवाद द्वारा प्रदत्त आदान-प्रदान की दिशा में बढ़ती कुछ अधिक सजगता एवं सक्रियता भी हिंदी जानने के महत्व को बढ़ा रही हैं।

जहां तक अनुवाद के परिदृश्य की बात है तो वह फिलहाल बहुत मजबूत नहीं है। निःसंदेह गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर का तो भरपूर अनुवाद हुआ है लेकिन हिंदी से कोरियाई में और कोरियाई से हिंदी में जो अनुवाद हुए हैं वे अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं।

पिछले वर्षों में कोरिया की कुछ साहित्यिक सामग्री हिंदी में उपलब्ध हुई है। साहित्य अकादेमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, पीतांबर पब्लिशिंग कम्पनी, राजकमल प्रकाशन, राजपाल एंड संस आदि ने महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सौभाग्य से अनुवाद की अधिकांश पुस्तकों के सृजन का अवसर इस लेख के लेखक को ही मिला है। दिविक रमेश के द्वारा अनूदित पुस्तकें हैं : कोरियाई कविता यात्रा (अपने ढंग की पहली पुस्तक जिसमें अविभाजित कोरिया पहली कविता से लेकर आधुनिक समय तक के प्रमुख कवियों की कविताओं के अनुवाद हैं, साहित्य अकादेमी) कोरियाई बाल कविताएं (नेशनल बुक ट्रस्ट), कोरियाई लोककथाएं (पीतांबर पब्लिशिंग कंपनी), जादुई बांसुरी और अन्य कोरियाई कथाएं (नेशनल बुक ट्रस्ट), तथा 2015 में राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. के द्वारा प्रकाशित ‘खलनायक’ (यी मुन यॉल के कोरियाई उपन्यास का हिंदी अनुवाद)। इस के दो स्तर हैं : एक सीधा-सीधा और दूसरा सांकेतिक। सीधे-सीधे अर्थ के अनुसार यह कक्षा के एक ऐसे बिगड़ैल मॉनीटर की कहानी है जो अपनी ताकत और अपने साम्राज्य का झांडा बनाए रखने के लिए कितने ही तरह के हथकड़े अपनाता है। सांकेतिक अर्थ के अनुसार यह मनुष्य के भीतर की एक ऐसी अधिनायकवादी प्रवृत्ति को सामने लाता है जो ताकतवर बनने की भरपूर कोशिश करती है। इसके लिए मनुष्य कुछ भी करता है। खुद को ताकतवर कहलाने का मनुष्य में एक अदमनीय नशा होता है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में है जिसका ‘खलनायक’ ‘ओम सोक दे’ है।

यहां वरिष्ठ कवयित्री किम यंग शिक का नाम फिर एक बार लेना चाहूंगा जिन्होंने भारत संबंधी अनेक कविताएं लिखी हैं जिनका हिंदी- अनुवाद इस लेख के लेखक ने ही किया है। कविताएं पुस्तक रूप में ‘द डे ब्रेकस्ऱ्हओ इंडिया’ शीर्षक से अजंता, दिल्ली के द्वारा प्रकाशित हैं। सुखद समाचार यह है कि उन्होंने भारतीय वाद्य यंत्रों आदि के प्रदर्शन के लिए गैलरी बनाई है। इस संबंध में उनसे चर्चा करते हुए लगभग निश्चय हुआ कि गैलरी का नाम ओम शांति गैलरी रखा जाए।

इसके अतिरिक्त इन पंक्तियों के लेखक के कितने ही कोरिया संबंधी लेख (हिंदी और अंग्रेजी में) भी उपलब्ध हैं जो ‘यादें महकी जब’ (किताब वाले, नई दिल्ली) तथा ईस्ट एशियन लिटरेचर (East Asian Literatures, Northern Book Centre, New Delhi) सहित विभिन्न पुस्तकों में भी प्रकाशित हैं। मैं खुद निरंतर अनुवाद कार्य कर रहा हूं। मेरे अनुवाद अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। विशेष रूप से दो प्रमुख महिला कवियों- मून चुंग ही (नया ज्ञानोदय, जुलाई 2014)

और रा हीदुक (आधारशिला, मई-जून, 2013) के अनुवाद उल्लेखनीय हैं।

कोरिया संबंधी दो अन्य उल्लेखनीय पुस्तकों में रामदरश मिश्र की ‘भोर का सपना’ (यात्रावृत्त) और पद्मा सचदेव की कोरियाई ‘सीजो’(एक कविता-रूप) कविताओं के अनुवादों की पुस्तक ‘शिशिर रात्रि का अनुराग’ कही जा सकती हैं। एक पुस्तक ‘पहाड़ में फूल’ नाम से राजकमल प्रकाशन ने भी प्रकाशित की है जिसमें मेरी निगाह में अनुवाद और बेहतर हो सकते थे। कोरिया की प्रख्यात लेखिका शिन ग्योंग सूक के सुविख्यात उपन्यास का नीलाभ कृत अनुवाद ‘मां का ध्यान रखना’ शीर्षक से राजपाल एंड संस के द्वारा प्रकाशित है। इस उपन्यास में कोरियन मां के माध्यम से रोजमरा की जिंदगी में परिवार के लिए खट्टी और समर्पित लेकिन प्रायः महत्वहीन और उपेक्षित समझी जाने वाली ‘मां’ के महत्व को स्थापित किया गया है। राजपाल के द्वारा ही चर्चित लेखिका सुन मी व्यांग का प्रगति सक्सेना के द्वारा अनूदित उपन्यास ‘कुत्ता जिसने सपने देखने की हिम्मत की प्रकाशित है जिसमें एक काल्पनिक कहानी के माध्यम से इनसानी रिश्तों की बनावट और संवेदनाओं को दिखाने की कोशिश की गई है। एक समझ भी दी गई है कि जीवन की सारी चीजें वैसी ही नहीं होती जैसी हम चाहते हैं। विपरीत स्थितियों का सामना करते हुए भी प्यार और अपनेपन से जीवन का आनंद लिया जा सकता है। एक और महत्वपूर्ण कार्य। आठवीं शताब्दी में एक कोरियन भिक्षुक है चो ने चीन से भारत की कठिन यात्रा की थी। इस यात्रा का वृतांत उसने डायरी के रूप में लिखा। इसके माध्यम से उस समय के भारत के उसकी निगाह से जानकारीपूर्ण दर्शन किए जा सकते हैं। इस पुस्तक का जगदीश चंद्रिकेश के द्वारा किया हिंदी में अनुवाद ‘हे-चो का यात्रा वृतांत’ शीर्षक से नेशनल बुक ट्रस्ट के द्वारा प्रकाशित (प्र. संस्करण : 2011) है।

अब थोड़ा अवलोकन हिंदी से कोरियाई भाषा में अनुवाद का भी कर लिया जाए। हिंदी के (अब सेवानिवृत्त) वरिष्ठ प्राचार्य प्रो. ली.जंग हो ने भीष्म साहनी के उपन्यास ‘तमस’ का पहले पहल अनुवाद किया था। इनके अनुसार भारतीय इतिहास, लोक जीवन, धार्मिक संबंधों को समझने के लिए यह उपन्यास बहुत जरूरी है। इन्होंने हिमांशु जोशी, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, अज्ञेय, काशीनाथ आदि की कहानियों के साथ साथ लोककथाओं और जयप्रकाश भारती की रचनाओं के भी अनुवाद किए हैं। एक जानकारी के अनुसार प्रो. किम ऊ जो ने कबीर, घनानंद, निराला, खुवीर सहाय, धूमिल आदि की कविताओं तथा प्रेमचंद, यशपाल, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, ज्ञानरंजन आदि की कहानियों के अनुवाद किए हैं पर वे प्रकाशित (पुस्तकाकार) रूप में उपलब्ध नहीं हैं। प्रो. ई (ली) उंग गू ने प्रेमचंद के निर्मला उपन्यास का अनुवाद किया है। वरिष्ठ कवयित्री किम यांग शिक ने दिविक रमेश की कविताओं का न केवल अनुवाद किया है बल्कि अपने ही द्वारा प्रारंभ शांति प्रकाशन से प्रकाशित भी किया है। पुस्तक का नाम है- ‘से दल उई ग्योल हन’ अर्थात् ‘चिड़िया का ब्याह’। किसी भी हिंदी कवि की कविताओं के कोरियाई अनुवाद की यह सर्वप्रथम पुस्तक है। किम छंग योंग के द्वारा हिमांशु जोशी की कहानियों की पुस्तक सु-राज के अनुवाद की एक पुस्तक भी शांति प्रकाशन ने प्रकाशित की है। इसी प्रकार अयोध्या की राजकुमारी और कोरिया के राजा पर कैंप्रित अंग्रेजी में लिखे गए कोरिया में रहे भारत के भूतपूर्व राजदूत एन. पार्थसारथी के उपन्यास का अनुवाद भी किम यांग शिक ने किया है। अन्य भारतीय भाषाओं से शरतचन्द्र, करतार सिंह दुग्गल, मंटो आदि की भी रचनाओं के अनुवाद हुए हैं। इसके अलावा वेद, उपनिषद् आदि धार्मिक ग्रंथ भी जैसे-तैसे अनूदित

हुए हैं। बाद में सीधे संस्कृत से कोरियाई भाषा में अनुवाद की स्थितियां खोजी गईं। एक और महत्वपूर्ण जानकारी। ऊपर बौद्ध धर्म की कोरिया में महत्वपूर्ण उपस्थिति का संकेत दिया जा चुका है। दक्षिण कोरिया के प्रसिद्ध बौद्ध मंदिर 'हे इन सा' में आज भी कोरियन त्रिपिटिका अर्थात् बौद्ध ग्रंथ त्रिपिटिका का कोरियाई अनुवाद सुरक्षित रखा हुआ है। कोरियन त्रिपिटिका का उत्कीर्ण कोरियो राज (918-1392) में दो बार हुआ था। राजा और लोगों का विश्वास था कि उसकी मौजूदगी से कोई भी आक्रमण पीछे धकेला जा सकता है और सौभाग्य बना रह सकता है। पहली बार उत्कीर्ण का कार्य 1087 में पूरा हुआ लेकिन दुर्भाग्य से 1232 में, मंगोलों के आक्रमण में त्रिपिटिका जल गई। इसके बाद 1236 में पुनः कार्य शुरू हुआ- तत्कालीन राजा गो जोंग के हुक्म से। लगभग 16 वर्षों के बाद 1251 में वर्तमान त्रिपिटिका का कार्य सिद्ध हो सका। पहले इसे सोल शहर के पश्चिम में 'कांगहवा दो' नामक द्वीप में रखा गया और बाद में 1398 में 'हे इन सा' में लाया गया। कहना न होगा कि अनुवाद के आदान-प्रदान की दिशा में अभी बहुत काम करने की आवश्यकता है।

आज कोरिया में हिंदी की ओर नई पीढ़ी का इस हद तक रुझान हुआ है तो इसे भारत की ओर बढ़े रुझान के संदर्भ में ही समझा जा सकता था। जिस तरह कोरिया का भारत में- खासकर भारत के बाजार में- धमाकेदार प्रवेश हुआ है उसी प्रकार कोरिया में भारत की उपस्थिति बहुत दृढ़ता से देखी जा सकती है। और इसी संदर्भ से कहा जा सकता है कि कोरिया में हिंदी की उपस्थिति भी उतनी ही दृढ़ता से अपना एहसास करा रही है। निश्चित रूप से, यदि हम भारतीयों, हमारी सरकार की ओर से भी हिंदी की केंद्रीय भूमिका को और अच्छे से निभाने की ओर उचित ध्यान दिया गया तो कोरिया में उसकी बढ़ती हुई प्रगति को कोई नहीं रोक सकेगा। बखूबी कहा जा सकता है आज कोरिया विश्व के उन गिने देशों में से एक है जहां हिंदी का प्रभुत्व अग्रगामी है।

अंत में इतना और कहने की अनुमति चाहता हूं कि हिंदी के समाचार एवं अन्य कार्यक्रम दिखाने वाले टी.वी. चैनल उपलब्ध होने से भी भारत के संबंध में जानकारी उपलब्ध होती रहती है और भारत के बारे में और अधिक जानने की स्वाभाविक रुचि कोरियाई लोगों में बढ़ती जाती है। लेकिन एक कोरियाई विद्यार्थी जिसका भारतीय नाम 'समीर' है, ने यह चिंता भी व्यक्त की कि हिंदी को भारत की राज एवं राष्ट्रभाषा जिस रूप में बना लिया जाना चाहिए था उसमें भारतीय चूके हैं उस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।



अभिमन्यु अनत की काव्य-यात्रा

कमल किशोर गोयनका

मॉरीशस के विश्व प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार अभिमन्यु अनत 4 जून, 2018 को इस नश्वर संसार को छोड़कर देवलोक में चले गए। मैं उस समय अमेरिका में था और उनके पुत्र रत्नेश अनत ने यह दुःखद समाचार दिया तो मैं हतप्रभ रह गया। अनत अस्वस्थ थे परंतु उनके चले जाने की संभावना नहीं थी। उन्हें 16 मई, 2018 को मॉरीशस का राष्ट्रीय अवार्ड मिला था और विदेश मंत्री सुषम स्वराज की अध्यक्षता में हमारी समिति ने विश्व हिंदी सम्मेलन (18-20 अगस्त, 2018) में उन्हें सम्मानित करने का निर्णय लिया था, परंतु ईश्वर की कुछ और ही इच्छा थी। अभिमन्यु अनत का जन्म मॉरीशस टापू में हुआ जो ‘मारीच द्वीप’, ‘मिरिच टापू’ तथा ‘हिंद महासागर का मोती’ एवं ‘छोटा भारत’ आदि नामों से भी जाना जाता है। इस द्वीप में सन् 1505 में पोर्टुगीज, सन् 1598 में डच, सन् 1915 में फ्रांसीसी आए और सन् 1814 में इस पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इस समय तक भारतीय व्यापारी तथा कैदी मॉरीशस में आ चुके थे और वे बराबर अमानवीय व्यवहार के शिकार बने। मॉरीशस में भारत से शर्तबंदी कानून के अंतर्गत सिंतंबर, 1834 से भारतीय मजदूरों का आना शुरू हुआ और 36 पुरुष श्रमिकों का पहला दस्ता पहुंचा। इसके उपरांत भारत से लाखों मजदूर छल और कपट से मॉरीशस भेजे गए और उन्हें पथर के नीचे सोना मिलने का लालच दिया गया, परंतु उन्हें नारकीय जीवन एवं यातनाओं का कभी खत्म न होने वाला संसार मिला। कुछ समय के बाद अमानवीय जीवन से मुक्ति के प्रयास भी शुरू हुए। जर्मनी के आदोल्फ-द-प्लेविन्ज ने भारतीय प्रवासियों के विरुद्ध बने कानूनों का विरोध किया, महात्मा गांधी सन् 1901 में मॉरीशस आए और उन्होंने भारतीयों को अपने बच्चों को शिक्षा देने तथा राजनीति में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। इसके बाद मारीलाल डॉक्टर, कुंवर महाराज सिंह, आर्य समाज, सनातन धर्म समाज, वासुदेव विष्णुदयाल, पं. रामनारायण, शिवसागर रामगुलाम आदि ने सांस्कृतिक-राजनीतिक जागरण किया और मॉरीशस में लोकतंत्र की स्थापना हुई।

मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा उसे अंतरराष्ट्रीय रंगमंच तक ले जाने का एक लंबा संघर्ष तथा बलिदानपूर्ण इतिहास है। मॉरीशस में भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के आगमन से पूर्व कई हजार भारतीय सिपाही तथा कैदी मॉरीशस की भूमि पर आ चुके थे और तब वहां हिंदी का प्रयोग होता था, किंतु फ्रेंच, अंग्रेजी तथा क्रियोली बोली पूरे देश में अपना महत्व स्थापित कर चुकी थी। भारत जब छल-कपट से मजदूरों का आगमन हुआ तो वे प्रमुख रूप से बिहार प्रांत से आए और अपने

साथ भोजपुरी तथा हिंदी को भी साथ लेकर आए। ये भारतीय मजदूर अपने साथ रामायण, महाभारत, हनुमान चालीसा, आत्मा जैसी पुस्तकें भी लाए। इन भारतीयों ने अपने जहाजी भाइयों के साथ भोजपुरी-हिंदी बोलते हुए समुद्र की विकट लंबी यात्रा पूरी की थी और मजदूरी तथा दासत्व काल में खेतों, कारखानों, कोठियों, जेलों, बस्तियों एवं झोपड़ियों में अपने सुख-दुःख में, अपने काम-काज और पर्व-त्यौहार के समय भोजपुरी तथा हिंदी का ही प्रयोग किया था। अभिमन्यु अनत ने 6 दिसंबर, 1994 को के.के. बिड़ला फाउंडेशन, नई दिल्ली द्वारा आयोजित व्याख्यान में कहा था कि इन भारतीय मजदूरों पर जब गोरे मालिकों के कोड़े और बांसों के प्रहार होते थे तो इनकी आहें भी भोजपुरी और हिंदी में ही निकलती थीं। ये भारतीय यातना-शिविरों जैसी बस्तियों में रहते हुए जब रात को चांदनी में अपनी-अपनी राम कहानी कहते तो हिंदी और भोजपुरी में ही कहते, चाहे वे भारत के किसी भी प्रांत से आए हों। हिंदी तथा भोजपुरी एक-दूसरे से जुड़ने, एक-दूसरे का दुःख-दर्द बांटने, धर्म-ग्रंथों की कथाएं सुनाने तथा अपने धर्म की संस्कृति से जुड़े रहने की भाषा थी।

मॉरीशस के आरंभिक काल में सरकारी धरातल पर हिंदी के पठन-पाठन के लिए कोई प्रयास नहीं हुआ, लेकिन सन् 1871 में आदोल्फ-द-प्लेवित्ज ने भारतीय मजदूरों की ओर से एक याचिका तैयार की जो अंग्रेजी के साथ तमिल एवं हिंदुस्तानी में भी तैयार कराई गई थी। यह पहला अवसर था जब ‘हिंदुस्तानी’ भाषा में हिंदुस्तानियों की वकालत की गई थी। सन् 1859 से मॉरीशस में हिंदू मंदिरों का निर्माण शुरू हो गया था और उनमें भजन-कीर्तन के साथ हिंदी की भी पढ़ाई होती थी। इसी प्रकार बैठका रात्रि में लगती थी और भारतीय मजदूर इनमें अपने सुख-दुःख बांटते और अपनी संस्कृति, भाषा तथा धर्म को बचाने के प्रयत्न करते। उस काल के भोजपुरी लोक-गीतों में भी इन मजदूरों की व्यथा कहानी व्यक्त हुई है। गांधीजी ने 29 अक्टूबर, 1901 को मॉरीशस आगमन पर अपने व्याख्यान खड़ी बोली-हिंदी में दिए तो गोरों की दृष्टि में इस ‘जंगली भाषा’ को गौरव मिला और साहस एवं स्वाभिमान भी तथा भोजपुरी को खड़ी बोली-हिंदी की ओर मुड़ने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ। गांधीजी की प्रेरणा से वर्मा से मणिलाल मगनलाल डॉक्टर 11 अक्टूबर, 1907 को मॉरीशस पुंछे और अपने भाषणों में उन्होंने हिंदी का प्रयोग किया तथा ‘हिंदुस्तानी’ (1909) पत्र का प्रकाशन किया। सन् 1910 में मॉरीशस में आर्य समाज की स्थापना हुई। आर्य समाज ने हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा शिक्षण में ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया। इसके उपरांत स्वामी मंगलानंद पुरी, डॉ. चिरंजीव भारद्वाज तथा उनकी पत्नी सुमंगला देवी, पं. आत्माराम विश्वनाथ, स्वामी स्वतंत्रतानंद, पं. काशीनाथ किश्तो, पं. रामअवध शर्मा, कुंवर महाराज सिंह, मेहता जैमिनी, स्वामी विज्ञानानंद, वेनीमाधो सुतीराम, श्री नृसिंह दास आदि अनेक व्यक्तियों ने हिंदी के विकास के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। आर्य समाज के साथ सनातन धर्म के प्रचारकों, आर्य परोपकारिणी सभा (1925) आदि ने भी हिंदी की धारा को विकसित किया। सन् 1935 तक ‘हिंदुस्तानी’ (1909), ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ (1911), ‘आर्यवीर’ (1929), ‘ओरियांटल गजट’ (1912), ‘मॉरीशस मित्र’ (1924), ‘सनातन धर्मार्क’ (1933) आदि में हिंदी कविता-कहानियों के प्रकाशित होने से हिंदी भाषा और साहित्य का उद्भव हुआ और उसने विकास की ओर कदम बढ़ाए।

मॉरीशस में सन् 1935 से 1968 तक हिंदी भाषा और साहित्य ने कई करवटें लीं, नए समर्पित व्यक्ति और संस्थाएं तथा साहित्यकार सामने आए और उन्होंने पूरी निष्ठा से हिंदी का विकास किया।

व्यक्तियों में पं. उमाशंकर गिरजानन, पं. श्रीनिवास जगदत्त, नेमनारायण ‘गुरुजी’, जयनारायण राय, मोहनलाल मोहित, भगत-बंधु, डॉ. शिवसागर रामगुलाम, प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल, सोमदत्त बखोरी, प्रो. रामप्रकाश आदि अनेक हिंदी प्रेमियों का उल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने इस क्षेत्र में ऐतिहासिक कार्य किया। प्रो. रामप्रकाश को भारत सरकार ने भेजा था। वे मॉरीशस में 30 वर्ष रहे और हिंदी भाषा के विकास तथा हिंदी पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में विशेष महत्व का कार्य किया। संस्थाओं में, हिंदी प्रचारिणी सभा (1935) तथा आर्य समाज की ‘आर्य प्रतिनिधि सभा’ ने हिंदी की उन्नति के लिए विभिन्न कार्य किए और उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। इस काल में रेडियो तथा दूरदर्शन का भी श्रीगणेश हुआ और हिंदी कार्यक्रमों का प्रसारण शुरू हुआ। इसी समय हिंदी के प्रसिद्ध लेखक यशपाल जैन, रामधारी सिंह ‘दिनकर’ डॉ. शिवमंगल सिंह ‘सुमन’ आदि मॉरीशस गए और मॉरीशस के अनेक हिंदी लेखक प्रेरित और प्रभावित हुए। इस काल के अंतिम दशक में अभिमन्यु अनत जैसे लेखकों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने मॉरीशस के हिंदी साहित्य को अपनी 30-35 वर्ष की साहित्य-साधना से नई संवेदना, नया शिल्प-कौशल, नई विचार-दृष्टि के साथ नई ऊँचाइयों पर स्थापित करके उसकी विशिष्ट पहचान ही नहीं बनाई बल्कि उसे हिंदी साहित्य का महत्वपूर्ण अंग बनाकर हिंदी के अंतरराष्ट्रीय मंच पर सदा-सदा के लिए स्थापित कर दिया।

मॉरीशस की हिंदी काव्य-यात्रा के बीच अभिमन्यु अनत के काव्य-संसार का परीक्षण एवं विश्लेषण तथा उसका मूल्यांकन करना तर्कसंगत होगा। अभिमन्यु अनत मॉरीशस के एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने न केवल अपने देश के हिंदी साहित्य को ऊँचाइयों तक पहुंचाया है बल्कि विश्व में उसकी विशिष्ट पहचान बनाते हुए उसे सम्मानपूर्वक स्थान भी दिलाया है। अभिमन्यु अनत बहुआयामी तथा बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। अनत कवि होने के साथ उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, जीवनीकार, संस्मरणकार, लघुकथाकार, बाल कथाकार, व्यंग्यकार, भेटवार्ताकार, संपादक, निर्देशक, चित्रकार, छायाकार आदि विभिन्न सर्जनात्मक रूपों में हमारे सामने आते हैं और अपनी प्रतिभा का परिचय देते हैं। कवि के रूप में अनत में कथाकार जैसा विस्तार नहीं है लेकिन उनके संपूर्ण लेखकीय व्यक्तित्व में उनकी काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं- ‘नागफनी में उलझी सांसें’ (1977), ‘कैक्टस के दांत’ (1982), ‘एक डायरी बयान’ (1985), ‘गुलमोहर खोल उठा’ (1994) तथा ‘लरजते लम्हे’ अप्रकाशित है, किंतु इस अप्रकाशित कविता संग्रह की संपूर्ण कविताएं यहां संकलित हैं। इन पांचों कविता-संग्रहों में अनत की 475 कविताएं हैं तथा अन्य 43 कविताएं ऐसी भी हैं जो पत्र-पत्रिकाओं में छपी हैं और कविता-संग्रहों में आने से रह गई हैं। मुझे इसका दुःख है कि बंबई से प्रकाशित ‘नवभारत टाइम्स’ के फरवरी-अप्रैल, 1970 के अंकों में अभिमन्यु की प्रसिद्ध धारावाहिक कविता ‘पसीना किसी का, फसल किसी की’ (छ: अंकों में छपी थी जिसे यहां नहीं दे पा रहे हैं, क्योंकि कवि की फाइलों में यह उपलब्ध नहीं थी और दिल्ली में रहते हुए ‘नवभारत टाइम्स’ के बम्बई संस्करण को प्राप्त करना असंभव था) इस कविता के विषय में मेरे एक प्रश्न के उत्तर में अभिमन्यु अनत ने कहा था, ‘मेरी पहली कविता का शीर्षक था- ‘पसीना किसी का, फसल किसी की’। यह अपने में कई कविताओं को लिए हुए एक कविता थी। उस समय ‘नवभारत टाइम्स’ के संपादक महावीर अधिकारी मॉरीशस आए हुए थे। उन्हें कविता पसंद आई थी और उन्होंने इस कविता को अपने अखबार में धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया था। जहां तक उसकी वस्तु की बात है

उसमें मजदूर, जो कि मैं रह चुका था, और मालिक के बीच की दरार पर मैंने सवाल उठाए थे। पहली कविता होने के कारण आक्रोश में भावुकता कुछ अधिक ही थी शायद।” एक अन्य प्रश्न के उत्तर में अनत ने कहा था कि उनका प्रथम कविता संग्रह अभी तक अप्रकाशित है। इसमें ही उनकी यह प्रथम कविता भी सम्मिलित है, परंतु उनसे इसके अप्रकाशित रहने का कारण स्पष्ट नहीं हो सका।

अभिमन्यु अनत के कवि रूप को समझने के लिए उनकी काव्य सृजन-प्रक्रिया तथा कविता के संबंध में उनके दृष्टिकोण का विश्लेषण भी आवश्यक है। कवि की सृजन-प्रक्रिया का अध्ययन अनेक वर्षों से महत्वपूर्ण हो गया है, क्योंकि इससे काव्य-रचना की संशिलिष्ट-प्रक्रिया तथा उसके अज्ञात रहस्यों को थोड़ा बहुत समझा जा सकता है। अभिमन्यु अनत से जब मैंने उनकी सृजन-प्रक्रिया के बारे में पूछा तो उनका उत्तर था, ‘मेरे अपने सामने स्थितियां होती हैं और कभी वह एक अकेला आदमी होता है जिसकी खामोश यातनाओं को मैं देखता-महसूसता रहता हूं। फिर उस स्थिति-परिस्थिति- और आदमी के ईर्द-गिर्द मेरी पूरी मानसिक प्रक्रिया परिक्रमा करती रहती है। पहले प्रश्न-ही-प्रश्न पैदा होते हैं। यह स्थिति क्यों है? इस स्थिति में फंसा हुआ यह आदमी कौन है? ये स्थितियां उसके सामने किसने पैदा कीं? क्यों कीं? और फिर धीरे-धीरे उस स्थिति को मैं अपने में समेटकर उस प्रतिक्रिया को अनुभव करता हूं।’ कविता के लघुरूप ‘क्षणिका’ जैसे काव्य-रूप को अपनाने पर मेरे एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा ‘लघु कविताओं को मैंने बहुत सशक्त माना है- चाहे वह दोहा रहा हो, शेर, कप्लिट या जापानी हाइकु। बहुत कम शब्दों में बहुत कुछ कह जाने के इस लोभ से मैं अपने को नहीं रोक सका। लंबी कविताएं पाठक को आनंदित कर सकती हैं, लेकिन लघु कविताएं आदमी को झकझोरती अधिक हैं और आदमी को झकझोरना मेरा अपना अद्वी मकसद रहा है।’

अभिमन्यु अनत ने ‘आत्म-विज्ञापन’ के ‘कविताएं’ खंड में भी अपने कवि और कविता के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं। अनत कहते हैं कि बहरों को सुनाने के लिए मैंने लोहार के हथोड़े का उपयोग किया है तथा मेरी कविताएं ‘चिल्लाहट’ की कविताएं हैं। अनत में यदि यह हथोड़ा और चिल्लाहट है तथा उसका कवि यदि ‘ज्वालामुखी’ है तो वह देश के अतीत के कारण नहीं वर्तमान के कारण है, जो पूर्व के समान ही यातना, अत्याचार तथा शोषण से अपने समाज को मुक्त नहीं कर पाया है। अभिमन्यु अनत जनता की इसी ‘खामोश यातना’ का जन-कवि है। वह एक प्रकार से मनुष्य की मुक्ति-कामना तथा स्वतंत्र-कामना का राष्ट्र-कवि है।

अभिमन्यु अनत के अब तक चार कविता संग्रह छप चुके हैं तथा पांचवां अप्रकाशित है उसमें 43 कविताएं हैं। इन पांच कविता-संग्रहों के आधार पर अनत की काव्य-प्रवृत्तियों का सर्वेक्षण किया जा सकता है। कवि के इन संग्रहों में कवि और कविता की परिभाषाएं हैं, उनका धर्म और कर्म है, प्रश्न और उत्तर हैं, आत्म-मंथन और स्थितियों का विश्लेषण है तथा कविता का हेतु और प्रयोजन है। कवि ‘शब्द’ को परिभाषित करता है। उसके लिए शब्द ‘अस्मिता है, ‘अतीत’ भविष्य, वर्तमान’ है, ‘शक्ति, भक्ति, विद्रोह और अस्वीकृति’ है। शब्द उसका मार्ग-दर्शन करते हैं तथा जीने का सहारा भी देते हैं- अँधेरे में/शब्दों के सहारे/बिन भटके/मैं चलता रहा हूं/हर पल की मौत में/ अपने शब्दों के सहारे/ जी लेता हूं।

कवि अपनी कविता पर दबाव अनुभव करता है। राजनीतिक शक्तियां उससे प्रशस्ति चाहती

हैं और यह भी चाहती हैं कि कवि ‘पददलितों’ का प्रवक्ता न बने। कवि की ‘उन्हें गोली न लगे’ कविता इस विषय पर लिखी मार्मिक कविता है। कवि की कविता इन शक्तियों के सम्मुख सिर झुकाने को तैयार नहीं है। वह गोली खाने को तैयार है पर वह नहीं चाहता कि जिन पर कविताएँ लिखी गई हैं उन लोगों पर गोली चले। कवि ‘चापलूस कवि’ को भी सहन नहीं करता। वह ऐसे मूर्तिकार एवं कवि का खून करना चाहता है जो भेड़िये जैसे शासक पर एक दूसरा ‘पृथ्वीराज रासो’ लिख रहे हैं।

अभिमन्यु अनत ने अपनी कविताओं में बार-बार सत्ता के इस भेड़िए और शेर एवं लोमड़ी की चर्चा की है, जो जनता रूपी भेड़ों, मेमनों एवं बकरियों को खा जाना चाहते हैं। अभिमन्यु अनत इस दृष्टि से, नोबेल पुरस्कार विजेता पोलिश कवि चेश्वाव मिवोश के शब्दों में, ‘सत्ता का गड़रिया’ है, जो जीवन और प्रकृति में मनुष्य के अस्तित्व के लिए जो भी उपयोगी है, उन सबकी रक्षा करता है और अपने समय के भेड़ियों के खतरों से अपने समय और समाज को सावधान करता है। मनुष्य और समाज के लिए वह इसलिए भावना, विचार, इच्छा, स्वतंत्रता, अस्तित्व, अस्मिता, संबंध, इतिहास, पूर्वज, देवता, प्रकृति, वृक्ष, पशु-पक्षी, समुद्र आदि सभी को सुरक्षित एवं पवित्र रखना चाहता है और उनकी देखभाल एवं साज-संभाल करता रहता है। अभिमन्यु अनत की पूरी काव्य-सृष्टि गड़रिये की इसी दृष्टि का प्रतिफल है। इसी कारण कवि अपने आलोचकों को भी क्षमा नहीं करता। इसी संग्रह की ‘प्रतिमान’ कविता में कवि कविता के आलोचकों ‘प्रतिमानों के सौदागर’ कहकर उनकी भर्त्सना करता है। कवि की आवाज को चाहे सत्ता अथवा आलोचक दबाए, उसे जब्त करे, परंतु उसे विश्वास है कि कोयलों का झुंड उसके आंगन में उतरेगा और कवि उनके सामने दानों के स्थान पर अपने गीतों को बिखेर देगा और ये कोयले उन गीतों को चुनकर उन दिशाओं में बिखेर देंगी, जहां किसी के पंजे कवि के गीतों को तथा उसकी आवाज को बंधक न बना सकेंगे— मैं तुम्हारे विस्तृत पंजों की पहुंच के भीतर था/ इसलिए मुझे सलाखों के भीतर लेकर/ मेरी आवाज को तुम जब्त कर लेते थे/ अब तुम ऐसा नहीं कर सकोगे/ क्योंकि कल सुबह जब पूरब से/ कोयलों का झुंड मेरे आंगन में उतरा था/ तो मैंने दानों के बदले उनके सामने/ अपने सभी गीत बिखर दिए थे/ वे उन्हें चुग कर उड़ गई उन दिशाओं को/ जहां तुम्हारे पंजे पहुंच नहीं पाएंगे/ जहां अब चप्पे-चप्पे से होता रहेगा,/ मेरे उन दबाए गीतों का गुंजन।

अभिमन्यु अनत की काव्य-प्रवृत्तियों में इतिहास-बोध, अतीत-बोध वर्तमान-बोध अत्यंत महत्वपूर्ण है। अभिमन्यु से पूर्व मारीशस के हिंदी कवि भारतीय गिरमिटिया मजदूरों का आख्यान कर चुके थे, परंतु अनत में संवेदना का घनत्व है और विस्फोट है, चीखता इतिहास और वर्तमान की भयानकताएँ हैं। डॉ. शिवमंगल सिंह ‘सुमन’ ने ‘नागफनी में उलझी सांसें’ की भूमिका में इसी प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ‘अतीत और वर्तमान के संबंध-सूत्रों की मूलग्राही पकड़ के कारण उसकी संवेदना गहरी और मार्मिक हो गई है। इस प्रथम कविता-संग्रह में कई ऐसी कविताएँ हैं, जो अतीत में हुए कूर अत्याचारों को निरावृत्त करती हैं। ऐसी कविताओं में ‘अधगले पंजरों पर’, ‘गिरवी पड़ी किरणें’, ‘अनफूला कैकटस’, ‘काले माथे का सफेद सोना’, ‘लंबी मृत्यु इतिहास की’, ‘श्वेत रक्त’, ‘गुंगा इतिहास’, ‘भेंट’ आदि उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं में भारतीय मजदूरों और कुलियों के गोरे मालिकों के खेतों में, भूखे पेट बहाए गए पसीने और खून की कहानी, पीठ पर कोड़ों के निशान और

पैबंद लगे वर्तमान का मार्मिक चित्र खोंचा गया है। ‘अधगले पंजरों पर’ में कवि का कथ्य है कि यदि मॉरीशस के प्रथम मजदूरों के अधगले पंजरों को जमीन से निकाला जाए तो उन पर चाबुक और बांसों के निशान मिलेंगे और जहां तक इतिहास का सवाल है, वर्तमान का कोई इतिहास नहीं होता। इतिहास कल का था, जो पूँजीपतियों की तिजोरियों में बंद है और कल का होगा, वह तो इतिहास को नकारने का इतिहास होगा। कवि ‘कैकटस के दांत’ में भी ‘स्वर्ग और स्वर्ग’, ‘सुगर-कोटेड’, ‘वह अधूरा अधिकार’, ‘विधवा दीवारें’ आदि कविताओं में अतीत, वर्तमान और भविष्य की स्थितियों को स्पष्ट करता है। कवि इन तीन कालों के परस्पर संबंधों पर कहता है- जिसका अतीत नहीं/ भविष्य नहीं/ उसका वर्तमान कैसे हो सकता है।

कवि ‘एक डायरी बयान’ में भी दिवंगत अतीत, अंधे वर्तमान और अनुपस्थित भविष्य की चर्चा करता है- उस महरूम अतीत की डगर से/ उस शिक्षित को जानने के लिए/ जहां वर्तमान आँखें नहीं खोलता/ अनुपस्थित भविष्य ने/ कागज की नाव भेजी है।

‘गुलमोहर खोल उठा’ में भी तीन-चार कविताएं इसी दर्द की अभिव्यक्ति करती हैं। ‘वह अनजान आप्रवासी’ में कवि मॉरीशस में आए आरंभिक भारतीय मजदूरों से अपना संबंध-सूत्र जोड़ता है और इतिहास द्वारा उसे विस्मृति करने पर व्यथित होता है- वह अनजान आप्रवासी/ देश के अंधे इतिहास में न तो उसे देखा था/ न तो गूँगे इतिहास ने/ कभ सुनाई उसकी पूरी कहानी हमें/ न ही बहरे इतिहास से सुना था उसके चीत्कारों को/ जिसकी इस माटी पर बही थी पहली बूँद पसीने की/ जिने चट्टानों के बीच हरियाली उगाई थी/ नंगी पीठों पर सहकर बांसों की बौछार/ बहा-बहाकर लाल पसीना/ वह पहला गिरमिटिया इस घाटी का बेटा/ जो मेरा भी अपना था, तेरा भी अपना।

कवि की यह संवेदना ‘लरजते लम्हे’ कविता-संग्रह तक में दृष्टिगत होती है। इस संग्रह की ‘कल’, ‘सपना’, ‘मैं’ आदि कविताओं में अतीत और वर्तमान की पीड़ा और भविष्य के सपनों की अभिव्यक्ति है, लेकिन इन कविताओं से यह स्पष्ट है कि अभिमन्यु अनत अतीत-जीवी कवि नहीं हैं, बल्कि उसमें वर्तमान और भविष्य को अभावों, कष्टों, छलों, झूठे आश्वासनों से मुक्त करके उन्हें मनुष्य के लिए सुखद बनाने की आकांक्षा है। अनत मूलतः वर्तमान के कवि हैं, जिससे अतीत और भविष्य जुड़ा हुआ है।

अभिमन्यु अनत ने अपनी कविताओं में भारतीय मजदूर की यातनाओं को भी, जो सामान्य मजदूर की यातनाएं होती हैं, विस्तार से अभिव्यक्त किया है। ‘नागफनी में उलझी सांसें’ में ‘उठे हाथ’, ‘रस्सी के निशान’, ‘मांस की परतें’, ‘चौरंगे का कफ’, ‘कैकटस के दांत’ में ‘कांच का टुकड़ा’, ‘रिस रहा समय’, ‘मैं तुम्हें स्वर्ग नहीं जाने दूँगा’, ‘तृप्ति’, ‘उल्लसित वह उतना ही है’, ‘मुझे उस अंतर से प्यार है’, ‘फेफड़ा और पुर्जा’, ‘वह अधूरा अधिकार’, ‘तुम्हारी तीन विशेषताएं’, ‘अर्ध’, ‘गुलमोहर खोल उठा’ में ‘लक्ष्मी का प्रश्न’, ‘गणित सही रहा’, ‘मीठा समन्दर’, ‘पसीने की बूँदें’, ‘र्नीद की गोली’, आदि कविताओं में मजदूरों के बहते पसीने और खून की बूँदों की कहानी है, उनके शोषण और यातना की कहानी है, झूठे आश्वासनों एवं चीखती मजबूरियों की कहानी है। इन कविताओं से स्पष्ट है कि कवि मजदूरों के साथ है, उनका हमदर्द है, उनकी चीख और पीड़ा की वाणी देने वाला कवि है। मॉरीशस की स्वतंत्रता के बाद भी वहां के मजदूरों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। भारत की स्थिति और भी दयनीय और पीड़ाजनक है। विश्व के अनेक देशों में ‘भूख’ आदमी

को खा रही है। अभिमन्यु अनत भी इस से विह्वल हैं। कवि मनुष्य की कोरी हथेली को देखता है, भूखे-अधनंगे बच्चे और पल्ती को देखता है।¹⁴ कवि की पीड़ा है कि ईश्वर ने आदमी को ‘खाली पेट’ दिया तो झुकने वाले घुटने और फैलने वाले हाथ क्यों दिए- तुमने आदमी को खाली पेट दिया/ ठीक किया/ पर एक प्रश्न है रे नियति/ खाली पेट वालों को/ तुमने घुटने क्यों दिए?/ फैलने वाला हाथ क्यों दिया?

कवि की यह ‘भूख’ की व्यथा ‘कैक्टस के दांत’ में भी है। इसकी कविताएँ- ‘मशीन का हृदय’, ‘असमर्थता’, ‘प्रतिभा बोनी है’, ‘फ्रिज में’, ‘संतुलन’ आदि मनुष्य की भूख तथा इसके निर्माताओं का मार्मिक वर्णन करती है। ‘एक डायरी बयान’ में कवि ‘आंतों में भूख लिए चांद को घूर रहा है। पांचवें अप्रकाशित कविता-संग्रह ‘लरजते लम्हे’ में कवि चारों ओर ‘मुखमरी के चील्कार’ सुनता है, दूध के लिए बिलखते बच्चों के आँसुओं को देखता है और पाता है कि आदमी ही ‘आदमीयत’ का जनाजा अपने कंधों पर लिए जा रहा है। अभिमन्यु आरंभ से ही इस आदमीयत के खोने तथा अदृश्य होने से चिंतित है। यह कवि की सबसे बड़ी चिंता है। अपने पहले कविता संग्रह में कविता कहता है- आदमीयत को छढ़ते हुए/ इनसान फिसल कर/ नीचे आ गया है।

कवि कहता है कि आदमी कुहासे को गले में लपेटे झूल रहा है, आदमीयत घुटने टेक चुकी है। कवि आदमी और आदमी के बीच की खाई को पाटना चाहता है। जमीन-जायदाद का बंटवारा होता रहेगा, अभी खून और आंसू का बंटवारा कर लो। कवि अनेक बार और प्रायः बार-बार आदमी को आदमीयत के खत्म होने से, मानवीयत समाज में मानवीयता के समाप्त होने से तथा पूरी व्यवस्था के मानव-विरोधी बन जाने से सावधान तथा सचेत करता है और निराश होने पर कवि में आक्रोश, विद्रोह और संघर्ष पैदा होता है और वह समुद्र की उफनती लहरों के चट्टानों से टकराने जैसे ‘संघर्ष के गाने’ गाने लगता है। कवि ‘आक्रोश’ कविता में देश के गद्दारों को ललकारता है, मुँड़ियों पहाड़ को ललकारता है कि वह देशद्रोहियों में देश की रक्षा करें, अन्यथा प्रकृति अपने भयंकर तूफानों, ज्वालामुखियों एवं प्रलयंकर लहरों से तुम्हें नष्ट कर देगी और यदि ऐसा न हुआ तो तुम ‘भस्मासुर’ के समान स्वयं नष्ट हो जाओगे। कवि के मजदूर में भी इतनी शक्ति है कि अपने श्रम का प्रतिफल न मिलने पर वह सूरज को निगलने की सामर्थ्य रखता है- इसीलिए आक्रोश में आकर/ मजदूर सूरज को निगल चुका।

कवि परिवर्तन के लिए ‘ज्वालामुखी का लावा’ बनकर बहने को तत्पर है, उसकी छाती पर ‘उष्णता, अकुलाहट और विद्रोह के गुलमोहर’ लिखे हैं और वह भेड़ियों के प्रशंसक कवि और मूर्तिकार के खून से अपने हाथ लाल करना चाहता है।

अभिमन्यु अनत ने मनुष्यता के नष्ट होने, मनुष्य विरोधी समाज व्यवस्था क्या मनुष्य के अधिकारों को छिनने वाले तंत्र के लिए वर्तमान राजनेताओं तथा राजनीतिक व्यवस्था के साथ शहरी नई संस्कृति को दोषी माना है। ‘नागफनी में उलझी सांसें’ की कुछ कविताओं में राजनेताओं पर व्यंग्य है। ‘कैक्टस के दांत’ से इसका विस्तार हुआ है। मौरीशस में स्वतंत्रता आई, परंतु उस स्वतंत्रता को लोग अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपनी-अपनी ओर खींच रहे हैं और स्वतंत्रता की रस्सी टूट रही है- अभी कारागार के लिवास/ तन से हमारे उतरे नहीं/ और हमने मुक्ति को/ रस्सी से बांधकर/ एक-एक छोर को गरदनों में बांध लिया/ फिर हम दोनों गले से पकड़ी उस स्वतंत्रता को/

अपनी-अपनी ओर खींचते रहे/ गुथम-गुथा होता रहा/ जब तक कि/ रस्सी टूट न गई।

मॉरीशस का समाज राजनेताओं के आश्वासन पर टिका है। सारे वातावरण में झूठे वायदे फहरा रहे हैं। कवि इसे ‘आश्वासन-यात्रा’ कहता है जो ‘क्रांति-यात्रा’ पर गोलियां चलाकर उसे ‘निद्रा-यात्रा’ तथा ‘शव-यात्रा’ में बदल रही है। कवि अनुभव करता है कि ‘चुनाव के समय’ दिया ‘सुंदर वचन’ अब सड़ने लगा है। अतः वह ‘पर कुतरेगा जरूर’ कविता में चेतावनी देता है कि एक दिन चूहा तुम्हारी उस कुर्सी को कुतर देगा जिससे तुम चिपके हो- यह चूहा जो आज/ मेरे नंगे पैरों को कुतर रहा है/ कल तुम्हारे यहां पहुंचेगा/ जूतों में सुरक्षित/ तुम्हारे पैर उसे नहीं मिलेंगे/ इसलिए वह उस कुर्सी को/ धीरे-धीरे कुतरेगा/ जिस पर तुम चिपके हुए हो।

अपने चौथे कविता-संग्रह ‘गुलमोहर खोल उठा’ में भी कवि कहता है- ‘पेट पहले से भरा है वायदों से’ और यह भी कि ‘आश्वासन’ केवल मनोरंजन कर सकती है। अपने नए अप्रकाशित कविता-संग्रह ‘लरजते लम्हे’ में भी कवि ‘वायदे’, ‘राजा आज का’, ‘आवरण’, ‘झूठ’, ‘परछाई’, ‘दाग’, ‘भविष्यवाणी’, ‘नेता’, ‘आँख-मिचौली’, ‘परदेसी’, ‘अर्च्च’, ‘आश्वासन’, ‘भ्रम’, ‘पालकी’, ‘विध्वंस’ आदि कविताओं में राजनेताओं, राजनीतिक शक्तियों और लूटरे मसीहाओं पर गहरा व्यंग्य करता है कविताओं में ऐसा तीव्र व्यंग्य है जो गहरे मोह-भंग के साथ मनुष्य के अस्तित्व-बोध एवं सामाजिक समरसता की आत्मीय चिंताओं से उत्पन्न होता है। इनमें यहां ‘परदेसी’ कविता उल्लेखनीय है। कवि ऐसे राजनेता को कैसे अपना स्वदेशी माने जो स्वतंत्रता के जश्न पर बच्चों के स्कूलों में चौरंगा झंडा फहरा देता है, लेकिन जिसने कभी गन्ने के खेतों में पसीने और खून की बूंदें नहीं बहाई, जिसने समुद्र की आंधियों को कभी छाती पर महसूस नहीं किया, धूप में चलते कभी मुड़िया पहाड़ का बोझ सिर पर अनुभव नहीं किया तथा जिसने ज्वालामुखी की छाती में गुलमोहर का पौधा नहीं उगाया। जो राजनेता देश की मिट्टी से पैदा न हुआ हो, जिसमें मिट्टी की गंध, संघर्ष और उथल-पुथल न हो, वह कैसे देश का हो सकता है- कैसे माल लूं कि तुम मेरे ही देश के हो/ तुम तो कभी गन्ने के खेतों के बीच/ ओस-बूंदों में नहाई पगड़ियों पर चले ही कहां/ तुम्हारी कोई बूंद पसीने की कभी टपकी ही नहीं/ प्यासी धरती की नंगी छाती पर/ तुमने कभी समंदर की आंधियों को/ अपने भीतर महसूस किया ही कहां/ क्या तुम मुड़िया पहाड़ के बोझा को/ अपने सिर पर लिए कभी चले ही धूप में/ कैसे माल लूं कि तुम मेरे ही देश के हो/ कभी तुमने उगाया है गुलमोहर का कोई पौधा/ ज्वालामुखी की छाती के बीच/ शासारेल की सतरंगी माटी पर/ तुमने देखा है कभी प्रचंड तूफान में इंद्रधनुष/ क्या सिर्फ इसलिए तुम्हें अपना देशवासी मान लूं/ क्योंकि स्कूल के बच्चों के बीच चौरंगा फहराने आए हो तुम/ बूढ़ी हो गई आजादी के जश्न पर।

अभिमन्यु अनत मॉरीशस में शहरी तथा पश्चिमी संस्कृति एवं पर्यटन व्यवसाय से पैदा होने वाली बुराईयों के प्रति भी संवेदनशील हैं और उनकी काव्य-यात्रा में आधोपांत इनके प्रति गहरा आलोचनात्मक दृष्टिकोण मिलता है। कवि अपने देश को, ऐसा नहीं है कि आधुनिक नहीं बनाना चाहता, लेकिन वह इन प्रवृत्तियों से जन्म लेने वाली अमानवीयता से व्यक्ति है, क्योंकि वह देखता है कि कुछ व्यक्तियों का भौतिक सुख असंख्य व्यक्तियों के मूल अधिकारों को ही छिन रहा है और व्यक्ति को एक कलपुर्जा बना दिया गया है। ‘नागफनी में उलझी सांसें’ में कवि कहता है कि सभ्यता की इमारतें बनाते-बनाते वह शक्तिहीन हो गया है- सभ्यता की इमारतों को बनाने-बनाते/ शक्ति

मेरी क्षीण हो गई है।

कवि की व्यर्थ है कि इस नई सभ्यता ने मजबूत जड़ों के बावजूद हमें उखाड़ दिया है- अपनी विस्तृत फैली जड़ों बावजूद/ हम उखड़ते चले जाते रहे हैं/ हमारे ऊपर से गुजर रहा है/ दीमकों का लंबा जुतूस है!

‘कैक्टस के दांत’ में कवि ‘भयावह जंगल शहरों के’ कविता में शहरी संस्कृति द्वारा आदमी के साथ किए गए दुर्व्यवहार को मार्पिकता से अभिव्यक्त करता है। आदमी ‘भभकती भूख’ से व्याकुल है, लेकिन शहरी जंगल उसे भविष्य का लालच देकर भटका रहे हैं। ‘अजनबी रात’ कविता में कवि इस शहरी संस्कृति के अंधेरे और किटकिटाते दांतों और लपलपाती जीभों का चित्रण अपने प्रिय प्रतीकों के कौशलपूर्ण प्रयोगों से करता है- नदी में नहा रहा जंगल का सूरज/ शहर का सूरज फ्रीज में बंद है/ अँधेरे में शहर और जंगल जुड़ गए हैं/ लोमड़ी और शेर दफ्तरों में जा बैठे हैं/ नुकीलें दांते किटकिटाते/ लंबी जीभ लपलपाते/ अफसर जंगल के बीच धूम रहा है।

कवि ने देखा कि शहर के कुछ लोगों ने ‘सूरज’ को अपने फ्रीज में बंद कर लिया है, अर्थात्, जीवन की सुविधाएं तथा अवसर कुछ लोगों के कब्जे में हैं और शेष लोग किस प्रकार अँधकार में जी रहे हैं। ‘गुलमोहर खोल उठा’ में शहर संस्कृति में पनपने वाले अपराधों-नशीले पदार्थ, वेश्यावृत्ति, मुनाफाखोरी, पक्षपात, व्याभिचार, धर्म एवं सत्ता का दुरुपयोग, आतंकवाद, शोषण और दमन, सैलानियों की भोग-लीला आदि का कवि ने खुलकर वर्णन किया है। ‘आधुनिक उपलब्धियां’ कविता में आतंकवाद का इतना आतंक है कि ईश्वर भी सिर छिपाने के लिए इधर-उधर भाग रहा है- ‘खुदा भाग रहा छुपाने को सर/ इस शहर में उस शहर/ आतंकवादी पीछे-पीछे नगर-नगर।’

‘उत्तर’ कविता में मॉरीशस के एक हार बेचने वाले निर्धन बच्चे का चित्र है जो एक भी हार नहीं बेच पाता और रेस्तरां से भोजन की आने वाली सुगंध को अपने नथुनों से सूंघ-सूंघकर रखा रहा है। ‘इंद्रधनुष का देश’ में मॉरीशस में अमेरिकी सैलानियों की वेश्यावृत्ति का चित्रण है और ‘जब भी’ कविता में शहरी मुनाफाखोरों, सिफारिशी, इंटरव्यूओं, नशीले पदार्थों धर्म के दुरुपयोगों, शत्रुओं तथा हिंसाओं की वास्तविकता को उजागर किया है। कवि के ‘लरजते लम्हे’ कविता-संग्रह में भी शहरी संस्कृति की इस नई दुनिया का भयावह चित्र है। इस संग्रह की कविता ‘नई दुनिया’ में इस दुनिया को सार्थक प्रतीकों से उद्घाटित किया है- ‘वक्त की पीठ पर सवार/ निकला था नई दुनिया की खोज में/ मुझे द्युमाते-द्युमाते वक्त थक कर/ बैठ गया जिस ठोर पर/ उस दुनिया में दिन में चांद उगते देखे/ रात में बूढ़े सूरज को आग तापते पाया/ और कंधों पर बंदूक थामे लोमड़ियों को/ कुत्तों के शिकार पर जाते देखा।

यह नई सभ्यता चुपचाप घरों में प्रवेश कर रही है और घर की बुनियाद चरमरा रही है। कवि की चिंता वर्तमान की ही नहीं भविष्य की भी है, मनुष्य और मनुष्य समाज की बुनियाद की रक्षा की है, मनुष्यता और स्वस्थ मानवीय समाज की है। उसके प्रश्न मॉरीशस द्वीप के लिए ही नहीं, पूरे विश्व के लिए है।

अभिमन्यु अनत ने अपने वैचारिक संसार की स्थापना के लिए ‘सूरज’ का प्रतीक चुना है, जो भारत के हिंदी कवियों ने भी बहुतायत से ग्रहण किया है। अभिमन्यु अनत एक फोटोग्राफर भी हैं और मैंने उनके घर पर सूर्यस्त की विभिन्न मुद्राओं और छवियों में लगभग एक हजार रंगी पारदर्शियां

देखी हैं। सूरज के प्रति इतना आत्मिक लगाव अनत के अलावा अन्य किसी हिंदी कवि में दिखाई नहीं देता। सूरज अनत के जीवन का हिस्सा है और कविता का भी, और वह रंग-बिरंगे रूप में अनेक अर्थों तक व्यंजना के साथ-साथ चलता है। डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' से पहले कविता संग्रह की भूमिका में लिखा है, 'कवि को सूरज का रूपक बहुत प्रिय है, क्योंकि उसने अपनी धरती के संघर्ष और समाज के वैषम्य को उजागर किया है। कवि की कविता में सूरज के अनेक रूप हैं जो आदमी की स्थिति, नियति, आकांक्षा, पराजय, मोहभंग, उदासीनता, अस्मिता और संभावना आदि से निर्पित होते हैं। 'नागफनी में उलझी सांसें' में दस के लगभग ऐसी कविताएं हैं, जिनमें सूरज है और भिन्न-भिन्न रूपों में है। 'सूरज की गवाही' में सूरज बड़े लोगों का प्रतीक है, जो मजदूरों का हिमायती नहीं विलासी मालिकों का सेवक है- जिस दिन सूरज को/ मजदूरों की ओर से गवाही देनी थी/ उस दिन सुबह नहीं हुई/ सुना गया कि/ मालिक के यहां की पार्टी में/ सूरज से ज्यादा पी ली थी।

'मेरा सूरज' में 'नंगे, भूखे, अकेले तथा थके' सूरज की चर्चा की है। वह जानना चाहता है कि उसकी कोठी का 'उजाला' दूसरों की मुट्ठी में क्यों बंद है? और क्यों उसका 'सूरज' पुराना पड़ गया है? इस सूरज की मृत्यु हो, उससे पहले कवि एक नए सूरज को बना लेना चाहता है- 'सूरज की मृत्यु से पहले/ एक नया सूरज बना लो।'

'कैकटस के दांत' में यह सूरज लगभग बीस कविताओं में अपना स्थान बनाता है। कवि उसे अनेक कोणों तथा संदर्भों से देखता है। कवि देखता है कि एक आदमी ने सूरज को 'काली चादर' ओढ़ा दी है। सूरज को जंग लग गया है, 'शहर का सूरज फ्रीज में बंद है', सूरज सुस्ता रहा है, ठंड के मौसम में धनी लोग सूरज को खरीद लेते हैं, सूरज का अपहरण हो गया है और जब सूरज नकली चेहरों को पिघलाकर न्याय करता है तो उसे सजा मिलती है और शायद इसलिए वह कई बार 'अँधेरे के मसीहों' से समझौता करके श्रमिकों के माथों से पसीने की बूँदें गायब कर देता है। कवि सोचता है कि जब सिर पर सूरज न हो तो आजादी कैसी? इसलिए वह चाहता है कि नया सूरज उगे और अँधेरे के भेड़ियों से उसके अर्थात् आम आदमी के अस्तित्व की रक्षा करें- वह नया सूरज कब उगेगा?/ अपनी परछाई कब दीखेगी/ अपनी सांसें कब गैर की-सी/ नहीं लगेंगी/ कब उजाले में/ भेड़िया पहचाना जाएगा/ जो अँधेरे में कुतरता आ रहा/ मेरे अस्तित्व को।

कवि 'एक डायरी बयान' में सूरज को 'आशिक' बना देता है और इतना छोटा एवं शक्तिहीन भी कि उसे निगला जा सके। कवि के चौथे कविता-संग्रह 'गुलमोहर खोल उठा' में भी लगभग 10-12 कविताओं में सूरज उपस्थित है और अपने पूर्व रंगों के साथ कुछ नए रंग भी उसमें मिल गए हैं। कवि को याद आता है कि सूरज ने उसके दादा को कोड़े बरसाने वाले हाथों से भी अधिक ताकत दी थी। अब यही सूरज शब्द, धुन और रंग के अभाव में सोने चला जाता है और लोग हाथों में मिट्ठी का चिराग लेकर सूरज की तलाश में निकल पड़ते हैं। कवि इस कारण नए सूरज के उगने की प्रतीक्षा में है, क्योंकि वह हर मुट्ठी और हर आंगन को 'नया सूरज' देना चाहता है- सोचा था अपने स्वर से/ अपना एक सूरज तराश कर/ हर खाली मुट्ठी में भर-भर/ हर आंगन को नया सूरज दे दूंगा।

कवि के 'लरजते लम्हे' कविता-संग्रह में भी सूरज अपनी भिन्न-भिन्न छवियां दिखाता है। वह कभी बूढ़ा होता है, कभी 'बेरहम' होता है, कभी रात पर भी राज करना चाहता है, कभी रास्ता भटक

जाता है, कभी उसके रथ का पहिया कीचड़ में फंस जाता है और कभी सूरज आसमान से गिरता है। कवि का विश्वास है कि थके और सोए सूरज को एक दिन पूर्वी संसार का संगीत समवेत-स्वर में उसे जगाने का जागरण-गीत शुरू करेगा- सूरज को नींद से जगाने के लिए/ विश्व के पूर्वी भाग के सभी परिदें/ तारों के झिलमिलाते संगीत के साथ समूह सुर में जागरण-गीत शुरू कर देंगे।

अभिमन्यु अनत यहां भारत की ओर संकेत कर रहे हैं। भारत ही विश्व का पूर्व है जो संपूर्ण मानवता के लिए सूरज को जगा सकता है और उसकी ऊर्जा, प्रकाश तथा जीवन सभी को समान रूप से बांट सकता है। भारत की संस्कृति सूरज को न बंदी बनाती है और उस पर एकाधिकार करती है और न उसका शोषण एवं मदन के लिए ही उपयोग करती है। भारत सूर्योदय का उपासक है, सूर्योस्त का नहीं। सूर्योदय से अँधकार का नाश और प्रकाश का जन्म होता है। भारत की आस्था है कि सूरज जीवन का कारण है, सुख और समृद्धि का कारण है, वह सबको प्रकाशित करता है और अँधकार को नष्ट करता है। अभिमन्यु इसी सूरज को उगाना चाहता है और उसे ही संपूर्ण मानवता के लिए उपलब्ध भी करना चाहता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि अभिमन्यु अनत में सामाजिक पक्ष प्रबल है। प्रकृति, परिवेश और जीवन के सभी पक्षों तथा स्थितियों का उपयोग वह मनुष्य और मनुष्य समाज के लिए ही करता है। इस सामाजिकता में कवि के निजी जीवन की अनुभूतियां महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। अधिकांश रूप में ये अनुभूतियां तथा संवेदनाएं वे हैं जो कवि के सामाजिक प्राणी के रूप में जीवन में आई हैं, परंतु ऐसा नहीं है कि कवि की कविताएं प्रेम से शून्य हैं। कवि का यह दावा कि उसने प्रेम-कविताएं नहीं लिखीं, इस कारण सत्य-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इन कविताओं की संख्या इतनी कम है कि वे सामाजिकता की विस्तृत धारा में खो-सी जाती हैं। हमारे लिए यह आवश्यक है कि इन प्रेम-कविताओं को अलग से देखें और कवि के अंतर्मन में प्रवाहित प्रेम की प्रबल धारा को अनुभव करें। कवि के पहले कविता-संग्रह ‘नागफनी में उलझी सांसें’ में प्रेम कविताएं नहीं हैं, लेकिन दूसरे कविता-संग्रह ‘कैक्टस के दांत’ में यत्र-तत्र इसकी झलक मिलती है। इसकी कविता ‘स्वतंत्रता मेरी’ में कवि कहता है- मेरा एक हृदय है/ प्यार करने वाला।

कवि ‘सफेद रात’ शीर्षक कविता में स्वीकार करता है कि उसका प्रेम एक गांव की लड़की से हुआ था जो ईख के पते बटोरती थी, किंतु अब उसका प्रेम ‘भूखी और निद्राविहीन’ सफेद रातों से हो गया है- मेरा प्रणय ईख के पते बटोरती/ गांव की लड़की से हुआ था/ परिणय/ सफेद रातों से हो गया है।

‘एक डायरी बयान’ की 3-4 कविताओं में प्रेम की अभिव्यक्ति है। यद्यपि यहां भी कवि की ‘भूख’ उसकी प्रेम-कामना पर हावी है, परंतु 12 सितंबर को लिखी डायरी में कवि रात भर अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा करता है और 29 अगस्त को वह अपनी कामना को लिख ही देता है- तुम्हारे कोमल लाल होंठों को/ चूमने की शीतल चाह थी मेरे भीतर।

‘गुलमोहर खोल उठा’ कविता-संग्रह में कवि अपनी प्रेमानुभूतियों की कुछ और छवियों की अभिव्यक्ति करता है। ‘गवाही ढूबते-उगते सूरज की’ कविता में समुद्र-तट पर प्रेमिका से मिलन का दृश्य अंकित करता है, परंतु वह उस पर भूख को हावी होने देता है। कवि यहां मिलन का रमणीय दृश्य उत्पन्न कर सकता था, परंतु यह प्रेमी-प्रेमिका को दो भिन्न दिशाओं की ओर उन्मुख कर देता

है- मेरे पास पहुंच आते ही कहोगी तुम/ प्यार की तासीर ठंडी होती है/ मैं कहूंगा उष्ण होती है इसकी तासीर/ और फिर अपनी-अपनी पीठ से जुड़कर/ हम दोनों देखते यह रह जाएंगे दो अलग दिशाओं को।

कवि कुछ कविताओं में प्रेमिका का वर्णन करता है। ‘मैं’ और ‘तुम’ का फासला अभी बना हुआ है- ‘मैं’ और तुम के बीच फासला अभी बना-का-बना है, लेकिन यह फासला ‘लरजते लम्हे’ तक आते-आते समाप्त होता है और कवि ‘संसर्ग’ कविता में मिलन के क्षण को रजनीगंधा से परिपूर्ण बना देता है- तुम मेरे लिए जो फूल लाती थी/ उनमें शामारैल के पूरे सप्तरंग हुआ करते थे/ और जो कविताएं मैं तुम्हें सुनाता था/ वे अपने मैं ग्री-ग्री का उफान लिए होती थीं/ उन दुधिया झागों को तुम अंगुली में लेकर/ अपने चेहरे पर लपेट लेती थीं/ और माहौल रजनीगंधा बन जाया करता था।

कवि यहां ‘शामारैल’, ‘ग्री-ग्री’ के उफनते समुद्र तथा ‘रजनीगंधा’ को अपनी प्रेमाभिव्यक्ति का प्रतीक बनाता है। मॉरीशस में ‘शामारैल’ ऐसा पर्वत है जो सात रंगों की मिट्टी से बना है और ‘ग्री-ग्री’ का समुद्र रात-दिन उफनती लहरों को चट्टानों पर पटकता रहता है। इस समुद्र के किनारे मैं भैंसे अपनी चार यात्राओं में देखा है और उसकी वेगवती लहरों, इसके उफान तथा किनारे की चट्टानों से टकराने से उत्पन्न शोर तथा दृश्य रोमांचित करता है। कवि अपने इस प्रेम-मिलन में भी, ग्री-ग्री के उफानों से परिपूर्ण कविताओं को ही अपनी प्रेमिका को सुनाता है और स्वयं इस माहौल को रमणीय बनाने का प्रयत्न नहीं करता। कवि की प्रेमिका अवश्य समझदार है जो सतरंगे फूल लाती है और समुद्री झागों से खेलते हुए वातावरण के रजनीगंधा के सौंदर्य और सुगंध से भर देती है। ऐसे चीखते और विद्रोह वाले कवि की जो भी प्रेमिका होगी, वह संपूर्णतः समर्पित होगी और उसके पास पहल करके अपनी प्रेमाभिव्यक्ति करने के अलावा कोई रास्ता नहीं होगा।

कवि के पांचवें कविता-संग्रह ‘लरजते लम्हे’ में प्रेमी की संवेदनाओं में विस्तार हुआ है तथा उसके नए रूप भी सामने आए हैं। इसकी लगभग 15 कविताओं में प्रेम की विदग्धता है, मिलने की छटपटाहट है, मिलन की प्रतीक्षा में रमणीय कल्पना और दर्द का समुद्र है। कवि ने पहली बार कविताओं में प्रेम की कल्पना और अनुभूति को इतना महत्व दिया है। कवि प्रेमिका के सौंदर्य, शारीरिक सुगंध, वेशभूषा आदि का अनेक रूपों में वर्णन करता है। चांदी रात में जब सूखी पत्तियां खड़खड़ाती हैं तो कवि को अपनी प्रेमिका की चूड़ियों के बजने का भ्रम होता है। प्रेमिका के शरीर से भीनी-भीनी सुगंध पेड़ के पत्तों तक को उत्तेजित करती है और पत्ते टूट-टूटकर उसके पीछे चलने लगते हैं। प्रेमी के प्रेम-पात्रों का जब हवा उड़ाकर ले जाती है तो उसकी प्रेमिका अपने ‘प्रेम-गीतों’ को संसार में फैला देना चाहता है- मेरी सारी चिट्ठियों को/ हवा उड़ा ले जाती है/ तो तुम कहती हो कि हवा उन्हें/ किसी एकांत में पढ़कर/ हमारे प्रेम-गीत जग को सुनाएगी।

कवि जब प्रेमिका से मिलता है तो गर्व का अनुभव करता है और अपनी जिंदगी उसे सौंप देता है परंतु वह जिंदगी लौटा देती है तो कवि ‘जिंदगी की लाश’ को उठाए घूमता है। प्रेमिका की उपेक्षा, उदासीनता तथा दुराव कई कविताओं में व्यक्त हुआ है। प्रेमिका ‘कैक्टस’ का पौधा उगाती है तो प्रेमी ‘रजनीगंधा’ का। प्रेमी तथा प्रेमिका में क्षणिक मिलन भी हुआ था लेकिन वह अब वियोग में बदल गया है और अब लहरें और हवा के झाँके दोनों के विरह कहानियां सारे संसार को सुना रहे

हैं- जो पदचिह्न छोड़े थे/ बालू पर मेरे पदचिह्न के आगे-आगे/ उन पर में लिखता गया था जो कविताएं/ जिन्हें आ-आकर लहरें समेटती रहीं/ तुफानों को शांत करने के लिए/ लहरें उन्हें वे कविताएं बांटती रहीं/ और आज दुनिया को सुना रहे हवा के झोंके/ मेरी-तेरी विरह की कहानियां।

कवि के प्रेम की गहनता यह है कि प्रेमिका से कोई रिश्ता न बन पाने पर भी वह उसके बिना अधूरापन अनुभव करता है- ‘फिर भी तुम्हारे बिना मैं अधूरा क्यों होता हूँ?’

अतः इस विवेचन के उपरांत यह कहा जा सकता है अभिमन्यु अनत सामाजिक दबाव तथा निजी उदासीनता के बाद भी अपनी प्रेमानुभूतियों को अभिव्यक्ति होने से नहीं रोक पाए हैं। अपने यौवन काल में कवि चाहे अपने प्रेम की संवेदनाओं को दबाने में सफल हुआ हो, परंतु प्रौढ़ता के आते-आते प्रेम, मिलन तथा वियोग के क्षण तथा उसकी अनुभूतियां कविताओं में व्यंजित हो ही जाती हैं। कवि के प्रेम की विशेषता यह है कि वह प्रकृति के संसर्ग में पनपता है और विरह में भी प्रकृति ही उनके साथ होती है। कवि का प्रेम स्वार्थ पर अथवा भोग-वासना पर टिका नहीं है, वह अपने अधूरेपन को प्रेमिका के मिलन से समाप्त करके स्वयं को पूर्ण रूप देना चाहता है। प्रेम में पूर्णता की यह तलाश कवि के प्रेम-दर्शन का अभिन्न अंग बन जाता है और उसकी विशिष्टता भी। कवि की विवशता यह है कि अपने निजी प्रेम-संबंधों को सार्वजनिक नहीं करता चाहता और यह उचित ही होगा कि वह अपनी निजी प्रेम-संबंधाओं की सार्वजनिक अभिव्यक्ति न करे, परंतु प्रेम में उद्दाम आवेग होता है और उसे बड़े-से-बड़े अंकुश से भी रोकना कठिन होता है। अभिमन्यु इसमें थोड़े बहुत सफल होते हैं, क्योंकि कवि समष्टि का कवि है, व्यष्टि का नहीं। उसकी सामाजिक चेतना इतनी प्रबल है कि उसकी प्रेमानुभूतियां तथा प्रेम-छवियां थोड़ी-सी झलक दिखाकर अदृश्य हो जाती हैं। यह व्यष्टि के समष्टि में विलीन होने का प्रमाण है। यह ‘निजता’ का उदारीकरण है, जहां कवि समाज का पर्याय बन जाता है। कवि की कविता ‘एक प्रेम-गीत’ इसी कारण समष्टि-गीत बन जाती है। यह एक बड़े कवि होने का प्रमाण है कि वह अपनी ही काव्य-सृष्टि में स्वयं को लुप्त करता है और अपने परिवेश एवं समाज को प्रकट करता है। यह स्वयं का तुप्तीकरण तथा समाज का प्रकटीकरण ही साधारणीकरण का आधार है। कवि अपने अकेलेपन में, एकांत में समष्टि को जीता है और यदि वह अकेला बांसुरी भी बजा रहा है तो उसमें भी समाज का सच, सुंदर और शिव ही निकलता है।

अभिमन्यु अनत की काव्य-यात्रा का यह विश्लेषण हमें कुछ निष्कर्षों तक पहुंचता है। अभिमन्यु अपने देश की काव्य-परंपरा से प्रभावित हैं। वे हिंदी काव्य की कुछ पूर्व प्रवृत्तियों को युग-धर्म के कारण अपनाते हैं, उनका विस्तार भी करते हैं तथा कुछ नई प्रवृत्तियों की सर्जना भी करते हैं। अनत के आगमन तक मॉरीशस में धार्मिक गीतों तथा भजनों की परंपरा बन चुकी थी, किंतु उन्होंने न तो उधर देखा और न आलोचनात्मक दृष्टि से उसका परीक्षण ही किया। अनत ने पहली बार कवि के रूप में अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य को एकसूत्र में पिरोया और इस त्रिकाल के संसर्ग और द्वंद्व में अपने समय के मनुष्य की स्थिति और नियति की वास्तविकता को पहचाना और उसे पाठकों के सम्मुख रखा। मॉरीशस की हिंदी कविता में काल का यह त्रिआयामी विस्तार एवं संश्लेषण पहली बार हुआ है, बल्कि यह कहें कि इसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति पहली बार हुई है। कवि मॉरीशस के अतीत के प्रति भावुक है, व्यथित और संवेदनशील है। उसकी आँखों के सामने अतीत नाचता है, गोरे मालिकों के खेतों में कवि को भारतीय मजदूरों के पसीने और खून की बूँदें

दिखाई देती हैं और दिखाई देता है उनका भूखा पेट, कोड़ें और बांसों से लहुलुहान शरीर। यह इतिहास अब गूंगा हो रहा है। मॉरीशस स्वतंत्र हो गया है और शासक एवं धनी वर्ग इस अतीत को भूल रहा है और आम आदमी झूठे आश्वासनों में जी रहा है वर्तमान को घायल कर दिया है। आम आदमी झूठे आश्वासनों में जी रहा हैं वर्तमान को घायल कर दिया है। आम आदमी का वर्तमान अँधकारमय है और भविष्य भी। कवि देश की सीमाओं से पार जाकर देखता है। विश्व में चारों ओर हिरोशिमा पनप रहा है। कवि सोचता है कि रोटी के लिए आदमी मरे तो बात समझ में आती है, यह आदमी किस चीज के लिए आदमी को खा रहा है?⁸⁹ इस प्रकार अभिमन्यु अनत वर्तमान के कवि हैं, जिसमें अतीत की व्यथा और भविष्य की आशंकाएं विद्यमान हैं। अभिमन्यु अनत ने मेरे ऐसे ही एक प्रश्न के उत्तर में आस्था-भरे अतीत के प्रति गर्व और श्रद्धा, सीले और पैंदीहीन वर्तमान के प्रति हताशा और आक्रोश तथा अनिश्चितता और पराए भविष्य के प्रति चिंता की रेखाएं हैं।

इसी बातचीत में अनतजी ने स्वीकार किया कि उन्होंने अतीत की दोनों धाराओं का उपयोग किया है एक, भारत के धर्म, संस्कृति, दर्शन आदि का अतीत जो भारतीय मजदूर अपने साथ लाए; तथा दूसरा, इन भारतीयों द्वारा गोरे मालिकों के हाथों भोगा शोषण, दमन, अपमान एवं दासता का जीवन। अनत का कहना है कि मॉरीशस में आए भारतीयों का अतीत साहस, प्रण और अस्मिता पर निष्ठा का अतीत था और वे अपने साथ ‘गंगा की निर्मलता और हिमालय की महानता’ साथ लेकर आए थे। अगर ये नहीं लाते तो आज उनका नामोनिशान नहीं होता, वे आकाओं की सेवा के बाद विस्मृति में विलीन हो जाते। मैंने उनकी ‘गंगा की निर्मलता और हिमालय की महानता का गीत’ गाया है, केवल अतीत को गौरवान्वित करने के लिए नहीं, बल्कि तिमिर में फंसे वर्तमान को रोशनी देने के लिए।

अभिमन्यु अनत ने अपने देश के वर्तमान की विषम परिस्थितियों, असंगतियों, माननीय व्यथाओं एवं भेदभावों की चर्चा में कहा कि आजादी के बाद आजादी के मूल्यों का हनन, राजनीतिक वेश्यावृत्ति, उसका छलावा और अब भ्रष्टाचार, आदमी-आदमी के बीच बढ़ता चला आ रहा अंतर, रिश्तों का टूटना, विसंस्कृतीकरण, घुटन, पूंजीपति देशों के प्रयोजन-भरे सहयोग, बेकारी, हताशा, अधिकारों का हनन, अवमूल्यन, भाई-भतीजावाद, मंत्रियों की यात्राएं आदि, कहां तक बताऊं आजादी के बाद की विषमताओं, विसंगतियों और व्यथाओं की कहानी। अनतजी ने एक अन्य प्रश्न के उत्तर में वर्तमान की समस्याओं के समाधान तथा भविष्य की मंगलमय एवं कल्याणकारी बनाने के लिए अपने सुझावों में कहा कि सबसे पहले वर्तमान बांझ व्यवस्था को मिटाना होगा। एक सही व्यवस्था करके मजदूर को जमीन अथवा उद्योग में हिस्सेदार बनाना होगा। संपत्ति पर नाजायज अधिकारों को तोड़कर सही वितरण के बाद ही हर आदमी को बराबर का अवसर मिल सकता है। मेरी योजना होगी, सबको बराबर का अवसर मिले, शिक्षा के लिए, श्रम के लिए, फल के लिए। अभिमन्यु अनत अपने इन विचारों में प्रेमचंद से जुड़ जाते हैं। प्रेमचंद भी अपने साहित्य के द्वारा आम आदमी के लिए ऐसी ही सुविधाओं तथा समानताओं एवं भेदभाव रहित सामाजिक व्यवस्था के लिए जीवन-पर्यात लड़ते रहे और यदि वे भारत की स्वतंत्रता के बाद जीवित रहते तो उनका यह युद्ध पहले से अधिक तीव्र होता। अभिमन्यु अनत भी वर्तमान जीवन में फैलती यांत्रिकता तथा विसंस्कृतिकरण को भी, प्रेमचंद के समान ही, मानव-संस्कृति के लिए घातक मानते हैं। अनत के अनुसार यंत्र की आवश्यकता है, परंतु

ऐसे यंत्र की नहीं जो मनुष्य को ही यंत्र बना दें।

अभिमन्यु अनत की मूल रूप से पीड़ा, प्रश्न, विद्रोह, परिवर्तन, मुक्ति और मनुष्यता के कवि हैं। मॉरीशस तथा कवि के पूर्वजों का अतीत पीड़ाजन है। यह पीड़ा कवि को व्यथित करती है, लेकिन इसमें गर्व का भाव भी है। गर्व, अत्याचारों को सहन करने की अद्भुत क्षमता का तथा अपनी अस्मिता की रक्षा का प्रश्न करना कवि का मूल स्वभाव है। कवि मनुष्य और मनुष्यता विरोधी प्रत्येक परिस्थिति तथा क्रिया-कलापों पर प्रश्न करता है। वह अपने देश की स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न नई व्यवस्था में, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से आने वाली विसंस्कृतिकरण की प्रवृत्ति में एवं विश्व को हिरोशिमा जैसे विध्वंस में पुनः धकेलने की महत्वाकांक्षा में घोर अमानवीयता तथा मानव-विरोधी षड्यंत्र देखता है और उसका विरोध करते हुए उनके नियामकों से अनेक प्रकार के प्रश्न करता है। अभिमन्यु की काव्य-सृष्टि इसी कारण प्रश्नमूलक है, प्रश्न उसका धर्म और उसकी आत्मा है। कवि के प्रश्न मानवता के लिए हैं, इसलिए वह प्रश्न करने में मृत्यु तक की चिंता नहीं करता- जब तक मैं प्रश्न हूँ/ मुझे मृत्यु का भय नहीं।

कवि में प्रश्न के साथ विरोध और विद्रोह का भाव है। डॉ. शिवमंगल सिंह ‘सुमन’ ने ठीक ही लिखा है कि अभिमन्यु अनत जन्मजात विद्रोही हैं, राष्ट्र-जागरण का संक्रमण-काल उसकी वाणी में पूर्ण भावानिवेश में स्पंदित है। कवि का यह विद्रोह मानवता और लोक-मंगल के लिए है जो ‘नपुंसक राजनीति’, ‘विघटित समाज’, ‘पाखंडपूर्ण धर्म’ तथा ‘शोषण’ की प्रवृत्ति पर तेजाब छिड़कता है और प्रश्न एवं विरोध करके कुहासे में छिपे चेहरों को नंगा करना चाहता है। अतः कवि को ‘मानवीय चीत्कार’ तथा ‘वैचारिक क्रांति’ का भी कवि कहा जा सकता है। अभिमन्यु अनत की विशेषता यह है कि आम आदमी के प्रति उसकी यह प्रतिबद्धता न तो भारत के कुछ हिंदी कवियों के समान बनावटी है और न मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार के लिए। उसकी प्रतिबद्धता शुद्ध मन की है, जो वास्तविक मानवता से उत्पन्न होती है। अभिमन्यु अनत प्रतिबद्धता को एक ‘लेबल और नारा’ मानते हैं। वह मेरे एक प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट कहते हैं कि ‘प्रतिबद्धता अगर कोई वाद हुई और लेखक की जेहनियत में अपना उपनिवेश बनाए हुई हो तो मैं अपने को प्रतिबद्ध साहित्यकार नहीं मानता। मैं आम आदमी के दुःख-सुख, आशा-निराशा, प्रण और संघर्ष के साथ अपने को जोड़ने का प्रयास में लिखते रहने वाला एक समर्पित लेखक हूँ।’ इस आम आदमी की वकालत में प्रेमचंद और अभिमन्यु एक हैं। अभिमन्यु भी आम आदमी को अपनी कविताओं से यह समझा देना चाहता है कि उसे आत्म-निरीक्षण, आत्मलोचन के साथ अपने शत्रुओं को पहचाना होगा और स्वयं ही इस लड़ाई को लड़ते हुए ऊपर उठना होगा- अब आदमी को स्वयं उठना होगा/ स्वयं पार करना होगा/ अमृत की बाढ़ के बाद की उफनती नदी को/ कोई दूसरा नहीं उठेगा तुम्हारे लिए/ जिसको तुमने अमृत दिया/ कुर्सी पर बैठाया वह भी पार नहीं करेगा/ उफनती नदी को तुम्हारे लिए।

कवि का यह मुक्ति के लिए आहवान है। यह मुक्ति केवल मॉरीशस की जनता के लिए ही नहीं है बल्कि संपूर्ण मानवीय समाज के लिए है। अभिमन्यु अनत ने इसे स्वीकार करते हुए कहा है कि मैंने अपनी कविताओं में भूगोल अवश्य ही अपने देश का लिया है, परंतु पीड़ा वहां समूचे विश्व की है। इस प्रकार मॉरीशस का यह जन-कवि मानव की पीड़ा एवं उसकी मुक्ति का गायक बन जाता है लेकिन कवि विश्व-कवि बनने के लिए तथा अन्य किसी भी मोह-माया के प्रभाव में अपनी

‘अस्मिता’ को खंडित नहीं होने देता। उसकी अस्मिता उसका प्राण है, उसका जीवन है और इसके लिए वह अपनी खाल तक नुचवाने को तैयार है, सूली पर चढ़ने को तैयार है, तन-मन-धन सब अर्पित है अपनी पहचान के लिए, अपनी अस्मिता और भाषा के लिए- उतार लो मेरे कपड़े/ खींच लो मेरे शाल/ खाल तक नोंच लो/ कर दो मुझे चिथड़े-चिथड़े/ मुझे सूली चढ़ा दो/ शूलों की खेती उगा दो/ मेरे चारों ओर/ अपनी आन-बान के लिए/ चिता सजा दो मेरे लिए/ मेरे दर धन का अंबार लगा दो/ या मेरे डकैतों को भेज दो/ हड्डप ले जाएं मेरे क्षण-क्षण/ मेरे मन-मन, मेरे कण-कण भी ले लें/ जब्त कर लो मेरी हर आशा/ छिनने नहीं दूँगा, तुम्हें लेकिन/ अपनी पहचान, अपनी भाषा।

कवि की यह जीवटता, जिजीविषा, उत्सर्ग, समर्पण तथा अस्मिता के लिए बलिदानी मनोवृत्ति उसे मौरीशस का राष्ट्रीय-कवि बनाती है। कवि के इस राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं भाषिक स्वाभिमान में भारतीयता की अपराजेयता के प्रति अटूट विश्वास है। यह भारतीयता कवि को संपूर्ण मानवता के लिए संघर्षरत करती है और उसकी कविता में विश्व-मानव की मुक्ति और नए सृजन का स्वप्न भरती है। अभिमन्यु इसी कारण हर विधंस और तूफान के बाद उसी प्रकार नव-निर्माण में प्रवृत्त होते हैं, जैसे कवि के आंगन के आम के पेड़ पर हर तूफान के बाद चिड़िया अपना नया घोंसला बनाती है- उस चिड़िया के उन गानों से/ एक गाना सुना दूँ तुम्हें/ मेरे आंगन के आम के पेड़ पर जो/ हर तूफान के बाद/ घोंसला बनाती रही है/ और गाया करती है एक ही रट में/ मेरे ही वास्ते जैसे उन मधुर गीतों को।

अभिमन्यु की यह काव्य-यात्रा एक प्रकार से मौरीशस की ही काव्य-यात्रा है, जो कवि के साथ मौरीशस की हिंदी कविता की उपलब्धियों तथा ऊँचाइयों को रेखांकित करती है। वे अपने साथ अनेक समकालीन कवियों को साथ लेकर चले हैं और उनमें से अनेक कवि विश्व की समकालीन काव्य-चेतना के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलते रहे हैं, यद्यपि इसके साथ उन्होंने अपनी ‘मौरीशस अस्मिता’ को जीवित रखा है। अभिमन्यु अनत व्यय इसके जीवंत एवं प्रामाणिक उदाहरण हैं। वे आज भारत में ही नहीं विश्व में मौरीशस के हिंदी साहित्य के प्रतीक-साहित्यकार हैं। मौरीशस और अभिमन्यु एक-दूसरे के पर्याय हैं और प्रतिरूप हैं और संपूर्ण हिंदी विश्व इसे स्वीकार करता है।

अभिमन्यु अनत ने मौरीशस की हिंदी कविता को आधुनिक परिवेश तथा चेतना दी है और उसे साधारण मनुष्य के स्वाभिमान, जिजीविषा, अस्मिता, शोषण की मुक्ति से जोड़कर उसके बेहतर जीवन के लिए संघर्ष किया है। मौरीशस की हिंदी कविता में इस साधारण मनुष्य के अस्तित्व, नियति एवं कल्याण को केंद्र में स्थापित करके अभिमन्यु ने अपने देश की हिंदी कविता को विश्व-कविता की धड़कनों से संबद्ध कर दिया है और कविता की सांस्कृतिक, सामाजिक और मानवीय सार्थकता को स्थापित किया है। अतः अभिमन्यु को विधंस, विद्रोह, मुक्ति तथा मानव-कल्याण का कवि कहना सर्वथा उचित होगा। नोबेल पुरस्कार विजेता पोलिश कवि चेश्वाव मिवोश के शब्दों में कहें तो अनत ‘सत्ता का ग़इरिया’ है, जो अपनी कविताओं से जनता, प्रकृति एवं अपने समय को सुरक्षित करने का प्रयत्न करता है। अभिमन्यु अनत के इस योगदान से मौरीशस की हिंदी कविता की अपनी पहचान तो बनी ही है, विश्व की हिंदी कविता में मौरीशस की हिंदी कविता की भी पहचान, अर्थवत्ता तथा प्रासांगिकता मजबूती से स्थापित हुई है, मौरीशस में हिंदी कवियों की एक नई पीढ़ी अब स्थापित हो चुकी है। आशा है, अभिमन्यु अनत की काव्य-उपलब्धियों के साथ ये कवि अपना-अपना योगदान

करके मॉरीशस की हिंदी कविता को नई अर्थवत्ता देते हुए उसे विकसित करते रहेंगे तथा भारत के हिंदी पाठक भी उनका रसास्वादन करते हुए उसके वैशिष्ट्य को स्वीकार करेंगे। मॉरीशस की हिंदी कविता को अभी अनेक मंजिलें तय करनी हैं, लेकिन उसके लिए मॉरीशस की हिंदी कवियों की नई पीढ़ी को साधना करनी होगी। कविता में साधना से ही सिद्धि मिलती है। कविता को जीवन में जीना होता है। कविता को जीवन का पर्याय बनाना होता है। कविता और जीवन की एकरूपता ही कवि को सिद्ध करती है। मॉरीशस में अभिमन्यु अनत के बाद हिंदी कवियों की जो नई नस्ल आई है, उसमें संभावनाएं कम नहीं हैं, लेकिन अपने समय की चुनौतियों, तनावों तथा मानव-द्रोही स्थितियों से टकराने एवं संघर्ष करने की आवेगपूर्ण तत्परता के साथ अपनी मौलिकता का संस्पर्श भी आवश्यक है। मॉरीशस के इतिहास, भूमि और प्रकृति में काव्य-सृजन की अनंत संभावनाएं छिपी हैं। वास्तव में, वह कविता के लिए बड़ी उर्वरा भूमि है। मॉरीशस के हिंदी कवि प्रकृति और जीवन के इंद्रधनुषों के बीच रहते हुए हिंदी कविता को नया रूप-रंग तथा नया आयाम दे सकते हैं। यदि वे ऐसा कर सके, जिसकी मुझे पूरी संभावनाएं दिखाई हैं, तो वे न केवल अपने देश को गौरवान्वित करेंगे, बल्कि वे हिंदी कविता की वैश्विकता में मॉरीशस के योगदान को व्यापक रूप में सदैव के लिए स्थापित कर देंगे।

संदर्भ :

अभिमन्यु अनत : एक बातचीत, डॉ. कमल किशोर गोयनका।

लेख में जिन कविताओं का संदर्भ है वे अभिमन्यु अनत के निम्नलिखित संग्रहों से ली गयी हैं-

‘गुलमोहर खोल उठा’ (कविता संग्रह), ‘एक डायरी बयान’ (कविता संग्रह), ‘नागफनी में उलझी साँसें’ (कविता संग्रह), ‘कैक्टस के दांत’ (कविता संग्रह)।



ब्रिटेन में हिंदी कहानी के तीस वर्ष

उषा राजे सक्सेना

कम लोगों को मालूम है कि ब्रिटेन में सृजनात्मक हिंदी लेखन स्वतंत्रता से पूर्व से हो रहा है। यह लगभग वही समय है जब मुंशी प्रेमचंद, यशपाल, गुलेरी, जैनेन्द्र आदि जैसे लेखक भारत में हिंदी साहित्य को नई दिशा दे रहे थे। इस काल में ब्रिटेन में अधिकांश कार्य अंग्रेज विद्वानों जैसे डॉ. ग्रियर्सन, मिस्टर पिंकॉट, सर रॉल्फ टर्नर, एफ.ई.की., एच.एच. हार्ले, चाल्स नैपियर, डॉ. प्रैंक रैमंड आलचिन एवं कैब्रिज विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. स्टुअर्ट मैग्रेगर, द्वारा भाषा विज्ञान (व्याकरण और शब्दशास्त्र संबंधी), शब्दकोशों की रचना, हिंदी से अंग्रेजी के अनुवाद एवं शोध आदि पर हुआ जो एक अलग विषय है। इसके साथ यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि ब्रिटेन का हिंदी लेखन संसार अभी रचनात्मक स्थिति में है उसे अभी और सीझना है।

सन् 1930-1950 डॉ. धनीराम 'प्रेम' का समय : 1928 में भारत से डॉक्टरी की पढ़ाई करने के लिए ब्रिटेन आए डॉ. धनीराम प्रेम डॉक्टरी की उपाधि लेकर भारत वापस लौटे किंतु वहां उचित नौकरी न मिलने के कारण 1938 में वे फिर ब्रिटेन वापस आ गए और 1978 तक वे ब्रिटेन में रहे। डॉक्टर धनीराम प्रेम एक मेडिकल डॉक्टर होने के साथ साहित्यकार भी थे। उन्होंने हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लिखा। बाद में उनकी रुचि राजनीति में ऐसी बढ़ी कि उनका साहित्य से नाता छूट सा गया। 1931 से 1936 तक उनका पत्र व्यवहार मुंशी प्रेमचंद के साथ चलता रहा। दिसंबर 1931 के एक पत्र में मुंशी प्रेमचंद उन्हें लिखते हैं '...अरे मैं नहीं जानता था कि अपना धनीराम ही डॉ. धनीराम 'प्रेम' लंदन है। तुम्हारी कहानियां पढ़कर कुछ खिंचाव होता था, लेकिन यह नहीं समझता था कि इसका कारण यह है।' एक अन्य पत्र में वे लिखते हैं- 'जनाब मैंने तो समझा था कि आप फारिगुलबाल होकर अदब की ज्यादा खिदमत कर सकेंगे, मगर मेरा खयाल गलत निकला। अब महीनों गुजर जाते हैं, आपका कोई किस्सा अखबार में नजर नहीं आता...इससे तो तंगदस्ती ही बेहतर थी, जो आपसे थोड़ा बहुत लिखवा लेती थी।' (प्रेमचंद शब्दकोश भाग-2. पृ. 326-27, डॉ. कमल किशोर गोयनका)। मुंशी प्रेमचंद द्वारा जनवरी 1936 में लिखे एक अन्य पत्र से यह पता चलता है कि उनकी कहानियों की पांडुलिपि तैयार थी किंतु पैसों की राजनीति के कारण वह पांडुलिपि धनीरामजी ने वापस मंगा ली थी। '...इस देरी में मेरा कोई अपराध नहीं था। बात यह है कि प्रबंध में मैं बहुत कच्चा हूं और दुर्भाग्य से इस कारण मेरे अपनों को ही दुःख अधिक पहुंचा है। प्रेस में से लोग रुपया खा गए हैं...'

धनीराम प्रेम एक अच्छे कहानीकार, कवि, गजलकार, गीतकार और आलोचक भी थे। पत्रिका ‘हंस’ के संपादक राजेंद्र यादव को वे एक कहानीकार के रूप में याद थे और आलोचक गोपाल राय को आलोचक के रूप में। धनीराम प्रेम की कहानियां एवं एकांकी नाटक हंस, माधुरी, मर्यादा, चांद, सरस्वती, जागरण आदि में छपती रही थीं। ‘प्राणेश्वरी’, ‘वीरांगना पन्ना’, ‘चल्लरी’, ‘देवी’, ‘जॉन’ ‘चलता-पुर्जा’ ‘बहन’ ‘लाल जूता’, ‘हृदय की आँखें’ आदि चर्चित कहानियां हैं। उनकी अंतिम कहानियां ‘बारहसैनी’ मासिक पत्रिका में जून 1977 और 1979 में प्रकाशित हुई थी। डॉ. धनीराम प्रेम ही ब्रिटेन के पहले कहानीकार थे। उन्होंने मेडिकल साइंस पर ‘इंजेक्शन थेरेपी’-1937 ‘कलर ऐंड ब्रिटिश पॉलिटिक्स’-1965, ‘द पार्लियामेंट्री लेपर’-1965 आदि पुस्तकें भी लिखीं।

चलता पुर्जा-कहानी (डॉ. धनीराम प्रेम)

‘चलता पुर्जा’ कहानी जैसा कि नाम से ही पता चलता है एक ऐसे स्मार्ट शातिर ठग की है जो जरूरतमंदों के मनोविज्ञान को बड़ी जल्दी पढ़ लेता है। कहानी का नायक, पीलीभीत के एक कॉलेज का गणित का प्रोफेसर गुप्ता बनकर कमजोर छात्रों के अभिवावकों को बड़े प्यार से ऐसा चूना लगा जाता है कि जब तक वे संभलते हैं उनके हजारों रूपए और गहने उसको भेट चढ़ चुके होते हैं।

कहानी के आरंभ में अलीगढ़ से राजधानी पर आए 10 पात्रों का सजीव चरित्र-चित्रण है उसमें से चार विद्यार्थी हैं दो मैट्रिक के और दो एफ.ए. के। चारों बालक परीक्षा के ‘अखाड़े’ के पुराने खिलाड़ी हैं। चार-पांच कुशियां हार चुके हैं। काफी अनुभवी है। इनके पिता भी इनके साथ हैं एक के पिता वकील हैं जिनकी वकालत नहीं चलती है इसलिए चुपके-चुपके नौकरी खोज रहे हैं और दूसरे के पिता किसी कंपनी में एजेंट हैं जिनकी रोजी-रोटी भी मुश्किल से चलती है। कहानी का हर पात्र अपनी अपनी तरह से ‘चलता पुर्जा’ है। मुहावरेदार भाषा में लिखी यह कहानी एक व्यंग्य है जो समाज को आईना दिखाती है।

लंबी, लच्छेदार, चाक-चौबंद कहानी ‘चलता-पुर्जा’ पाठक को अपनी गिरफ्त में रखती है। कहानी का शीर्षक कहानी का प्रतीक है। कहानी में मुर्गा कौन है और कैसे हलाल होता है की कारीगरी पाठक की रुचि को अंत तक बनाए रखती है। कहानी की सरल भाषा उसमें आए मुहावरे, कथानक, चरित्र-चित्रण, पात्रों के नाम (रामलाल, दुलारे, काशी, परमानंद) विषयवस्तु का निवाह आदि 1930-40 के परिवेश को ताजा कर देती है।

1950-90 देशांतरगमन (इंडियन माइग्रेशन) द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात 1950 में ब्रिटिश साम्राज्य के पतन के साथ एक बड़ी संख्या में सिख समुदाय ब्रिटेन में माइग्रेट हुआ। ब्रिटिश सरकार को महसूस हुआ कि पंजाब का यह अशिक्षित श्रमिक वर्ग इस देश की बोली-भाषा-संस्कृति, रख-रखाव और नियम-कानून न जानने के कारण शोषित हो रहे हैं अतः इस समस्या के समाधान के लिए 70 और 80 के दशक में एक बड़ी संख्या में भारत से वर्क वाउचर और एंट्री परमिट के द्वारा शिक्षक, डॉक्टर, वैज्ञानिक और इंजीनियर आदि ने ब्रिटेन में प्रवेश लिया।

उस समय ब्रिटेन में हिंदी लेखन, भाषा-साहित्य आदि का कोई परिवेश नहीं था। अतः जो संवेदनशील लोग थे, वे अपनी आंतरिक व्यथा को डायरी या कागज के टुकड़ों पर अभिव्यक्ति कर कहीं रखकर भूल जाते। कहानी को संशोधित कर किसी पत्रिका आदि में भेजने का न तो उनका

मनोबल बन पाता ना ही उनके पास उस समय कोई साधन था। प्रमाण मिलता है कुछ हिंदी प्रेमी (हिंदी भाषा एवं हिंदी प्रेमियों की संख्या सदा न्यूनतम रही) रचनाकारों जैसे- 1954-56 में पानी के जहाज से ब्रिटेन आए कवि डॉ. वेद प्रकाश बटुक का कविता संग्रह ‘त्रिविधा’ 1957 में छपा। यह युग विशेष रूप से कविता का युग था। कविताएं लिखी जातीं, मित्रों को सुनाई जातीं और डायरियों में बंद कर दी जातीं।

इसी काल में दामोदर प्रसाद सिंघल और उनकी पत्नी देवदुर्गा के लेख और उपन्यास भारत की पत्र-पत्रिकाओं में छपे। इतिहासकार डॉ. बी.एन. पाण्डेय का उपन्यास ‘शहरों के कुत्ते’ का प्रकाशन हुआ। उन्हीं दिनों कैब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. रेमंड आर्चिन ने तुलसी की ‘कवितावली’ और ‘गीतावली’ का हिंदी अनुवाद किया। अंग्रेज स्कॉलरों ने मध्ययुगीन हिंदी साहित्य, व्याकरण और शब्दकोशों पर बहुत काम किया।

1958 में ब्रिटेन आए कवि डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव, और 1965 में आए ‘सुराही’ के रचनाकार गजलकार प्राण शर्मा की रचनाएं भारत की पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही। डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव ब्रिटेन के उन साहित्यकारों में से हैं जो 22-23 वर्ष की आयु में ही ब्रिटेन आ गए थे। वे नियमित हिंदी एवं अंग्रेजी में लिखते रहे तथा ‘साप्ताहिक हिंदुस्तान’ और ‘धर्मयुग’ आदि में कन्हैयालाल नंदन और धर्मवीर भारती के संपादन में छपते रहे। अब तक वे लगभग एक दर्जन से अधिक पुस्तकों लिख चुके हैं। उनकी कविता ‘सर विंस्टन चर्चिल मेरी मां को जानते थे’, ‘टेम्स में गंगा की धार’- ब्रिटिश भारतीयों की संघर्ष गाथा ‘वेगम समरू’- नाटक, ‘कंधों पर इंद्रधनुष’ यात्रा डायरी आदि हिंदी साहित्य की धरोहर कृतियां हैं।

सत्येन्द्रजी के समकालीन वेद प्रकाश बटुक (अब अमेरिका में) एक पत्र में लिखते हैं, ‘1951 में ब्रिटेन में अध्ययन के लिए आए डॉ. हरिवंशराय बच्चन की प्रेरणा से ‘हिंदी परिषद- लंदन’ की स्थापना लंदन में की गई जिसमें सुनियोजित ढंग से कहानी, कविता और लेख आदि पढ़े जाते थे। विश्लेषण करने पर पता चलता है कि यह युग विशेष रूप से कविता का युग रहा, जिसका मुख्य स्वर नॉस्टैल्जिया, देश-प्रेम के साथ प्रवास की पीड़ा, नस्ल और रंग भेद आदि रहा। आपसी जुड़ाव और नेटवर्किंग न होने के कारण बहुत कुछ संग्रहीत नहीं हो सका।

इस बीच एक और संस्था ‘हिंदी प्रचार संस्था’ का गठन हुआ। इसके साथ कुछ पत्रिकाएं भी निकलीं जैसे ‘नैवेद’, ‘अमर दीप’, ‘चेतक’ आदि। 1969 में भारत से आए वेद मित्र मोहला की गद्य की पुस्तक ‘संसार के अनोखे पुल’ (1972) नेशनल पब्लिशिंग हाउस की मिली। पत्रिका ‘चेतक’ की कुछ प्रतियां चेतक के संपादक नरेश भारतीयजी के पास सुरक्षित हैं।

इसी तरह अस्सी के दशक में मिडलैंड में रहनेवाली स्वर्गीय विजया मायर के चार उपन्यास ‘रिश्तों के बंधन’ (1988) विवेक प्रकाशन, (दिल्ली), ‘टूटते दायरे’ (1989) विवेक प्रकाशन (दिल्ली), ‘तूफान से पहले’ (1994), ‘तपस्या’ (1995) प्रकाशित हुए। ये सभी उपन्यास भारत में स्त्रियों की दुर्दशा, अंधविश्वास, सामाजिक संकीर्णता और छूआछूत आदि विषयों को लेकर लिखी गई हैं।

इसी बीच 1960 में ब्रिटेन आईं पंजाबी की प्रसिद्ध लेखिका कैलाशपुरी का पंजाबी में लिखा उपन्यास ‘सूजी’ हिंदी में अनुवादित होकर आया। यह मार्मिक उपन्यास पचास के दशक में पंजाब से आए कामगरों के संघर्षपूर्ण जीवन, समस्याओं और सामाजिकता पर आधारित है। इसी तरह

मिडलैंड में रहनेवाले बुल्वरहैम्पटन के डॉ. स्वर्ण चंदन का प्रसिद्ध उपन्यास ‘कंचका’ और कहानी संग्रह ‘फ्री सोसाइटी’ नब्बे के दशक में अनुदित होकर हिंदी में आया जो साठ और सत्तर के दशक के पंजाब से आए श्रमजीवियों के संघर्षमय जीवन के नस्ल और रंग-भेद के साथ उनकी सामाजिकता को गहनता के साथ अभिव्यक्त करता है। इसी बीच सुरेन्द्रनाथ लाल की तीन भाषाओं में अनुवादित टीका सहित श्रीमद्भगवत्‌गीता भारत से छपकर लंदन आई।

स्व. डॉ. आंकार श्रीवास्तव, स्व. श्रीमती, कीर्ति चौधरी (तीसरा सप्तक) की कविताएं ‘दूरबाग में सोंधी मिट्टी’ में छपीं। सन् 1982 में बी.बी.सी. लंदन प्रसारण से संबद्ध होकर आए स्व.डॉ. गौतम सचदेव की कई कृतियां भारत में प्रकाशित हो चुकी थीं किंतु 1995 से पूर्व उनकी कोई रचना प्रकाश में नहीं आई थी। गौतम अब नहीं रहे किंतु उन्होंने साहित्य की कई विधाओं में प्रभावशाली लेखन किया। उनके ‘साढ़े सात दर्जन पिंजरे’, ‘अटका हुआ पानी’, ‘अधर का पुल’ जैसे आधा दर्जन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसी तरह सन् 1987 में लंदन आई ‘बर्दाश्त बाहर’ और ‘सूखा हुआ समुद्र’ जैसे श्रेष्ठ और चर्चित कहानी संग्रहों की लेखिका अचला शर्मा के रेडियो नाटक बी.बी.सी. रेडियो पर प्रसारित होते रहे। अवकाश प्राप्ति के बाद अचला की लेखनी ने तेज गति पकड़ी है। उनकी कहानियां, ‘चौथी ऋतु’, ‘दिल में एक कस्बा है’, ‘दुर्गध’ (रेसिस्ट), ‘रंग बदलता आसमान’ और ‘मेहरचंद की दुआ’ आदि साहित्य जगत में चर्चित हो रही हैं।

सन् 1985 में ब्रिटेन आई दिव्या माथुर जिनकी कहानियां नवभारत टाइम्स, कार्दिबिनी आदि में छपती रही थीं। ब्रिटेन आने के बाद 90 के दशक में दिव्या ने फिर से कलम पकड़ी। इन दशकों में मौलिक साहित्यिक सृजन (विशेषकर गद्य) की जमीन में कुछ (वेद प्रकाश बटुक, बी.एन पांडेय, देव मुराका, सतीश भट्टाचार, नारायण स्वरूप शर्मा, आंकार सिंह ‘निर्भय,’ धर्मेंद्र गौतम, सत्येन्द्र श्रीवास्तव, प्राण शर्मा आदि) अंकुर फूटे तो किंतु उन अंकुरों को पनपने के लिए ऐसा खाद और पानी नहीं मिला कि वे स्थापित और चर्चित हो सकें।

ब्रिटिश भूमि में हिंदी के लेखकों को उर्वर भूमि एक लंबे अर्से तक नहीं मिली जिसके कारण अज्ञात हैं। पचास के दशक में अशिक्षित श्रमिकों का बसाव, मीडिया में भारतीयों की बिगड़ती छवि, समाज में उपेक्षा, अजनबी परिवेश, समय का अभाव, सांस्कृतिक दबाव, प्रकाशकों-संपादकों की उदासीनता आदि।

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी का ब्रिटेन आगमन और हिंदी कहानी लेखन (1990-2010) :

समय ने करवट ली, परिवेश में बदलाव आया, भारत एक स्वतंत्र विकासशील भारत से विश्व के मानवित्र पर एक शक्तिशाली भारत के रूप में उभरने लगा। 1990-91 में डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी भारतीय उच्चायोग में उच्चायुक्त बनकर आए और उनके प्रश्न्य में ब्रिटेन में हिंदी भाषा साहित्य और हिंदी संस्कृति का परचम लहराने लगा। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ब्रिटेन में हिंदी के इतिहास के युग प्रवर्तक रहे हैं।

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी और उनकी पत्नी ने ब्रिटेन आते ही अपने घर पर अनौपचारिक साहित्यिक गोष्ठियों और चर्चाओं के द्वारा सुस्त, अवरुद्ध लेखनियों को गतिशील और पत्थर होती संवेदनाओं को जलसिंचित किया। भारतीयों का मनोबल बढ़ा। उनकी कुंठित जिह्वा और लेखनी मुखरित होने लगी। कई राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल के कारण ब्रिटिश समाज भी चैतन्य

हो उठा। एकल भाषा और एकल संस्कृति वाला ब्रिटेन बहुसांस्कृतिक और बहुभाषीय घोषित हुआ। यू.के. हिंदी समिति (लंदन-1991) और गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय बर्मिंघम (1995) ने बड़ी संख्या में हिंदी प्रेमियों को जोड़ा। हिंदी के लेखकीय संसार का पनपना आरंभ हो गया। लेखन के क्षेत्र में सृजनात्मक विस्फोट हुआ इस दशक में काव्य विधा के साथ प्रचुर गद्य लेखन भी हुआ। डॉ. पद्मेश गुप्त ने भारत के स्वाधीनता दिवस की पचासवीं वर्षगांठ पर काव्य संकलन ‘दूर बाग में सोंधी मिट्टी’ प्रकाशित की जिसमें ब्रिटेन के 25 कवि संकलित थे।

तदंतर 1997 में साहित्यिक पत्रिका ‘पुरवाई’ के प्रकाशन ने तनावग्रस्त कवियों और कहानीकारों को संबल दिया। गद्य और पद्य की अनेक विधाओं में रचनाकारों की लेखनी सक्रिय हो उठी।

यदि ब्रिटेन के हिंदी कथा संसार पर खोजपूर्ण दृष्टि डाली जाए तो भारत की स्वतंत्रता के बाद हमें जो पहली हिंदी कहानी किसी ब्रिटिश हिंदी लेखक की मिलती है। वह है स्व. प्राण शर्मा की कहानी ‘पराया देश’ जो कार्दंबिनी (अगस्त 1982) में आयोजित अंतरराष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता में सांत्वना पुरस्कार से सम्मानित हुई। कहानी एक ऐसे इमिग्रेंट बस ड्राइवर की है जो सिर्फ पांच वर्षों में ‘खूब धन कमाकर भारत लौट जाऊंगा’ की ठानकर आता है किंतु वह लौटने की घड़ी कभी नहीं आती है। ब्रिटेन में बरसों बरस रहते हुए लौट जाने की द्वंद्वात्मक दुविधा में फंसे बस ड्राइवर की एक दिन ‘एक सभ्य सी दिखनेवाली गोरी महिला यात्री’ से झड़प हो जाती है। बहुत अनुनय-विनय करने और ‘सॉरी’ कहने पर भी वह महिला उसे क्षमा नहीं करती है और अंत में उसे फटकारते हुए ‘ब्लैक बास्टर्ड’ और ‘पाकी’ जैसी नस्ली गाली देते हुए उसका नाम और बस का नंबर लेकर धमकाते हुए चली जाती है। डरा हुआ बस ड्राइवर अपमानित और पीड़ित महसूस करता है। लंच टाइम में वह अपनी पीड़ा ट्रांसपोर्ट में काम करने वाले मित्रों से कहता है। सब उस पर हँस पड़ते हैं कि यह तो साधारण सी बात है। ड्राइवर उस महिला के अभद्र व्यवहार से ‘असंख्य सुइयों की चुभन’ अपने कलेजे पर महसूस करता है। अनमना, दुखी वह शाम को अपनी पत्नी और बच्चों को ब्रिटेन की बुराइयां बताता देश का गुण-गान करता, उपरोक्त घटना का उल्लेख करता है और वापस भारत लौटने की पेशकश करता है किंतु पत्नी और बच्चे उसकी खिल्ली उड़ाते हुए ‘आप तो जरा-जरा सी बात को दिल से लगा लेते हैं’ कहकर उसकी पीड़ा का उपहास करते हैं। विडंबना यह है कि क्षुब्ध बस ड्राइवर अपने ही परिवार के बीच अकेला और तन्हा महसूस करता है। उसे ब्रिटेन की कोई भी सुख-सुविधा और धन-धान्य सुकून नहीं देते। वह भारत के अभावों, तनावों, रंग-भेद, वर्ग-भेद, प्रांतीयता, आदि को अनदेखा कर उसे ही स्वर्ग ठहराता है। बात बढ़ती है तो वह पत्नी और बच्चों को धिक्कारता है कि वे ब्रिटेन के सुख-सुविधाओं के गुलाम हो गए हैं। अंत में पत्नी सुषमा उसे शांत करने के लिए कहती है- ‘अगर आप इस देश से इतना तंग आ गए हैं तो एक दिन हम यहां से चले जाएंगे। बस बच्चों की शिक्षा पूरी हो जाने दो और उनको अपने पैरों पर खड़ा हो जाने दो।’ वह सोचता है सुषमा बातें बनाकर उसे बहलाने में कितनी होशियार है।

कहानी नॉस्टैल्जिक होते हुए भी यथार्थ की भावभूमि पर खड़ी है। मानसिक द्वंद्व और आंतरिक संघर्ष को व्यक्त करते हुए जीवन के दोनों पक्षों के दिखाने में सक्षम कहानी पाठक को सोचने के लिए मजबूर करती है कि ऐसे नए परिवेश के साथ समझौता सही है या पलायन। भाषा और शैली

की दृष्टि से कहानी 80 के दशक के भारतीय लेखकों के समकक्ष ठहरती है। वर्ष 1999 से पूर्व ब्रिटेन के कहानीकार गुमनाम थे।

सन् 1997-98 में इस आलेख की लेखिका ने कहानीकारों का एक नेटवर्क बनाया और सन् 1999 में आयोजित ‘छठवें विश्व हिंदी सम्मेलन’ के अवसर पर 17 लेखकों की कहानियों का संकलन ‘मिट्टी की सुगंध’ (राधाकृष्ण प्रकाशन-नई दिल्ली) प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक ब्रिटेन के हिंदी साहित्य के अध्ययन में नींव का पथर है।

ब्रिटिश हिंदी कहानियों के विषय में ‘मिट्टी की सुगंध’ में रामदरश मिश्र लिखते हैं- ‘किसी स्थान विशेष के लेखकों की रचनाएं होने मात्र से उन्हें वैशिष्ट्य प्राप्त नहीं होता, उन्हें वैशिष्ट्य इसलिए प्राप्त होता है कि वे स्थान विशेष (क्षेत्र, प्रदेश, देश) के जीवन के अपने रंग को उभारती हैं और इस तरह वे उस भाषा में लिखे जा रहे साहित्य के अनुभव को नए आयाम प्रदान करती हैं। विदेश में रह रहे भारतीय मूल के लोगों में देश की यादें बची रहती हैं, रह-रहकर उभरती और परेशान करती हैं। अपना देश बुलाता है किंतु देश की जिन असुविधाओं से घबराकर विदेश गए वे सामने आ जाती हैं और विदेश की सुविधाएं भी उन्हें कहाँ छोड़ती हैं जिनसे खिंचकर वे विदेश गए। इसी दंद की मानसिकता में उनकी रचनाएं फूटतीं रहती हैं।’

‘मिट्टी की सुगंध’ के अतिरिक्त इस बीच कुछ और कहानी संकलन आए, उनमें से मुख्य हैं मुंबई निवासी सूरज प्रकाश द्वारा संकलित ‘कथा दशक’ (2001) जिसमें कथा यू.के की गोष्ठियों में पढ़ी गई दस कहानियां श्रोताओं की टिप्पणियों के साथ संकलित हैं। दूसरा है उषा वर्मा की ‘सांझी कथा यात्रा’ (2003) वाणी प्रकाशन दिल्ली, जिसमें 12 हिंदी-उर्दू की महिला कथाकार सम्मिलित हैं। तीसरा संकलन है ‘प्रवास में पहली कहानी’ (2008) वाणी प्रकाशन जिसमें 18 हिंदी-उर्दू की महिला कथाकार सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त पुस्तक ‘ब्रिटेन में हिंदी’ लेखिका उ. रा. सक्सेना (2006) ब्रिटेन के हिंदी जगत की गतिविधियों के इतिहास को प्रस्तुत करती हुई मेधा-बुक्स (दिल्ली) से प्रकाशित हुई।

इस बीच ‘पुरवाई’ पत्रिका का प्रकाशन, ‘यू.के हिंदी समिति’ द्वारा पांडुलिपि चयन, गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय द्वारा मासिक गोष्ठियां, नई सदी के आते-आते ‘कथा यू.के.’ द्वारा कहानी गोष्ठियों का आयोजन, श्रोताओं की समीक्षा, ‘अंतरराष्ट्रीय इंटु शर्मा कथा सम्मान’ ‘पद्मानंद साहित्य सम्मान’ विश्व हिंदी सम्मेलन एवं क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन आदि ने ब्रिटेन में लिखे जा रहे साहित्य और लेखकों को देश विदेश में पहचान दिलाने की प्रक्रिया में सहयोग दिया।

ब्रिटेन से प्रकाशित होने वाली पहली साहित्यिक पत्रिका ‘पुरवाई’ है और उसमें छपने वाली पहली कहानियां हैं, दिव्या माथुर की ‘मणि’, ‘पुरवाई’ के वर्ष 1997 अंक-1 सितंबर पृ.33 (संपादक डॉ. पदमेश गुप्त) व ‘एक मुलाकात’ (ले. उषा राजे सक्सेना) प्रकाशित हुई। कहानी ब्रिटेन में रहने वाली एक संवेदनशील महिला की है जो एक लंबे अर्से के बाद भारतीय रेल में यात्रा कर रही है। किसी कारणवश उसका आरक्षण एयरकंडीशन डिब्बे में नहीं हो पाता है। सुख-सुविधाओं की आदी नायिका को तीसरे दर्जे के महिला डिब्बे में यात्रा करनी पड़ती है। उसे बड़ी असुविधा होती है। डिब्बे में जरूरत से ज्यादा लोग और सामान ठूसे हुए हैं। परेशान नायिका को डिब्बे में ठूसे लोग ‘गदे, उज्जड और गंवार’ लगते हैं उसे ‘उबकाई’ सी आती है। इस प्रक्रिया में उसकी दृष्टि सामने बैठी

22-23 वर्षीय ‘जर्द चेहरे वाली उदास’ और मासूम युवती के चेहरे पर फिसलती है, जिसका एक चौदह महीने का नटखट बच्चा इधर-उधर पास बैठे लोगों से इस तरह हिल-मिल रहा है मानो वह उन सबके परिवार का हों। दूसरा बच्चा ‘जर्द चेहरे वाली’ युवती के गोद में पहलू बदलता रहता है जबकि तीसरा बच्चा उसके फूले हुए पेट के अंदर है। परेशान, ‘उदास, जर्द चेहरे वाली’ वह महिला कभी एक बच्चे को संभालती तो कभी दूसरे को। नायिका औरत की बेचारगी पर विरुद्धा से भर जाती है किंतु धीरे-धीरे डिब्बे के अंदर बदलता सहज, सहिष्णु और सौजन्यपूर्ण माहौल नायिका के संवेदनशील हृदय में उस मजलूम औरत के चेहरे को सौंदर्य की प्रतीक ‘मोनालिसा’ (लियानार्डो दा विन्ची की प्रसिद्ध पेंटिंग) में बदल देता है। यात्रा समाप्त होते-होते उसे उन लोगों में ‘एक खास खुशबू और कदीमी एखलाक’ नजर आने लगता है। गंगा-जमुनी भाषा में लिखी इस कहानी की भाव-भूमि भारत और ब्रिटेन दोनों हैं। कहानी परोक्ष-अपरोक्ष रूप से लेखिका के प्रगतिशील सांस्कृतिक समन्वय और स्त्री विमर्श की ओर बढ़ते रुझान की ओर संकेत करती है। यह कहानी अपनी संरचना में प्रभावशाली और मर्मस्पर्शी है।

‘पुरवाई’ के उपरोक्त अंक में ही दिव्या माथुर की कहानी ‘दिशा’ है। कहानी एक नेत्रहीन युवक मणि और उसकी खबसूरत चंचल गर्भवती पत्नी शमा के समर्पित प्रेम की चटपटी, चुलबुली और सार्थक कहानी है। नेत्रविहीन मणि संसार का दर्शन अपनी पत्नी की आँखों से करता है। कहानी की भावभूमि किसी भी देश की हो सकती है जबकि लेखिका के अनुसार कहानी की भावभूमि भारत है। मणि आशंकित है कि कहाँ उसकी होने वाली संतान उसकी ही तरह नेत्रहीन तो न होगी। शमा शंका निवारण बड़ी निपुणता से करती है किंतु अपने अंधेपन के कारण मणि के मन में शंका बनी रहती है। कहानी पति-पत्नी के सरस, चंचल-चपल वार्तालाप के साथ आगे बढ़ती है। कहानी का अंत शमा के स्वस्थ और सुंदर बच्चे के जन्म के आनंद और उल्लास के नोट पर समाप्त होती है। कहानी में महत्वपूर्ण है नेत्रविहीन पति और स्वस्थ सुंदर पत्नी के संबंधों की मिठास जो मुंह में बताशे घोलती है।

ये कहानियां 80 के दशक में प्राण शर्मा और स्वर्ण चंदन के नस्ल और रंग-भेद के आगे की कहानियां हैं जो मानवीय संवेदनाओं, संस्कृति समन्वय और यथार्थवादी कहानियों की प्रस्तावना हैं। प्रवासी रचनाकारों के विशेषज्ञ डॉ. कमलकिशोर गोयनका लिखते हैं ‘अमेरिका और ब्रिटेन आदि देशों के लेखक अभी भी पहली पीढ़ी के हैं इसलिए उनकी रचनाओं में स्वदेश और विदेश दोनों हैं। इनकी रचनाओं में अमेरिका और यूरोप के देशों की सुख-समृद्धि तथा तनाव, संघर्ष, साथ ही स्वदेश की मिट्टी की सौंधी गंध भी है....’ इसलिए भारतीय धर्म संस्कृति चाहे नॉर्स्टेलिया के रूप में विद्यमान हो अथवा अस्तित्व बोध के रूप में वह प्रवास में लिखे जा रहे साहित्य में अक्षुण है।

पिछले वर्ष नया ज्ञानोदय में आई अचला शर्मा की कहानी ‘मैहरचंद की दुआ’ 2010 में लिखी गई। इस कहानी से ब्रिटिश हिंदी लेखन में आई परिपक्वता को देखा जा सकता है। जिसमें वे ब्रिटेन के एशियन इमिग्रेंट जीवन के एक अन्य पहलू पर हमारा ध्यान केंद्रित करती है। यह कहानी राजनीति, नस्ल, रंग-भेद और संस्कृति समन्वय, से कही आगे के यथार्थ की कहानी है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के आगे सारे संस्कार, धर्म और विचारों की कट्टरता विलीन हो जाती है... चाहे वे किसी भी कट्टर धर्म और ईमान की क्यों न हो... जरूरी है इनसान के लिए जीना और वह

भी इस दुनिया की तमाम त्रासद विडंबनाओं और आत्म-संघर्षों के बीच। कहानी में अचला इनसान के इनसानियत और प्रेम तत्व के संवेदना को बचाए रखती है।

छ: महीने के बीजे पर आए अब गैरकानूनी ढंग से ब्रिटेन में प्रवास करते महरेआलम को नवीन भाई अपने सैलून में महरेआलम नाम से न रख कर मेहरचंद के नाम से रखते हैं 'क्यों?'

नवीन भाई जबरदस्त बिजेसमैन है। वह पांचों वक्त के नमाजी बाल काटने में प्रवीण महरेआलम को प्यार से मेहरचंद नाम देकर अपने यहां नौकरी में रख लेते हैं। शुरू में हिंदू नाम रखने पर महरेआलम के अंदर ढंद मचता है पर रोजी-रोटी और पेट की आग के कारण सोचता है- 'नाम बदलने से दीन थोड़े ही चला जाएगा'। वह हिंदू ग्राहक के बाल काटता है। नवीन भाई के साथ हिंदू बच्चों के मुंडन करता है। यहां तक कि स्वामीनारायण मंदिर में भी नवीन भाई के साथ स्वामियों के बाल भी उतार आता है।

महरेआलम एक सीधा-सादा खुदा के मेहर और वजूद पर यकीन रखनेवाला नेक बंदा है जो हर बात के लिए खुदा का, नवीन भाई का और हर किसी का शुक अदा करता है। अखबार देखते हुए नवीन भाई उसे बताते हैं, अगर लिबरल पार्टी का गठबंधन लेबर या टोरी पार्टी के साथ हो जाए तो तमाम अवैध इमिग्रेंट्स को वैधता मिल जाएगी और मेहरचंद के निमाज में लिबरल के जीतने की दुआ शामिल हो जाती है। मेहरचंद सियासत नहीं जानता। छल-फरेब, खुदगर्जी और चालाकियां उसके अंदर नहीं हैं। पेट की खातिर वह बेनाम और बिना वजूद की जिंदगी बसर करता है। बड़ी कशमकश के बाद पोलिटिकल असाइलम भी स्वीकार कर लेता है पर फूड वाउचर लेने से इनकार कर देता है। उसके लिए मुफ्तखोरी हराम है। दिन में नवीन भाई के यहां काम करता है और रात में टैक्सी चलाता है। वह पैसे कमाकर बीवी बच्चों को भेजता है।

मेहरचंद के चार बच्चों का परिवार मुल्क में रहता है। बड़ा लड़का पप्पू गलत संगत में पड़ गया है वह उसके लिए दुआ मांगता है चाहता है लिबरल पार्टी आए तो पप्पू को यहां बुलाने की इजाजत मिल जाएगी, जैसे उसकी जिंदगी यहां आकर सुधर गई उसकी भी सुधर जाएगी पर ऐसा होता नहीं है कहानीकार अचला मेहरचंद और नैन के द्वारा जिंदगी के एक और संवेदनशील पहलू से पाठकों का साक्षात्कार कराती है। छोटे-छोटे सुख जिंदगी को किस तरह मुकम्मल बनाते हैं यह इस कहानी के अगले चरण में मिलता है।

दो अजनबी अपनी-अपनी मूँक पीड़ाओं और जरूरतों के साथ फ्लैट शेयर करते हुए एक दूसरे की पसंद-नापसंद अनजाने ही अपनी बना लेते हैं फिर उनमें कायम होने लगता है संवेदनाओं से युक्त एक रिश्ता जो रक्त और कानूनी रिश्तों से कहीं ऊपर होता है।

मेहरचंद नंदनी का नाम उच्चारित न कर पाने के कारण उसे नैन बुलाता है। नैन निरामिष है। धीरे-धीरे मेहरचंद घर में गोश्त पकाना बंद कर देता है। कभी मन करता है तो करीम के होटल में जा कर खा लेता है। नंदनी के लिए वह ढोकला जलेबी खरीदने लगता है।

छोटे-छोटे सुख जिंदगी में पूर्णता लाते हैं। 'लाहौर में अपनी बीवी के साथ रिश्ता सिर्फ बिस्तर का था जिसका नतीजा इसलिए सब कुछ भूलकर उसने बस लेटे-लेटे दुआ में हाथ उठाए 'अल्लाह मियां, लिबरल डेमोक्रैट जीते या हारे सरकार में आए या न आए, मुझे लीगल स्टेट्स मिले या न मिले, मैं तेरे रहमोकरम से जैसा हूं बहुत खुश हूं। ऐ मेरे अल्लाह मुझ गुनहगार बढ़े पर यह करम

फरमाता रह। आमीन सुम्मा आमीन।'

कई आयामों वाली यह कहानी अपने कथन और विषयवस्तु में अत्यंत प्रभावशाली है। ऐसी संवेदनशील कहानियां हिंदी में बहुत कम लिखी गई हैं।

1998-99 में ब्रिटेन माइग्रेट करने वाले तेजेन्द्र शर्मा अपने साथ तीन कहानी संग्रह लेकर आए। 'देह की कीमत' ने ब्रिटेन के कथा साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बनाया। उनकी कई कहानियां बहुत प्रसिद्ध हुई हैं। अब तक उनकी दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सन् 1985 में ब्रिटेन आई दिव्या माधुर का कहानी संग्रह 'आक्रोश'-2000 हिंदी बुक सेंटर (दिल्ली) से प्रकाश से आई। दिव्या बताती हैं कि ये सभी कहानियां भारत में लिखी गई थीं। कहानियों की पृष्ठभूमि और समस्याएं भारत की हैं तथा कहानियों की अंतर्धारा स्त्री विमर्श है। अब तक उनकी तकरीबन एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सन् 1967 में ब्रिटेन आई उषा राजे सक्सेना का संग्रह 'प्रवास में'- 2002 प्रभात प्रकाशन (दिल्ली)। संग्रह की सभी कहानियां ब्रिटेन में लिखी गई तथा कहानियों की भाव-भूमि, समस्याएं और परिवेश ब्रिटेन की हैं। संस्कृति समन्वय, स्त्री विमर्श और ब्रिटिश जीवन का चित्रण इन कहानियों की अंतर्धारा है। अब तक इन पंक्तियों की लेखिका की 'ब्रिटेन में हिंदी' के इतिहास के अतिरिक्त आठ पुस्तकें और दर्जनों आलेख ब्रिटेन के साहित्य पर देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

कहानी की बात करें तो एक समय था जबकि हिंदी कहानी ने प्रयोगवादी कहानी, प्रतीकात्मक कहानी, अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी जैसे आंदोलन चलाए। संसार विकासशील है इसलिए कहानी किसी एक आंदोलन पर नहीं टिकी। आज हिंदी कहानी चाहे भारत में लिखी जा रही हो या इंग्लैंड, अमेरिका में, आज कोई ऐसा आंदोलन नहीं चल रहा है जो रेखांकित किया जा सके। विभिन्न प्रकार के विमर्श- स्त्री विमर्श, दलित विमर्श अवश्य चल रहे हैं। पिछले दस-ग्यारह वर्षों में ब्रिटेन के कई लेखकों ने नॉस्टेलिज्या से बाहर निकलकर नई जमीन तोड़ी है। यद्यपि अभी भी ब्रिटेन में लिखी जा रही अधिकांश कहानियां कुछ सीमा तक भारतीय मूल्यों से ही संचालित होती हैं। परिस्थितियों के बदलने से अवधारणा बदलती है। समाज में बदलाव आता है। संसार में हर चीज बदलती है। खान-पान, रहन-सहन आदि आदि। व्यक्ति समाज में रहता है और समाज से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं है। व्यक्ति और समाज की बदलती परिस्थितियां ही संवेदनशील रचनाकार को सुजन के लिए उद्देलित करती हैं। मानी हुई बात है परिस्थितियों के बिना कहानियां रूपाकार नहीं हो सकती हैं। 60-70 के दशक का नस्ली, रंग-भेदवाला (उड़ने से पेश्तर और दूसरी तरफ- महेन्द्र भल्ला, पराया देश- प्राण शर्मा, कंचकें, फ्री सोसाइटी- स्वर्ण चंदन) ब्रिटेन 90 के दशक में आते-आते बहुसांस्कृतिक और बहुभाषीय हो गया। ब्रिटेन का समाज बदला तो ब्रिटेन की हिंदी कहानी भी बदली। आज ब्रिटेन की हिंदी कहानियों में यहां के वेलफेयर स्टेट की सच्चाई, सुख-समृद्धि के साथ सामाजिक सरोकार, बदलते परिवेश, बदलते- टूटते रिश्ते, एकाकीपन के साथ लोकेत और संस्कृति समन्वय का सजीव चित्रण, वर्णन और अभिव्यक्ति मिलती है।

यहां यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ब्रिटेन के लेखक किसी बाद विशेष के तहत नहीं लिखते हैं। यहां कोई बाद ट्रेंड या मठ नहीं है। हां, यदि लिखने के बाद कोई कहानी किसी बाद

विशेष के अंतर्गत आ जाए तो वह दूसरी बात है। वे अपनी कहानियों में भिन्न भिन्न देशी-विदेशी परिवेश और परिस्थितियों के प्लॉट और चरित्र लाते हैं और उसके सही निर्वाह का प्रयास भी करते हैं। साहित्य में खांचे और वर्गीकरण अनुचित है। साहित्य मनीषी प्रभाकर श्रोत्रिय का कथन इस विषय में उल्लेखनीय है ‘एक अच्छी रचना मुख्यतः मनुष्यता के किसी आयाम की अभिव्यक्ति होती है। उसे वर्गों, खानों और विमर्शों में बांटना उचित नहीं है।’

अब तक ब्रिटेन के लेखकों की लगभग 708 पुस्तकों की कैटलॉगिंग हो चुकी है जिनमें 24 उपन्यास, 70 कहानी संग्रह, 212 काव्य संग्रह, 12 एकांकी नाटक एवं अन्य विधाओं में लिखी पुस्तकें शामिल हैं।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटेन के लेखन का इतिहास मात्र दो दशकों का नहीं लगभग नौ- दस दशकों का है। साथ ही यह भी सच है कि ब्रिटेन का लेखन संसार अभी भी रचनात्मक स्थिति में ही है उसे समृद्ध होने और मुख्यधारा में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने में अभी समय लगेगा। यद्यपि मुख्यधारा के मनीषियों, भारत की पत्र-पत्रिकाओं, इंटरनेट मैगजीन, ब्लॉगों और प्रकाशकों ने ब्रिटेन के हिंदी साहित्य की उपस्थिति तेजी से दर्ज करनी शुरू कर दी है।

आज ब्रिटेन में मात्र नॉस्टैल्जिक ही नहीं, यथार्थवादी लेखन भी हो रहा है। ब्रिटिश जीवन-संघर्ष, जीवन-शैली, सोच और दृंद्ध बिलकुल वैसी नहीं है जैसी भारत में सोची जाती है। ब्रिटेन के जनजीवन को लेकर बुनी गई कहानियों की वास्तविकता की आलोचना या समीक्षा के लिए ब्रिटेन की साइकी और सामाजिक बुनावट (ब्रिटिशर्स की टूटती एरिस्टोक्रैसी, वेलफेयर स्टेट का पतन और समाज पर उसका प्रभाव) को समझने और जानने की आवश्यकता है।

आवश्यकता है विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य गहन और विस्तृत अध्ययन की। अभी हाल ही में कुछ समीक्षक उभरकर आए हैं किंतु खेद की बात है कि इन समीक्षकों ने केवल उन लेखकों को पढ़ा जो उनके संपर्क में आ गए। समीक्षकों को कम से कम यह तो पता होना चाहिए कि विदेशों में रहे लेखक क्या-क्या, किन-किन विषयों और विधाओं में लिख रहे हैं। आज इंटरनेट के माध्यम, नेट पत्रिकाओं और ब्लॉगों के माध्यम से हर तरह की सूचनाएं ली जा सकती हैं।

ब्रिटेन में लिखी जा रही कहानियां एक वृहद पाठक वर्ग को पसंद आ रही हैं किंतु परंपरावादी समीक्षकों को कुछ भी कहने से पूर्व ब्रिटिश समाज के बुनावट को लेकर लिखी गई कहानियों को समझने के लिए अपने अनुभव के दायरे को बढ़ाना होगा।

मेरी उपरोक्त कथ्य को प्रमाणित करती ब्रिटेन की कुछ सशक्त पुस्तकें हैं, ‘पासपोर्ट’- अचला शर्मा, ‘कब्र का मुनाफा’- तेजेन्द्र शर्मा, ‘वह रात और अन्य कहानियां’- उषा राजे सक्सेना, ‘पंगा और अन्य कहानियां’- दिव्या माथुर, ‘कहा-अनकहा’- अरुण सब्बरवाल, ‘रंगों के उस पार’- कादंबरी मेहरा, ‘अपनी अपनी आग’- महेन्द्र दवेसर ‘दीपक’ ‘साढ़े सात दर्जन पिंजर’- डॉ. गौतम सचदेव, ‘कारावास’- उषा वर्मा ‘फ्री सोसाइटी’- स्वर्ण चंदन। इन सभी लेखकों का परिचय और लेख, कविता और कहानियां आदि www.Abhivyakti और अन्य वेब पत्रिकाओं पर मिल जाएगी। इन लेखकों की कहानियों में आलोचकों को एक नवीन आस्वाद के साथ समीक्षा के लिए नवदृष्टि और नव भूमि भी मिलेगी।

प्रवास में भारतीयता : तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में समय संदर्भ

तत्याना ओरांस्क्या

हिंदी कहानी में एक महत्वपूर्ण उपस्थिति तेजेन्द्र शर्मा की है। वे एक लंबे अरसे से लंदन में रहते हुए कहानियां लिख रहे हैं। हिंदी कहानी में वे नए अनुभवों और विदेशी पृष्ठभूमि का सफल, विश्वसनीय चित्रण करते हैं। ‘काला सागर’, ‘टिबरी टाइट’, ‘देह की कीमत’, ‘कब्र का मुनाफा’ सहित उनके सात कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। रूस में हिंदी पढ़ा रही तत्याना ओरांस्क्या ने उनकी कहानियों का अध्ययन कर उसकी विवेचना की है। लेख की आगती कड़ी के रूप में तेजेन्द्र शर्मा से उनके कथा लेखन को लेकर उषा शर्मा द्वारा की गई बातचीत दी जा रही है :

भारत में अपने प्रवासी लेखकों को जितना सम्मान और महत्व दिया जाता है, उतना संभवतः संसार का कोई भी अन्य देश अपने प्रवासी लेखकों और बुद्धिजीवियों को नहीं देता। इन लेखकों में तेजेन्द्र शर्मा हैं जिनका नाम भारत और भारत के बाहर हिंदी के पाठक को अच्छी तरह ज्ञात है। उनकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची में लगभग 30 शीर्षक हैं। मुख्यतः वे कहानीकार हैं, कवि भी हैं, इसके साथ-साथ उन्होंने आकाशवाणी, बीबीसी लंदन तथा फिल्म और दूरदर्शन के लिए भी काम किया है। उन्हें भारत में साहित्य लेखन के लिए दर्जनों पुरस्कार मिल चुके हैं। इस साल उनको टाइम्स ऑफ इंडिया का बहुत महत्वपूर्ण ‘NRI Achiever of the Year Award 2018’ kWArt and Culture’ की कोटि में मिला है। पहली बार इस पुरस्कार के लिए हिंदी लेखक को चुन लिया गया है। शर्मा साहित्य को कला और साथ-साथ समाज और मनुष्य सुधारने का साधन भी मानते हैं। ब्रिटेन से उनके संपादन में प्रकाशित हिंदी की साहित्यिक पत्रिका ‘पुरवाई’ और अपने संस्थान ‘कथा यूके’ के जरिए लेखक ने ‘सामाजिक सौहार्द का बड़ा काम किया है’। ‘हिंदी साहित्य की सेवा और सामुदायिक एकजुटता की गतिविधियों के लिए’ शर्मा को वर्ष 2017, जिसमें उन्होंने अपने जीवन के 65वें वर्ष में प्रवेश किया, ‘मेंबर ऑफ द ऑर्डर ऑफ द ब्रिटिश एंपायर’ ब्रिटिश सरकार का ऊंचा सम्मान दिया गया। तेजेन्द्र शर्मा यह सम्मान पाने वाले पहले भारतीय हैं जिन्हें हिंदी लेखन के लिए यह सम्मान मिला है।

इस सम्मान के विषय में सांसद वीरेंदर शर्मा ने कहा कि ‘जहां ब्रिटेन में प्रवासी हिंदी साहित्य का मुख्य विषय भारत के प्रति अतीत-मोह है वहीं तेजेन्द्र शर्मा का लेखन हमेशा ब्रिटेन के जीवन को फोकस करता रहा है’। इस अभिव्यक्ति का स्पष्टीकरण उपयोगी हो सकता है। यह सही है कि प्रवासगमन के बाद शर्मा की लिखी हुई अधिक प्रवासी कहानियों का कार्य-व्यापार ब्रिटेन में होता है परंतु फोकस ब्रिटेन के जीवन पर न होकर प्रवासी पात्रों को वतन से जोड़ने वाली परिस्थितियों

और उनके भारत से आत्मिक संबंध पर होता है। यही संबंध मुख्य पात्रों की भावनाओं और विचारों को निर्धारित करता रहता है।

प्रवासी लेखक तेजेंद्र शर्मा ‘प्रवासी साहित्य’ की परिभाषा स्वीकार नहीं करते हैं। वे साहित्य को अलग-अलग कोटियों में विभाजित करने के घोर विरोधी हैं। उनका मानना है कि प्रवासी साहित्य कोई अलग और विशिष्ट साहित्यिक कोटि न होकर दलित-विमर्श और स्त्री-विमर्श संबंधी साहित्य के समान एक और ‘कोटा’ है। उनका कहना है कि ‘दरअसल यह जो रिजर्वेशंस पॉलिसी है वही गलत है, बड़यंत्र है, महिला लेखन या दलित लेखन, प्रवासी लेखन ये गलत है। मतलब साहित्य को खानों में नहीं बांटा जाना चाहिए।’ (साक्षात्कार से)

साहित्य में रिजर्वेशंस पॉलिसी गलत है, यह मानना मुश्किल नहीं है परंतु प्रवासी साहित्य की विशिष्टता नकारा जाए यह मत विवादास्पद है। कोई भी मनुष्य अतः कोई भी लेखक भी जिस वातावरण में रहता हो उससे प्रभावित होता है इसलिए यह अनिवार्य है कि किसी हद तक कथाकार और पात्रों की अनुभूतियां भी लेखक और उनके रहने के स्थान पर निर्भर करती हैं।

तेजेंद्र शर्मा की कहानियां कथावस्तु और घटना-स्थल के अनुसार भारतीय या प्रवासी होती हैं। भारतीय भाषाओं के शब्द-भंडार के वर्गीकरण के आधार पर उन कहानियों को देशी अथवा विदेशी के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। पहले प्रकार की कहानियों में समूचा घटना-क्रम और कार्य-व्यापार स्थानीय पात्रों के साथ भारत की राजनैतिक-भौगोलिक सीमाओं के अंतर्गत ही घटित होता है, जबकि दूसरे प्रकार की कहानियों में पात्र और कार्य-व्यापार का स्थल भारत से बाहर, विदेश में होता है। इसके अलावा कुछ कहानियां भौगोलिक दृष्टि से अंशतः प्रवासी और अंशतः भारतीय होने के कारण ‘मिश्रित कथा’ के रूप में सामने आती हैं। (भाषावैज्ञानिक परिभाषा समाहार-दंद से इसकी तुलना की जा सकती है।)

अधिकतर कहानियां मिश्रित प्रकार की ही होती हैं। इनमें प्रवासी और भारत की कथानक रेखाएं गूढ़ी हुई हैं। मुख्य कार्य-व्यवसाय आम तौर पर लंदन में घटित होती है लेकिन इसकी कार्य-व्यवसाय का भारत का भाग निर्धारित करता है। ऐसी ही एक कहानी ‘पासपोर्ट के रंग’ में भारत सरकार का प्रवासी भारतीय मूल के लोगों को दोहरी नागरिकता देना लंदन में बेटे के घर रहनेवाले पंडित गोपालदास त्रिखा के जीवन, बल्कि चरित्र को बदल देता है और अंततः उसकी मृत्यु का कारण बन जाता है। ‘टेलीफोन लाइन’ में लंदन वाले अवतार सिंह के दुखी मन में भारत से उसके पहले प्रेम के फोन कॉलों की वजह से कई दिन भावनाओं का तूफान उमड़ रहा है। ‘देह की कीमत’ में कार्य/व्यापार का मुख्य भाग भारत, पंजाब में घटित हो रहा है। यहां विरहिणी पत्नी जापान में इल-लीगली काम करते हुए पति से हर हफ्ते में एक बार फोन पर बात करती है, जो उसको थोड़ी तसल्ली देता है। फिर एक हफ्ता कॉल नहीं आया क्योंकि पति की मृत्यु हो चुकी थी। लेखक की दूसरी कहानियों में भी भारत के जीवन की झलक अवश्य दिखाई देती है।

इस लेख में चर्चित कहानियों में दूर के तीन देशों का आभास होता है : जापान (देह की कीमत), कुवैत (ठिबरी टाइट) और इंग्लैंड। यह स्वाभाविक है कि कहानियों का कार्य-व्यापार अधिकतर इंग्लैंड, लंदन में घटित होता है। इसके पीछे सर्वविदित ऐतिहासिक कारणों के अलावा इस तत्त्व की भी भूमिका होगी कि लेखक 20 साल से उसी शहर में रह रहे हैं। वहां स्थाई रूप से रहते और काम

करते हुए भी वे साल में कई बार भारत की यात्राएं करते रहते हैं। यह एक तरह का ‘आधुनिक प्रवास’ है जिसमें मातृभूमि से संबंध पूर्णतः जीवित रहा है।

प्रवास और प्रवासी साहित्य की अवधारणा बदलती रहती है। पिछले कुछ दशकों के दौरान काफी बदल गई है। प्रवास का अर्थ आज वह नहीं है जो पिछली सदी में और उससे पहले था। यह परिवर्तन केवल नई टेक्नोलॉजी, यातायात में आई तेजी और तीव्रतर संचार माध्यमों के कारण ही संभव हुआ हो, ऐसा नहीं है। इसके पीछे हाल में हुए सामाजिक व राजनैतिक परिवर्तनों की भी भूमिका रही है। पहले के समय में देश-त्याग करके विदेश चले जाने वाले लोगों का अपनी मातृभूमि से संबंध स्थायी रूप से या बहुत लंबे समय के लिए दूट जाता था। प्रवास में रहकर भी रचना-कर्म को जारी रखने वाले साहित्यकार प्रायः राजनैतिक कारणों के चलते अपने देश से निर्वासित किए गए थे या वे अपने और अपने परिवार-जनों के जीवन को बचाने के लिए पलायन करके विदेशों में जा बसे थे। रूस में वर्ष 1917 की समाजवादी क्रांति के बाद ल्लादीमिर नाबोकोव, इवान बूनिन जैसे अनेक बड़े लेखकों को रूस छोड़ने का निश्चय करना पड़ा, क्योंकि वे अभिजात्य वर्ग के सदस्य थे और राजनैतिक व्यवस्था बदलने के उपरांत रूस में रहना उनके लिए घातक हो गया था। वे जीवन-पर्यात रूस नहीं लौट पाए। अपनी मातृभूमि की मधुर स्मृतियों और आत्मिक वेदना को वे अपनी रचनाओं का विषय बनाते रहे।

नाजी जर्मनी से पलायन करने वाले साहित्यकारों की भी वही स्थिति थी। वे भी नहीं जानते थे कि उन्हें भविष्य में कभी अपने देश की धरती पर पुनः पैर रखने का मौका मिलेगा या नहीं। उत्तरकालीन सोवियत जमाने में भी कुछ साहित्यकार सोवियत शासन से जूझकर स्वेच्छा से सोवियत संघ को छोड़कर विदेशों में जा बसे और साहित्य-रचना करते रहे परंतु अलेक्सांद्र सोल्जेनित्सिन जैसे बड़े लेखक को सोवियत संघ से जबरदस्ती निष्कासित किया गया। उस अवधि (20वीं शती के सातवें-नौवें दशक) में प्रवास का निश्चय करने वाले रचनाकारों को इस बात का अंदाजा होता था कि उनकी स्वदेश वापसी की संभावना लगभग नहीं के बराबर है। सौभाग्य से भारत के साहित्यकारों और नागरिकों को इस तरह के ‘बलात निष्कासन’ का अनुभव नहीं है।

वर्तमान में स्वतंत्र गतिशीलता की संभावनाओं और समाज में बढ़ती हुई समृद्धि के चलते प्रवासी देश और मूल देश के बीच दूरी अवश्य कम हो गई है लेकिन अभी भी काफी है। फिर भी 25-20 या 10 साल पहले, जब यहां चर्चित कहानियां लिखी गईं, भारत और दूर के देशों के बीच में आना-जाना बहुत कम लोगों के लिए संभव था। ऐसी ही अवस्थाएं ‘ठिकारी टाइट’ और ‘देह की कीमत’ में चित्रित हैं।

वस्तुतः, ऐसी कृतियों में कार्य-व्यापारों की समग्र स्थानिक संरचना के पीछे दो भिन्न भू-राजनीतिक ध्रुव काम कर रहे होते हैं। दोनों की अपनी-अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताएं होती हैं जो परस्पर विरोधी भी हो सकती हैं। इन रचनाओं के पात्र दो ध्रुवों के बीच अंतर्गमन करते रहते हैं। हमारे वर्तांत (नैरेटिव) के लिए महत्वपूर्ण है भारत से भारतेतर देश की ओर अंतर्गमन।

प्रवासी साहित्य की परिप्रेक्ष्य संरचना दो बिंदुओं- भारत और प्रवासी देश- को लेकर चल सकती है जो स्वयं ही प्रेक्षण विषय होते हैं। इस तरह, सैद्धांतिक दृष्टि से इसमें चार घटक आते हैं जो कि इस प्रकार हैं :-

1. प्रेक्षण- स्थान- भारत, प्रेक्षण-विषय- भारत
2. प्रेक्षण- स्थान- भारत, प्रेक्षण-विषय- विदेश;
3. प्रेक्षण-स्थान- विदेश, प्रेक्षण-विषय- भारत
4. प्रेक्षण-स्थान- विदेश, प्रेक्षण-विषय- विदेश

देशांतरण करने वाला पुरुष अधिकतर कहानियों का मुख्य पात्र होता है। ऐसे पात्रों की भारत और भारतेतर देशों की अनुभूतियां इस पर निर्भर करती है कि पात्र स्वयं वृत्तांत बिंदु में किस देश में है। जो देश उसके नजदीकी से दिखाई दे रहा है उसके नकारात्मक तत्व कष्ट दे रहे हैं।

यह बात महत्व रखती है कि वृत्तांतकार के रूप में लेखक की अपने मुख्य पात्रों के विचारों के साथ सहमति कहां तक है। Dunphy (2001 : 12) का मानना है कि सैद्धांतिक सहमति होना अवश्य चाहिए। इस संबंध में उल्लेख किया जाए कि पुरुष लेखक अपने स्त्री-पात्रों के माध्यम से भी अपनी बात कहने में सफल होते हैं। यहां पर फ्लावेयर का यह कथन याद आ रहा है कि- ‘मैं ही मादाम बावेरी हूँ।

इन कहानियों के माध्यम से लेखक जो कुछ भी संप्रेषित करना चाहता है, उसके लिए उक्त विचार केंद्र-बिंदु का काम करेंगे और जिन विषयों की चर्चा आगे की जा रही है वे सब विषय इन कहानियों के संवादों, वर्णनों तथा उनमें आए अन्य विवरणों में ध्वनित होते हैं।

जब तक कहानियों के पात्र भारत में रहते हैं उनका ध्यान ऐसी चीजों और अवस्थाओं पर केंद्रित होता है जो उनको कष्ट देती हैं, जिनसे उनका जीवन बिगड़ जाता है और जिनके कारण वे प्रस्थानगमन का निश्चय कर लेते हैं। भारत रहते समय उनका भारत पर परिप्रेक्ष्य आम तौर पर व्यवहारमूलक ही होता और ऐसे तथ्यों पर सीमित है जो प्रस्थान के कारण हैं। उनके कुछ उदाहरण हैं : ‘अभिशप्त’ में मुख्य पात्र को नौकरी नहीं मिलती है, तो वह नौकरी की तलाश में ब्रिटेन जाता है। ‘ढिबरी टाइट’ में मुख्य पात्र भारत को सुंदर जीवन, पैसे और विदेशी चीजों के लालच में कुवैत जाता है। ‘पासपोर्ट का रंग’ में बूढ़ा पिता बेटे के पास लंदन में रहने जाता है। इस चरित्र के ऊंचे व्यक्तित्व, देशभक्त और स्वतंत्रता सेनानी की प्रतिमा लेखक के पिता हैं। ‘पासपोर्ट का रंग’ के विपरीत ‘अभिशप्त’ में देश-प्रस्थान की मामूली परिस्थिति चित्रित है : प्रवास के कारण आर्थिक होते हैं। ऐसी परिस्थिति में नायक का प्रेमिका के प्रति बर्ताव व्यवहारमूलक और स्वार्थी है। वह सोच रहा है : ‘उसको साथ लेकर विदेश नहीं जा पाऊंगा’, ‘विदेश में शादी करूं तो उससे प्रेम कर सकता हूँ?’

प्रस्थानगमन से पहले की कालावधि में अपने देश के प्रति भावनाओं या उसके बारे में चिंतन करने का कहानियों में कोई उल्लेख नहीं है। इसी कालावधि में विदेश की मंगल-स्थान के रूप में कल्पनाएं की जाती रहती हैं। यह संभावनाओं और इच्छाओं की तृप्ति के राज्य जैसा देखा जाता है (ढिबरी टाइट, देह की कीमत)। बुनियादी तौर पर ये एक ही परिप्रेक्ष्य के दो आमने-सामने के बिंदु हैं।

दिलचस्प है कि इन दो कहानियों में (ढिबरी टाइट, देह की कीमत) जो लेखक के 1998 में भारत से प्रस्थान करके ब्रिटेन, लंदन में बसने से पहले लिखी थीं, नॉस्टेल्जिया का विषय प्रकट नहीं होता है। इसका कारण यह होगा कि कहानियों के पात्रों के मंसूबों के अनुसार देश प्रस्थान कई साल

का होना चाहिए, जीवन-पर्यंत नहीं। दोनों कहानियां दुःखांत हैं, ये त्रासदियां हैं। ‘दिवरी टाइट’ (1992, मुख्य कथावस्तु कुवैत में) प्रवासी के भाग्य के मारे एक पुरुष की हृदय-विदारक कहानी है। ‘देह की कीमत’ (1995, प्रवास जापान में) में पंजाबी लड़का गर्भवती पत्नी को छोड़कर जापान गया और वहां उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु उसके प्रवासगमन का नतीजा है। दोनों कहानियों में आरंभ में भारत की दृष्टि से रेखांकित परिप्रेक्ष्य कथानक के क्रमोत्कर्ष बिंदु में प्रवास के कठोर परिप्रेक्ष्य में बदलता है। प्रवास खतरनाक हो सकता है और इसका मूल्यांकन अत्यंत नकारात्मक है।

बुनियादी तौर पर इन दोनों का सामान्य संदर्भ और आर्थिक पृष्ठभूमि है। मातृभूमि के प्रति भावनाएं, उसकी मीठी यादें और अपने प्रस्थानगमन के बारे में चिंतन प्रवासी पात्रों को विदेश में सताने लगते हैं।

इस दृष्टिकोण से कहानी ‘अभिशप्त’ (सन् 1999 में, लेखक के भारत से प्रस्थान के बाद लिखी हुई) सब से लाक्षणिक है। रजनीकांत नामक मुख्य पात्र शिक्षित आदमी है, गुजराती माध्यम से बी.ए. पास हो गया। उसको स्नेहा से और स्नेहा को उससे प्रेम है। नौकरी बहुत प्रयास करने पर भी नहीं मिलती। इस अवस्था से उत्पन्न हुई निराशा को इंग्लैंड से आए दूर के रिश्तेदारों ने हटा दिया। रजनीकांत को साथ लेकर वे यूरोप वापस चले गए। इंग्लैंड में रहने के लिए उसके पास एक ही उपाय है- किसी लड़की से शादी करना जो ब्रिटेन की नागरिक हो। इसके लिए वह अपने बड़े प्यार स्नेहा से विश्वासघात करता है। लंदन में वह शादी करता है। उसकी भारतीय मूल की लेकिन लंदन में पत्नी-पोसी पत्नी से मानसिक संबंध नहीं जुड़ता बल्कि अपने 5-6 साल के बेटे के लिए भी वह पराया है। वह शारीरिक काम करता है। उनका अपना फ्लैट है और इसमें सब कुछ है जो होना चाहिए- फ्रिज, टी.वी., कार भी है परंतु यह किश्तों का जीवन है जो मुख्य पात्र जीने को अभिशप्त है।

‘किश्त’ कुंजी शब्द है जो रजनीकांत के न सिर्फ भौतिक जीवन बल्कि उसकी मानसिक स्थिति का भी सूचक है। वह प्रवासी देश और मातृभूमि के बीच में रहता है। विचारों में वह वास्तविक जीवन की वस्तुएं, मौसम, अपने खूद की आदतें, यानी कि सब कुछ की भारत की वस्तुओं से तुलना करता है- फिस्की- दूध, ठंड-गरमी, रात को नहाने- सुबह को नहाने की आदत। ये सारे आर्थिक व्यतिरेक उसके जीवन के दो ध्रुवों- इंग्लैंड और भारत- के विरोध को प्रकट करते हैं। अपने भारत में अतीत को वह सकारात्मक रोशनी में और इंग्लैंड में वर्तमान को नकारात्मक रोशनी में देखता है।

विचारणीय कहानियों में भौतिक स्थान-परिवर्तन को दो प्रकार से दिखाया गया है- या तो वृत्तांत के आरंभिक बिंदु से पहले ही पूरे हो चुके कार्य-व्यापार के रूप में या फिर वृत्तांत की विवृति (व्याख्या/exposition) में। पहली स्थिति में पूरी कहानी प्रवासी देश में घटित होती है जिसमें मुख्य पात्र वृत्तांत के केंद्र में रहता है और कथावस्तु फ्लैशबैक की तरह सामने आती है (‘पासपोर्ट का रंग’, ‘अभिशप्त’)। दूसरी स्थिति में होने वाला अंतर्गमन उन कार्य-व्यापारों का ही हिस्सा होता है जो ऐसे स्थानिक व्यतिरेकों (spacial opposition) को जन्म देते हैं। इन व्यतिरेकों का संबंध तरह-तरह के सामाजिक-सांस्कृतिक तथा मानसिक कारकों से होता है। पात्रों की मानसिक समस्याओं का चित्रण करने वाली अधिसंख्य स्थितियां ऐसी होती हैं जिनका निरूपण इस तरह किया जा सकता है कि दो ध्रुवों के बीच अंतर्गमन करने से मनुष्य का जीवन ही भारत और अन्य देश के बीच विभाजित हो जाता है जो मानसिक अंतर्द्वद्ध को जन्म देता है, मानो कि प्रवासी का अंतर्मन दो स्थानिक ध्रुवों

के बीच भौतिक स्थान-परिवर्तन का ही एक दूसरा रूप होता है।

तेजेंद्र शर्मा की कृतियों की विशेषता यह है कि उनमें प्रवासी साहित्य के सामान्य लक्षणों के साथ-साथ ठेठ भारतीयता भी विद्यमान रहती है। प्रवासी साहित्य के सामान्य लक्षण तो किसी भी देश के रचनाकार की कृतियों में देखे जा सकते हैं, उनमें- प्रवास का प्रलेखन। पराए देश में पराए लोगों के बीच में नए आए हुए प्रवासी, जिनको गुजारा करने के लिए कठिन शारीरिक काम करना पड़ता है, अपने आपको अधिकारीन मानकर निराश हो जाते हैं। इन नई परिस्थितियों में वे दुखी रहते हैं। जीवन के सभी मोर्चों पर हार जाते हैं। ऐसे चरित्र प्रवासी ‘संवेदना साहित्य’ ('literature of compassion') में प्रकट होते हैं। अतिभावुकता इस साहित्य का एक लक्षण है, विशेषकर आर्थिक चरण में। (Dunphy 2001) क्रमशः मेजबान देश के साथ दीर्घकालिक संबंध बनने के कारण दृष्टिकोण में बदलाव तथा उभरते हुए प्रवासी समुदाय का ऐसा चित्रण जिसमें वह ‘स्थायी देशांतरण की स्थिति’ को स्वीकार कर लेता है क्योंकि तभी प्रवासियों तथा उनकी संतान का भविष्य सुनिश्चित किया जा सकता है।

शर्मा की अधिसंख्य कहानियां लंदन की पृष्ठभूमि में लिखी गई हैं। इनमें संकट की उन स्थितियों का चित्रण है जब जिंदगी टूटने लगती है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में असफलताएं ही हाथ आ रही होती हैं।

कई सालों तक देश से बाहर रहने के कारण लेखक को विदेश और विदेश के लोगों की अच्छी जानकारी है। इन कहानियों में पृष्ठभूमि की वास्तविकता महसूस होती है। रोचक है कि वास्तविक पृष्ठभूमि का लगभग अवास्तविक जैसी परिस्थितियों और घटनाक्रम से मेल हो सकता है। इन कहानियों को पढ़ते हुए प्रेमचंद की कुछ कृतियों की कथावस्तु की याद आ जाती है जिनमें कुछ भी अलौकिक नहीं है और जो भी उनमें चित्रित किया गया है वह सिद्धांततः संभव तो है परंतु वैसा ही घटित होगा- ऐसा कहा नहीं जा सकता।

सामान्यतः कहा जा सकता है कि तेजेंद्र शर्मा की अनेक कहानियों में प्रेमचंद की धारा की स्पष्ट झलक मिलती है। उनकी कहानियों में प्रेमचंद की परंपरा का एक महत्वपूर्ण चिह्न अतिरिजित भावुकता है। उनके चरित्र किसान न होते हुए भी अधिकतर छोटे आदमी हैं। अक्सर वे दुःखी और दबाए हुए संवेदना के पात्र होते हैं। ‘अभिशप्त’ कहानी का प्रवासगत प्रमुख पात्र रजनीकांत भी मुंशी प्रेमचंद का प्रमुख पात्र लगता है, ‘यदि प्रेमचंद जीवित होते तो रजनीकांत के जीवन पर भी एक नया ‘गोदान’ लिख देते’ (अभिशप्त, 85)।

कुछ घटनाओं और परिस्थितियों की तो लेखक को प्रत्यक्ष जानकारी है जबकि कुछ वास्तविक घटनाएं लेखक ने मित्रों और परिचितों से सुनी हैं। निर्मला भुराड़िया को दिए गए एक साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी इस लेख के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। इस साक्षात्कार को पढ़ने से पहले मैंने शर्मा जी की एक ऐसी कहानी पढ़ी थी जिसकी कथावस्तु में मुझे रोमानी संवेदनशीलता का ऐसा गुणगान दिखाई देता था कि जिसके द्वारा पाठकों को भावुकता की पराकाष्ठा में ही उलझाकर बांधे रखा जा सके। लेखक की इस तरह की कुछ कहानियां ऐसी मूल घटनाओं से निकलकर आई हैं जो या तो लेखक को किसी ने बताई होंगी या कहीं उनके कानों में पड़ी होंगी। इसका सबसे प्रभावशाली उदाहरण है ‘देह की कीमत’। तेजेंद्र शर्मा के अपने शब्दों में, ‘मेरा एक मित्र था जो जापान हाई

कमीशन में पोस्टेड था। एकाएक वो मुझे फ्लाइट में मिला। उसने डेढ़ लाइन की कहानी सुनाई कि एक सरदार लड़के की जापान में मौत हो गई और उसके पैसे को भारत भेजना था तो परिवार में बड़ी लड़ाइयां हो रही हैं कि उसका पैसा किसे मिलेगा।’ इतना छोटा सा जटिल कथानक कहानी का आधार हो गए। कहानी में लड़के की शादी होती है, गर्भवती पत्नी को छोड़कर वह ‘इल-लीगल तरीके से’ जापान में काम करने जाता है, पत्नी की विरह और फिर अनंत विरह की वेदना तथा परिवारवालों का असीम लालच का चित्रण जो पुत्र और भाई की मृत्यु के सामने नहीं हासता। इस कहानी में ‘विकसित’ देशों के उपभोक्तावाद के घातक प्रभाव का चित्रण है।

शर्मा की कहानियों की संरचना के कई तत्वों में- कहानियों के पात्रों, स्थानों, वस्तुओं और, निश्चय ही, आधारभूत जीवन-मूल्यों में- व्यतिरेक के लक्षण देखे जा सकते हैं। ‘अभिशप्त’ में बहुसंख्यक व्यतिरेक हैं। ‘पासपोर्ट का रंग’ की पराकाष्ठा में, जो कहानी के अंत से मिलता-जुलता है, मृत पंडित ‘गोपालदास के दाएं हाथ में लाल रंग की ब्रिटिश पासपोर्ट था और बाएं हाथ में नीले रंग का भारतीय पासपोर्ट के। यह प्रभावशाली चित्र उस अंदरूनी व्यतिरेक का प्रतीक है जिस पर भूतपूर्व स्वतंत्रता सेनानी दोहरी नागरिकता पाकर काबू पाना चाहते थे।

जहां तक जीवन-मूल्यों की बात है, आध्यात्मिकता और भौतिकता का टकराव इन कहानियों में बार-बार आता है। लालच और उपभोक्तावाद के कारण होने वाले घोर नैतिक पतन का चित्रण करके तेजेंद्र शर्मा अपनी कहानियों के द्वारा पाठकों को भयभीत-सा कर देते हैं। उनके द्वारा किया गया अनैतिकता का अभूतपूर्व चित्रण धन-संचय की भावना की गृष्ठभूमि में और भी अधिक उभर कर सामने आता है या फिर महंगी, प्रतिष्ठादायक और भारत में दुर्लभ विदेशी वस्तुओं की लालसा का चित्रण तो और अधिक अभिव्यंजक है।

भौतिक वस्तुओं का लालच रखने वाले इन ‘अभिलाषी’ प्रवासियों को हमेशा ही खलनायक की तरह प्रस्तुत नहीं किया गया है। सामान्यतः कहानियों में कुछ ऐसे पात्र भी आते हैं जिनमें नायक के जैसे लक्षण तो नहीं होते हैं परंतु ‘लालची’ पात्रों की तुलना में उनमें सकारात्मकता दिखाई देती है। तेजेंद्र शर्मा ने अपने आप को ऐसे पात्रों से दूर रखा है जिसके लिए उन्होंने, अन्य साधनों के अलावा, हास्य और व्यंग्य का सहारा लिया है। (कब्र का मुनाफा)

कलासिकी रचनाओं पर आधारित फ्राइटाग के पिरामिड (Freytag 1975, 1922) का ‘हासशील कार्य-व्यापार’ (falling action) यहां बहुत अल्प है या है ही नहीं जिसके कारण क्रमोत्कर्ष और पराकाष्ठा का अंतर लुप्त ही हो गया है जबकि आधुनिक कथावस्तु वाली संरचनाओं में यह अक्सर देखा जा सकता है। भावुकता की अतिशयता का सहारा लेकर लेखक अपनी कथावस्तु को उसकी पराकाष्ठा पर पहुंचा देता है। इस तरह की आकस्मिक और चौंका देने वाली समाप्ति पाठक द्वारा कहानी के अवबोधन को, निश्चय ही, प्रभावित करती है।

तेजेंद्र शर्मा की ‘विदेशी’ तथा ‘देशी’ कहानियां भी बहुत प्रभावशाली हैं। उनका हिंदी लेखन आश्चर्यजनक और शक्तिशाली है, विशेषकर उन लोगों के लिए जो जानते हैं कि उनकी मातृ-भाषा पंजाबी है और उन्होंने लिखना अंग्रेजी में शुरू किया था।

संदर्भ

- शर्मा, तेजेंद्र. 2003. यह क्या हो गया? (तेजेंद्र शर्मा की चुनिंदा कहानियों का संकलन). नई दिल्ली : डायमंड पॉकेट बुक्स.
- निम्न इस संकलन में प्रकाशित हुई कहानियों के शीर्षक हैं जिनका सामग्री के रूप में इस लेख में प्रयोग हुआ।
- कौन-सी कहानी किस साल में लिखी हुई थी, यह जानकारी लेखक ने मुझे जून 2018 ईमेल से भेजी। इसके लिए मैं उनकी बहुत आभारी हूँ।
- अभिशप्त- पृ.- 80-90 (सन् 1999 में लिखी थी)।
- छिवरी टाइट, पृ.- 32-40 (सन् 1992 में लिखी थी)।
- देह की कीमत, पृ.- 115-126 (सन् 1995 में लिखी थी)।
- मुझे मार डाल बेटा, पृ.- 103-114.
- हिंदी समय। महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय का अभिक्रम। तेजेंद्र शर्मा।
- <http://www/hindisamay.com> (last accessed on 14 June 2018)
- पासपोर्ट का रंग (सन् 2004 में लिखी थी)।
- टेलीफोन लाइन (सन् 2005 में लिखी थी)।
- कब्र का मुनाफा (सन् 2006 में लिखी थी)।

सहायक पुस्तकें और लेख

- Graeme Dunphy- 2001- Migrant, Emigrant, Immigrant- Recent Developments in Turkish-Dutch Literature- Neophilologus 85/1% 1-23.
- Interview सोचता था अंग्रेजी में, लिखता था हिंदी में..! कथाकार तेजेन्द्र शर्मा से निम्नला भुराड़िया की मुलाकात
- <http://hindi/webdunia/com/article/hindi-poet-interview-3.html> (accessed 10 June 2018)
- Freytag, Gustav. 1975, Leipzig, 1922, Die Technik des Dramas. Nachdr. d- 13. Aufl., Darmstadt% Wiss. Buchgesellschaft.
- सम्मान- तेजेन्द्र शर्मा को 'मेंबर ऑफ द ऑर्डर ऑफ द ब्रिटिश एंपायर' सम्मान. 2017.
- <http://hindi/webdunia.com/nri-news/tejender-sharma-got- international &award&117061900044&1-html> (accessed 9 June 2018)
- श्रीवास्तव, मनोज. 4 अप्रैल 2011. प्रवासी हिंदी साहित्य में परंपरा, जड़ें और देशभक्ति. साहित्यिक निबंध. अभिव्यक्ति.
- <http://www.abhivyakti&hindi-org/snibandh/2011/pravasi&hindi&sahitya-htm> (accessed 12 June 2018)

प्रवासी लेखन हिंदी साहित्य का बेहतरीन नमूना : तेजेंद्र शर्मा

(ब्रिटेनवासी कथाकार तेजेंद्र शर्मा से उषा शर्मा की बातचीत)

आप विगत तीन दशक से ब्रिटेन में रहते हुए हिंदी में साहित्य सृजन कर रहे हैं। ब्रिटेन में हिंदी साहित्य और हिंदी साहित्यकारों की कितनी पूछ परख है?

उषाजी, ब्रिटेन में हिंदी साहित्यकार एवं पाठक पहली पीढ़ी के प्रवासी ही हैं। जिन बच्चों का जन्म ब्रिटेन में हुआ है, उनके लिए हिंदी केवल टीवी सीरियल और हिंदी सिनेमा तक सीमित है। ठीक भारत की ही तरह युवा पीढ़ी के लिए हिंदी एक बोली बन गयी है... भाषा नहीं है। उस पर व्हाट्सएप और फेसबुक जैसे सोशल मीडिया पर रोमन में हिंदी शब्द लिखकर यह पीढ़ी देवनागरी से दूर हो गयी है। ब्रिटेन में हिंदी साहित्य का बहुत बड़ा पाठक वर्ग नहीं है। वेब-मैगजीनों के शुरू होने से पाठकों को आसानी से साहित्य उपलब्ध होने लगा है। कथा यू.के. ने ब्रिटिश संसद में हिंदी कार्यक्रमों के आयोजन का सिलसिला शुरू किया। इंदु शर्मा कथा सम्मान, पद्मानन्द साहित्य सम्मान एवं कथा-गोष्ठियों का आयोजन किया मगर इन सब कार्यक्रमों में वे ही लोग शामिल होते रहे जिन्हें पहले से हिंदी का ज्ञान था। इनसे नए पाठक या लेखक नहीं जुड़े। ब्रिटेन में हिंदी की गतिविधियां अपने अस्तित्व के लिए हमेशा पंजाबी एवं गुजराती समुदायों पर निर्भर करती हैं जैसे भारत में चेतन भगत को हिंदी लेखक भी पहचानते हैं। सलमान रुशी, विक्रम सेठ, अनीता देसाई, आर.के.नारायण और मुल्कराज आनंद को पूरा भारत पढ़ता है, जानता है मगर संजीव का नाम बताने पर लोग पूछते हैं..पूरा नाम क्या है। कुछ वैसा ही हाल यहां भी है। हम भी पहचान के लिए भारत की ओर देखते हैं। यह शायद एक चमत्कार ही कहा जा सकता है कि किसी हिंदी लेखक को पहली बार हिंदी लेखन के लिए ब्रिटेन की महारानी ने एम.बी.ई. की उपाधि से सम्मानित किया है।

सामान्यतः कहा जाता है कि साहित्य सृजन में परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसे में विदेशी परिवेश आपकी रचनाओं में किस तरह सहयोग देता है?

सच तो यह है कि हर लेखक अपने अनुभवों को शब्द देता है। प्रवासी लेखक की यह जिम्मेदारी भी है कि अपने अपनाए हुए मुल्क के बारे में रचनाओं का सृजन करे ताकि पाठकों और आलोचकों को पढ़ने के लिए कुछ नया मिले। शायद इसीलिए राजेंद्र यादव ने अपने एक वीडियो इंटरव्यू में कहा था कि- ‘तेजेन्द्र ने हिंदी साहित्य को कुछ नई थीर्थों और नैरेटिव दिए हैं।’ मैंने यहां के समाज को देखा, समझा और आत्मसात किया। यहां के समाज के साथ विचारों और रिश्तों का आदान-प्रदान किया तब मुझे समझ में आया कि अपने अपनाए हुए देश के बारे में लिखना कितना महत्वपूर्ण है। ‘कब्र का मुनाफा’, ‘कोख का किराया’, ‘पासपोर्ट का रंग’, ‘इंतजाम’, ‘पापा की सजा’, ‘होमलैस’, ‘ओवरफ्लो पार्किंग’ जैसी कहानियां इसीलिए संभव हो पाईं क्योंकि मैंने अपने नए परिवेश को अपनी

कहानियों में गूँथा । यही नहीं, मैंने तो कविताओं और गजलों में भी प्रवासियों और निवासियों के बीच पुल बांधने का प्रयास किया और घोषणा कर दी कि मैं कवि हूं इस देश का ।

तेजेंद्रजी, यदि आप भारतीय परिवेश से संबंधित रचनाएं लिखते हैं तो यह आरोप लगना स्वाभाविक है कि लंबे समय तक विदेश में रहने के कारण भारतीय परिवेश से आपका वैसा परिचय नहीं है । ऐसे में आपकी रचनाओं का सच पाठक के लिए कितना सच होगा क्योंकि पिछले तीन दशकों में भारत में काफी तेजी से बदलाव आए हैं?

दरअसल आपका यह सवाल 1960, 70, 80 या फिर 90 के दशक तक तो ठीक था मगर आज हालात बदल चुके हैं । ब्रिटेन में भारत के पांच न्यूज चैनल और करीब सौलह मनोरंजन चैनल हैं । इसके अतिरिक्त हर भारतीय समाचारपत्र का वेब-एडिशन उपलब्ध होता है । जनसत्ता के विदेशी पाठक शायद भारत से अधिक ही होंगे । वेब-पत्रिकाओं को किसी प्रकार की कहानी छापने से डर भी नहीं लगता । आपको हाल ही की खबर सुनाता हूं कि मैंने उत्तर प्रदेश के किसानों पर एक कहानी लिखी जिसमें गो-हत्या पर लगे प्रतिबंध को केंद्र में रखा गया था । भारत के एक समाचारपत्र ने मुझे ई-मेल के जरिए सूचित किया कि आपकी कहानी विवाद खड़ा कर सकती है इसलिए प्रकाशित नहीं कर पाएंगे । दरअसल जब कभी दिल्ली, मुंबई, पंजाब, हिमाचल, उत्तराखण्ड आदि में कोई हादसा होता है तो हम लंदन से फोन करके अपने रिश्तेदारों का हाल पूछते हैं, तो वे हैरान होकर कहते हैं कि उन्हें तो हमारे फोन से हादसे का पता चला है । दरअसल हम थोड़ा दूर से भारत की घटनाओं को देखते हैं और हमारा कोई राजनीतिक दृष्टिकोण नहीं होता, इसलिए हम भारत की स्थितियों से बेहतर परिचित होते हैं बनिस्बत भारतीयों के ।

विगत दस वर्षों में विदेश में रहने वाले अनेक भारतीयों में लेखक बनने की होड़ सी लगी है । आप उनमें से कितने प्रतिशत में लेखकीय तत्व पाते हैं?

यह आरोप ब्रिटेन के हिंदी लेखन पर फिट नहीं बैठता । आपको सच्चाई बता दूं कि ब्रिटेन में इस वक्त एक तरह की परेशानी की स्थिति बनी हुई है । अधिकांश लेखक सत्तर से ऊपर हो चुके हैं । कैलाश बुधवार, महेन्द्र दवेसर, कादंबरी मेहरा, कृष्ण कुमार, जकिया जुबैरी, उषा राजे सर्वसेना, उषा वर्मा, शैल अग्रवाल, जय वर्मा, अरुणा सभरवाल, रमा जोशी, शन्नो अग्रवाल, स्वर्ण तलवाड़ जैसे लेखकों की सौर्यों तो कुछ अस्सी पार हैं, कुछ पिचहतर पार तो कुछ सत्तर पार । अचला शर्मा ने काफी अर्से से कुछ नया नहीं लिखा है । युवा पीढ़ी के नाम पर पचास से अधिक के मोहन राणा और पद्मेश गुप्त हैं तो दूसरी ओर शिखा वार्ष्ण्य और इंदु बैरॉट । यहां तो खतरा यह है कि क्या ब्रिटेन का प्रवासी साहित्य खत्म होने की कगार पर है... यह सच है कि युवा पीढ़ी के लेखकों का तो अकाल है । सोचने की बात यह है कि अगर भारत की युवा पीढ़ी भारत में ही हिंदी लिखती-पढ़ती नहीं तो प्रवास में आकर अचानक उसमें इस बदलाव की अपेक्षा कैसे की जा सकती है ।

आपकी चिंता जायज है पर क्या प्रवासी भारतीय लेखक साहित्य के अनुशासनों का ठीक से निर्वाह कर पा रहे हैं?

यह सवाल गंभीर भी लगता है और मजाक भी । साहित्य का अनुशासन क्या होता है... क्या इसकी कोई परिभाषा भारत के तमाम लेखकों पर पूरी बैठती है । कोई बाएं हाथ से लिख रहा है तो

कोई दाएं हाथ से। कोई महिलाओं के बारे में लिख रहा है तो कोई जाति विशेष के बारे में। आखिर अनुशासन कहाँ दिखाई देता है। कविता के नाम पर कुछ भी परोसा जा रहा है। कभी अकविता दस्तक देती है तो कभी अकहानी। जब भारत के महत्वपूर्ण कहानीकारों की सूची बनती है तो दस से पंद्रह नाम सामने आते हैं यानी कि सैकड़ों, हजारों कहानीकारों में से केवल दस पंद्रह नाम ही लेने योग्य हैं। ठीक इसी तरह चाहे भक्तिकाल हो या फिर छायावाद, ले देकर केवल चार से पांच नाम ही तो सामने आते हैं। क्या उस काल में केवल वे चार पांच लोग ही लिख रहे थे। सैकड़ों, हजारों लोगों में से नानक, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा ही वक्त की मार सहते हुए हमारे सामने आज भी जिंदा हैं यानी कि साहित्य का अनुशासन केवल इन्हीं लोगों में था। ब्रिटेन के प्रवासी लेखकों की संख्या यदि 50 मान ली जाए और उनमें पांच अनुशासित लेखक माने जा सकते हैं तो प्रतिशत तो बहुत ऊंचा हुआ न।

इधर हिंदी साहित्य में बहुत सारे विमर्श अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रहे हैं। क्या विदेशी साहित्य को भी दलित, आदिवासी जैसे खांचों में बांटकर देखा जाता रहा है?

हिंदी साहित्य का सबसे अधिक नुकसान इन खांचों ने ही किया है। अजय नावरिया जैसा प्रतिभाशाली कहानीकार दलित विमर्श में फंसा हुआ है तो बेहतरीन भाषा की मालकिन गीताश्री स्त्री-विमर्श में फंसी हुई हैं। अगर ये दोनों विमर्श से बाहर आकर केवल कहानी लिखें तो हिंदी के बेहतरीन कथाकार साबित हो सकते हैं। साहित्य को खेमों में बांटने का लाभ शायद विश्वविद्यालयों और आलोचकों को मिलता होगा मगर साहित्य एकरस होने के खतरे से जूझता है। कम से कम प्रवासी हिंदी साहित्य को इस प्रकार की कोई चिंता नहीं। हम भारत की राजनीति से सीधे संपर्क में नहीं हैं और न ही हम किसी प्रकार के वाद-विवाद से जुड़े हैं। हम केवल लिखते हैं... जो दिल को छूता है.. लिखते हैं। ब्रिटेन के हिंदी लेखकों ने ऐसी बहुत सी कहानियां दी हैं जो हिंदी के साहित्यिक फलक को खासा ऊंचा कर देती हैं।

आप ये बताएं कि मूल ब्रिटिश साहित्यकार ब्रिटेन में रह रहे हिंदी के प्रवासी लेखकों को कितना महत्व देते हैं और उन्हें साहित्यकार के रूप में किस तरह स्वीकार करते हैं?

उषाजी, इसे कुछ यूं समझा जा सकता है कि जितना महत्व भारत का अंग्रेजी साहित्यकार हिंदी, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, उडिया लेखक को देता है शायद उतना ही महत्व हमें मूल ब्रिटिश साहित्यकार देते हैं। दरअसल हम लोग एक तरह के 'गेटो' में रहते हैं। अंग्रेजी के भारतीय या मूल ब्रिटिश लेखकों से हमारा सीधा संपर्क नहीं बन पाता है। हम में से दो-तीन लेखक ऐसे हैं जिन्होंने अपनी अंग्रेजी में अनुवादित कहानियां यहाँ के मुख्यधारा के लेखकों तक पहुंचाई हैं और जो कभी-कभार हमसे हमारे साहित्य के विषय में चर्चा कर लेते हैं। अन्यथा भारतीय भाषाओं का साहित्य तो भारतीयों में साझा नहीं हो पाता, मूल ब्रिटिश लेखकों की तो बात ही दीगर है। हर विश्व हिंदी सम्मेलन में यह नारा लगाया जाता है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाना है, मगर सच तो यह है कि हम इसे भारत की भाषा बना पाने में असमर्थ रहे हैं, बुरी तरह से विफल।

पर ब्रिटेन का तो भारत से गहरा नाता रहा है। आज ब्रिटिश समाज की भारत और हिंदी को लेकर क्या दृष्टि है क्योंकि ब्रिटेन ने तो लंबे समय तक भारत पर शासन किया।

देखिए, नरेन्द्र मोदी के भारत के प्रधानमंत्री बनने के बाद और ब्रेक्सिट के चलते ब्रिटेन के

लिए भारत का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। प्रधानमंत्री के हाल के दौरे से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि ब्रिटेन और भारत के रिश्तों का भविष्य उज्ज्वल है। आज भारतीयों को आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। लंदन शहर में सबसे अधिक विनिमय भारतीय कंपनियों द्वारा किया गया है। जहां तक हिंदी का सवाल है, 1980 के दशक में लंदन के स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती थी मगर आहिस्ता-आहिस्ता पाया गया कि भारतीय माता-पिता अपने बच्चों को हिंदी पढ़ाने में रुचि नहीं रखते। भारतीय मूल के बच्चे हिंदी के स्थान पर फ्रेंच या जर्मन भाषा पढ़ते थे ताकि उनके लिए बेहतर नौकरियों के रास्ते खुल सकें। एक समय ऐसा भी आया कि स्कूल में अध्यापक तो हैं मगर विद्यार्थी एक भी नहीं। अंग्रेजों को समझ में आ गया कि भारतीयों में हिंदी भाषा के प्रति कोई लगाव नहीं है। हिंदी स्कूलों से गायब हो गयी और अध्यापकों की नौकरी खत्म। वहीं पंजाबी, गुजराती, बंगाली और उर्दू पढ़ने वाले परिवारों में अपनी भाषा के प्रति कमिटमेंट हिंदी से कहीं अधिक था। यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है कि ब्रिटेन में बंगाली और उर्दू को भारत की भाषाएं नहीं माना जाता। बंगाली बांग्लादेश की राष्ट्रभाषा है और उर्दू पाकिस्तान की। ब्रिटेन में वसे भारतीयों में से अधिकांश की मातृभाषा पंजाबी या गुजराती है। उसके बाद तमिल, बांग्ला और अन्य भाषाएं। हिंदी मातृभाषा वाले लोगों की संख्या नगण्य है। विडंबना यह है कि हिंदी विश्व में किसी भी देश की राष्ट्रभाषा नहीं है तो जो भाषा किसी भी राष्ट्र की भाषा नहीं है उसके प्रति किसी भी समाज की दृष्टि क्यों बनेगी?

फिर भी ब्रिटेन में हिंदी को लेकर गतिविधियां संचालित की जा रही हैं इस विषय में कुछ जानकारी दीजिए।

देखिए, ब्रिटेन में पिछले पचीस वर्षों में हिंदी को लेकर खासी गतिविधियां चलती रही हैं। नरेश भारतीय एक समाचार पत्र ‘चेतक’ निकाला करते थे। जगदीश मित्र नौशल ने तो पचीस साल तक ‘अमरदीप’ नाम का साप्ताहिक हिंदी समाचार पत्र प्रकाशित किया मगर हिंदी गतिविधियों को सही दिशा देने में भारतीय उच्चायुक्त लक्ष्मीमल्ल सिंघवी का बड़ा हाथ रहा। उनके कार्यकाल में ‘यू. के. हिंदी समिति’ का गठन हुआ। आज भी यह संस्था हर वर्ष हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन करती है। ‘कथा यूके’ ने ‘अंतरराष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान’ और ‘पद्मानंद साहित्य सम्मान’ के माध्यम से हिंदी कार्यक्रमों का आयोजन ब्रिटेन की संसद के हाउस ऑफ कॉमन्स एवं हाउस ऑफ लॉडर्स में करने की राह प्रशस्त की। लंदन, बर्मिंघम, नॉटिंघम और वेल्स जैसे शहरों में कथा-गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है, हिंदी सिनेमा से जुड़े कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। ‘काव्यरंग’ ने नॉटिंघम शहर को सिटी ऑफ लिटरेचर का रूतबा दिलवाने में अहम भूमिका अदा की है। वातायन लगातार साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन करता है। गीतांजलि बहुभाषी समाज बहुभाषी होते हुए भी अपने अधिकांश कार्यक्रम हिंदी में ही आयोजित करता है। कथा यू.के. ब्रिटेन से ‘पुरवाई’ नामक पत्रिका का प्रकाशन करती है जो कि अब वेब-मैगजीन के रूप में उपलब्ध है।

भारतीय साहित्य को विदेश में क्या दोयम दर्जा हासिल है? प्रवासी भारतीय होने के नाते आपकी क्या राय है।

यह गलतफहमी आपको कैसे है कि विश्व साहित्य में हिंदी साहित्य दोयम दर्जे का माना जाता है? सच तो यह है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी साहित्य की स्थिति न होने जैसी है। उसका सबसे बड़ा कारण है कि हिंदी साहित्य एक पार्ट-टाइम एक्टीविटी है। एक पार्ट-टाइम नौकरी के भी कुछ

उसूल होते हैं, तयशुदा काम करने का समय होता है। यहां तो हिंदी लेखक फुल-टाइम नौकरी करता है; परिवार की सारी जिम्मेदारियां पूरी करता है; नून तेल आटे के चक्करों से निकलता है तो घर के दूसरे काम सामने खड़े होते हैं। शोध करने वाले तो इका-दुका लेखक ही हैं। अधिकांश हिंदी साहित्य भावनाओं का पिटारा है, रिश्तों की परिभाषा। भला ऐसे में हम उससे वैश्विक स्तर के साहित्य की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं। दूसरी समस्या है प्रकाशकों की। जिस साहित्य का प्रकाशक पहला संस्करण 300 से 500 पुस्तकों का निकालता है, वो भला आपके साहित्य को वैश्विक स्तर पर उपलब्ध कैसे करवा सकता है। अधिकांश हिंदी साहित्य लाइब्रेरियों में डंप होने के लिए लिखा जाता है। हैरानी तो तब हुई कि जब कुछ लोगों ने अपना साहित्य अकादेमी पुरस्कार वापस करने की घोषणा की तो पता चला कि उन लोगों ने भी कुछ लिखा है जो पुरस्कृत हो चुका है। जब तक हिंदी साहित्य में भी अंग्रेजी की तरह प्रकाशन का सिस्टम नहीं अपनाया जाता तब तक हमारा साहित्य छपेगा, मित्रों में बटेगा और गायब हो जाएगा। पिछले करीब तीन दशकों तक हिंदी साहित्य एक खास विचारधारा के दबाव में लिखा गया। इस विचारधारा को विश्व स्तर पर सराहने वाला कोई है नहीं। अनुवाद इतना महंगा है कि लेखक तो करवा नहीं पाता और प्रकाशक को उसमें रुचि नहीं है। जब तक आपका साहित्य अंग्रेजी में अनूदित होकर विश्व भर के देशों में उपलब्ध नहीं करवाया जाएगा तब तक हिंदी साहित्य कुएं की टर्टर बनकर रह जाएगा। सवा अरब की आबादी वाले देश में हिंदी साहित्य केवल दो से चार हजार लोगों का शगाल मेला है। भारत की त्रासदी यह है कि यहां संजीव जैसे लेखक को स्वयं बताना पड़ता है कि वे लेखक हैं जबकि चेतन भगत को पूरा भारत जानता है।

प्रवासी साहित्य को लेकर एक चर्चा यह भी की जाती है कि यह साहित्य दोयम दर्जे का है। आपकी इस विषय में क्या राय हैं?

देखिए साहित्य को लेकर दो स्थितियां होती हैं। एक स्थिति है कि किसी लेखक को पढ़कर उसके लेखन को लॉजिकली ध्वस्त करना। एक स्थिति है कि बिना पढ़े ही उसे खारिज कर देना। नरेन्द्र कोहली इस स्थिति से गुजर चुके हैं। अधिकांश वामपंथी पत्रिकाओं, संपादकों एवं आलोचकों ने उन्हें बिना पढ़े ही नकार दिया और उन्हें स्वामी नरेन्द्र कोहली का दर्जा दे दिया। प्रवासी लेखन एक मामले में हिंदी साहित्य का बेहतरीन नमूना है क्योंकि यहां किसी प्रकार का विमर्श हावी नहीं है। हम किसी विचारधारा के दबाव में साहित्य की रचना नहीं करते। हमें फर्क नहीं पड़ता कि भारत में किस दल की सरकार है। हमारे विषय स्वतंत्र हैं। आप प्रवासी साहित्य को दलित, महिला लेखन, या किसी और खांचे वाले साहित्य की तरह नहीं तौल सकते। मॉरीशस, सूरीनाम, अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, यूरोप या खाड़ी देशों के साहित्य को प्रवासी साहित्य केवल इस्तिए कहा जाता है कि सुविधा के तौर पर यह मान लिया जाए कि जो लेखक भारत से बाहर रहकर लिख रहा है वह प्रवासी लेखक है। इन सब देशों के लेखकों के सरोकार अलग हैं। आज मोहन राणा की कविता विश्व के किसी भी कवि की कविताओं के समकक्ष रखी जा सकती है। कथाकारों में बहुत से नाम ऐसे हैं जिनकी रचनाएं भारत की उत्कृष्ट रचनाओं के सामने अपना औचित्य सिद्ध कर सकती हैं। सवाल यह है कि वर्तमान आलोचक प्रवासी जीवन को कितना समझते हैं। क्या उन्हें विदेशी जीवन का इतना अनुभव है कि वे इन कहानियों से गुजरते हुए उन्हें ठीक से पकड़ पाएं। हमें आलोचना के नए औजार विकसित करने होंगे ताकि प्रवासी जीवन एवं प्रवासी लेखन को समझा जा सके। बाकी स्तरीय लेखन

और कमजोर लेखन भारत में भी होता है और विदेशों में भी।

प्रवासी साहित्य के बारे में यह धारणा है कि भारत के बाहर के हिंदी के साहित्यकार जो कुछ भी लिखते हैं वह छप ही जाता है अर्थात् प्रवासी साहित्यकार एक सुविधापूर्ण स्थिति में है। आपकी राय?

तो क्या भारत में कुछ भी लिखा नहीं छप पाता है? मुझे रह-रहकर अङ्गेय की बात याद आती है कि हर लेखक को अपनी पुस्तक प्रकाशित करवाने से पहले एक बात याद रखनी चाहिए कि कागज बनाने के लिए पेड़ काटने पड़ते हैं। भारत का हिंदी प्रकाशक (अधिकांश) आजकल रॉयल्टी देने के बजाए लेखक से पैसे लेकर किताब छापता है। हम जैसे कुछ लोगों को छोड़ दिया जाए तो अधिकांश प्रवासी लेखक भी ठीक भारतीय लेखकों की तरह पैसे देकर किताब छपवाने लगे हैं। कुछ बेस्ट सेलर प्रकाशकों ने तो किताब छपवाने के पैकेज बनवा रखे हैं जिसमें पुस्तक का संपादन, प्रकाशन, पब्लिसिटी और बिक्री तक के पूरे खर्च गिनवा दिए जाते हैं और किताब की पृष्ठ संख्या के हिसाब से पैकेज बिक जाता है। जब भारत के हिंदी लेखक का यह हाल है तो भारत से बाहर हजारों मील दूर बैठा लेखक इस कुचक से कैसे बच सकता है। मुझे याद है कि दिल्ली के एक बड़े प्रकाशक ने मुझ पर ‘इंदु शर्मा कथा सम्मान’ एक खास लेखक को देने के लिए बहुत दबाव बनाया। मेरे इनकार करने पर उसने मेरा कहानी संग्रह लौटा दिया और कहा कि नहीं प्रकाशित करेगा। दरअसल हर बात के एक से अधिक पहलू होते हैं। हम मेज के जिस ओर बैठे होते हैं समस्या को उसी कोण से देखते हैं जबकि अच्छा यह हो कि मेज के दोनों ओर की समस्याओं को समझा जाए।

क्या ब्रिटिश सरकार या अन्य संस्थाएं हिंदी को बढ़ावा देने के लिए कुछ सहयोग करती हैं? यदि हां तो इस पर वहां के लोगों की क्या प्रतिक्रिया रहती है?

ब्रिटेन की सरकार एक मामले में पूरी तरह से निष्पक्ष और सेक्युलर है। यहां जो भी स्कीम साहित्य के लिए निकाली जाती है, वह सब पर लागू होती है। जैसे हर कार्डिनल के पास साहित्य और संस्कृति के लिए कुछ बजट होता है। अप्लाई करने पर सहायता मिलती है। नेशनल लॉटरी के अवार्ड फॉर आल के माध्यम से हिंदी कार्यक्रमों एवं प्रोजेक्ट के लिए आर्थिक सहायता मिलती है। आर्ट्स अकादमियां पुस्तक, पत्रिका प्रकाशन के लिए सहयोग करती हैं। हिंदी की किसी एक संस्था को ऐसा सहयोग मिलने पर अन्य हिंदी संस्थाओं की प्रतिक्रिया फिल्म 3-ईडियट्स के इस संवाद में समझाई गयी है, -‘जब दोस्त फेल हो जाए तो दुःख होता है, और अगर दोस्त फस्ट आ जाए तो बहुत दुःख होता है।’... वैसे मुख्यधारा के लोगों की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती क्योंकि सब अपने अपने काम में व्यस्त होते हैं।

तेजेन्द्रजी अभी हाल ही में आपको ब्रिटेन की महारानी ने एम.वी.ई. के खिताब से सम्मानित किया है। इस विषय में हमें बताइये कि आखिर यह सम्मान क्या है?

उषाजी, सच तो यह है कि ये सम्मान पहले केवल शौर्य के लिए दिए जाते थे। मगर जॉर्ज पंचम ने इन्हें सिविल सर्विस जिसमें विज्ञान, कला एवं साहित्य शामिल हैं, से भी जोड़ा। इन्हीं सम्मानों के आधार पर ही हमारे भारत के पद्म सम्मान शुरू किए गए थे। मोटे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मुझे ब्रिटेन का पद्मश्री सम्मान दिया गया है। मगर इस सम्मान की अहमियत इस मामले में बढ़ जाती है कि जबसे ये सम्मान शुरू हुए हैं पहली बार किसी लेखक को हिंदी साहित्य

में योगदान के लिए यह सम्मान दिया गया है। मेरे हिसाब से यह पल हिंदी भाषा एवं साहित्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण पल है कि हिंदी को अंग्रेजी के गढ़ में मान्यता मिली है। जब बकिंघम पैलेस में घोषणा की गयी कि तेजेन्द्र शर्मा को यह सम्मान हिंदी साहित्य के लिए दिया जा रहा है तो मुझे महसूस हुआ कि मेरे माध्यम से हिंदी के हर बड़े छोटे साहित्यकार का सम्मान हो रहा है। मैं अपने इस सम्मान को पूरे हिंदी साहित्यिक जगत का सम्मान मानता हूं।

इसके लिए आपको बधाई। आप हमें ये बताएं कि इंग्लैंड जाने के बाद आपके जीवन में क्या महत्वपूर्ण बदलाव आए?

लंदन में बसने के बाद मेरे जीवन और लेखन में कई बदलाव आए। बच्चों की पढ़ाई पूरी हो गई। बेटी वापस मुंबई चली गई वहां टेलिविजन में एक्रिंग कर रही है। बेटे का विवाह हो गया वह अपनी डेंटिस्ट पत्नी के साथ अलग रहता है। मैं अब अकेला रहता हूं और मेरा अधिकतर समय रेलवे की नौकरी और लेखन में खर्च होता है। फेसबुक और व्हाट्सएप जैसे सोशल मीडिया साइट मुझे पूरी दुनिया से जोड़े रखते हैं। भारत की गतिविधियों से जुड़ा रहता हूं। हर साल जनवरी में भारत आता हूं और बहुत से महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के साथ संवाद स्थापित करता हूं। अब मेरे लेखन की थीम अधिक वैश्विक हो गई है। मेरी नवीनतम कहानी ‘यह कैसी शवयात्रा’ पूरी तरह से अनछुई और अनूठी थीम पर आधारित है। ब्रिटेन में बसने के बाद ही मेरे लिए ‘कब्र का मुनाफा’, ‘ये जमीन भरभुरी क्यों हैं’, ‘कल फिर आना’, ‘इंतजाम’, ‘पापा की सजा’, ‘छूता फिसलता जीवन’ और ‘कोख का किराया’ जैसी कहानियां लिख पाना संभव हुआ।

यहां आने के बाद ‘कथा यू.के.’ की स्थापना की। ब्रिटेन की संसद के हाउस ऑफ कॉमन्स एवं हाउस ऑफ लॉडर्स में हिंदी कार्यक्रमों के आयोजन किए। कथा गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों एवं कार्यशालाओं का आयोजन किया। भारत के बहुत से शहरों में प्रवासी सम्मेलनों का आयोजन किया। कुछ विशेषांक संपादित किए और सबसे बड़ी बात... अपना कहानी लेखन जारी रखा.... हां यह ख्याल रखता हूं कि जब तक कहने को कुछ नया न हो तब तक कलम नहीं उठाता।

आप सात समुंदर पार रहकर हिंदी साहित्य को अपनी नजर से देखते रहे हैं। साठ के दशक में लिखे जाने वाले साहित्य और 21वीं सदी में लिखे जा रहे साहित्य में आप क्या अंतर पाते हैं?

साठ के दशक का काल ऐसा काल था जब कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और निर्मल वर्मा अपने उरुज पर थे। नई कहानी की धूम थी। महिला लेखकों में कृष्णा सोबती और मनू भंडारी भी सक्रिय थीं। कहानी गांव को पीछे छोड़कर महानगर में आ गई थी और निम्न-मध्यवर्गीय घरों के भीतर पहुंच गई थी। पति-पत्नी के रिश्ते कहानी का विषय बन गए थे। कहानी किसान से मजदूर और सफेद कॉलर वर्कर तक आ पहुंची थी। आज के कहानीकार के पास 1960 के दशक के कहानीकारों से कहीं अधिक कहानी की परंपरा मौजूद है। आज कहानीकारों की कम से कम पांच पीढ़ियां इकट्ठी कहानियों का सृजन कर रही हैं। कहानी को युवा जोश और अनुभव की परिपक्वता दोनों मिल रहे हैं।

वर्तमान में हिंदी कहानी की दशा-दिशा के बारे में आप क्या सोचते हैं और उसे कैसा होना चाहिए?

कहा जा सकता है कि यह हिंदी कहानी का बेहतरीन काल है। इस समय हिंदी कहानी शायद

अपने बेहतरीन दौर से गुजर रही है। आज हिंदी कहानी की कई पीढ़ियाँ एक साथ सक्रिय हैं। एक तरफ असगर वजाहत, चित्रा मुद्रगाल, ममता कालिया, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा आदि लिख रही हैं तो वहीं संजीव, शिवमूर्ति, प्रियंवद, अखिलेश, हरि भटनागर, सूरज प्रकाश, जैसे लेखक भी सक्रिय हैं। उदय प्रकाश तो हिंदी साहित्य के आमिर खान हैं बीच-बीच में आते हैं और एक छका लगा जाते हैं और युवा लेखकों की तो एक लंबी सी कतार है। कहानी वामपंथी दबावों से बाहर आ चुकी है। कहानी में कहानीपन वापस आ रहा है। मेरे हिसाब से कहानी में किस्सा होना जरूरी है। आपके पास कहने के लिए कुछ होना जरूरी है। शब्दों के फंदे बुनना भर कहानी लिखना नहीं है।

हाँ, हिंदी कहानी को यदि विश्व कथा साहित्य को चुनौती देनी है तो पहले कहानीकारों को पढ़ने की आदत डालनी होगी। एम.ए. हिंदी के पाठ्यक्रम में जो साहित्य पढ़ा है उसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ पढ़ना होगा। अंग्रेजी, फ्रेंच और अफ्रीकी साहित्य की जानकारी हासिल करनी होगी। कहानी को हम गांव में कैद करके नहीं रख सकते और न ही उसे भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ने का औजार बना सकते हैं। कहानी को सीमित करने के सभी प्रयास विफल कर देने चाहिए। कहानी का फलक विशाल है। जीवन में इतने विषय विखरे पड़े हैं कि आपकी हर कहानी आपकी दूसरी कहानी से अलग हो सकती है। यदि रखना होगा कि विचारधारा ऊपर से थोपी जाती है जबकि विचार लेखक के भीतर से निकलता है। हमें कहानी विचार से लिखनी होगी। यदि उस पर विचारधारा थोपी जाएगी तो कहानी एक पैंफलेट बन जाएगी।

क्या लिखने पढ़ने वाले समाज या बुद्धिजीवी वर्ग को किसी खास राजनीतिक विचारधारा के समर्थन या विरोध में खुलकर आना जरूरी लगता है?

देखिए, हिंदी साहित्य का जितना नुकसान विचारधारा के दबाव ने किया है उतना तो कोई साहित्य का घोषित दुश्मन भी नहीं करेगा। लगभग तीन दशकों तक हिंदी साहित्य एक ही विचारधारा के दबाव में एकरस साहित्य छापता रहा। उद्देश्य यही था कि नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, मैनेजर पांडेय, परमानंद श्रीवास्तव जैसे आलोचकों को अपने लेखन से प्रभावित करके कोई सम्मान प्राप्त किया जा सके। मेरा मानना है कि साहित्य को आम आदमी के पक्ष में खड़ा होना पड़ेगा। हिंदी साहित्यकार को हारे हुए इनसान का दर्द समझने के लिए किसी विचारधारा का मोहताज नहीं होना चाहिए। यदि लेखक संवेदनशील हैं तो उसकी कलम स्वयंमेव ही शोषित के दर्द को अपने पन्नों पर दिखाएंगी और उसकी लड़ाई लड़ती दिखाई देगी। हिंदी में दक्षिणपंथ का साहित्य जैसी कोई वस्तु तो कहीं है नहीं। पहले साहित्य होता था और फिर आ गया वामपंथी साहित्य। उनके मठाधीशों का कहना है कि या तो आप हमारे साथ हैं वरना आर.एस.एस. के साथ हैं। क्यों भाई मैं इन दो धुरों के कहीं बीच अलग से क्यों नहीं हो सकता। क्या आम आदमी केवल चीन और रूस में होता है? मुझे उस आम आदमी का दर्द समझने के लिए कार्ल मार्क्स को पढ़ना क्यों जरूरी है। यदि वामपंथी अपने खुदा के लिए देश के बाहर देखता है तो वह भारतीय आम आदमी के दर्द को समझ कैसे पाएगा।

क्या कारण है कि आपकी अनेक कहानियों का विषय मृत्यु है। क्या यह मात्र एक संयोग है... आपका प्रिय विषय है या फिर मृत्यु से आपके जीवनानुभव जुड़े हुए हैं?

मृत्यु मुझे फैसिनेट करती है। उसका रहस्य मुझे बेचैन करता है। मृत्यु मुझे डराती भी है, हैरान

भी करती है और कुछ जानने को मजबूर भी। मैं मृत्यु के साथ खिलवाड़ भी करता हूं तो उसका मजाक उड़ाने में भी नहीं चूकता। मेरे लिए मृत्यु उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना कि जीवन। जैसे जीवन के तमाम रहस्य कोई नहीं पता लगा सकता उससे कहीं अधिक कठिन है मृत्यु को समझ पाना। कभी लगता है कि मृत्यु अंत है तो कभी मध्यांतर... कभी गहरा काला सन्नाटा है तो कहीं कोलाहल। मैंने अपने 11 साल के भांजे की मौत देखी है तो पिता और पत्नी की भी। मेरे काम पर मेरे सामने एक यात्री ने दम तोड़ दिया। इन मौतों के बाद कई कई दिन सो नहीं पाया... बस सोचता रहा. ..। शायद कहीं मौत को चुनौती देने में भी एक विचित्र किस्म के आनंद की अनुभूति होती है। मौत से जुड़ी पहली कहानी शायद कड़ियां थीं जब दादा जी अपने पोते को किए वादे पूरे किए बिना ही गुजर जाते हैं। दादा ने अपने पोते को एक साइकिल और एक घड़ी दिलवाने का वादा किया था। पोता अपने दादा की चिंता से सवाल करता है, 'आप कैसे मर सकते हैं दादाजी, आप तो मेरे देनदार हैं।' और फिर जलती हुई चिता से एक साइकिल निकलती है। उस साइकिल का एक पहिया घड़ी बन जाता है और दूसरा पिता का मुंडा हुआ सिर और दोनों पहिए घूमने लगते हैं। तब से आज तक मृत्यु के बहुत से रूप देखे हैं, महसूस किए हैं और लिखे हैं।

तेजेंद्र जी, प्रवासी कहानी आज अपना एक मुकाम बना चुकी है। वे कौन से तत्व हैं जो प्रवासी कहानी को दूसरी कहानियों से पृथक करते हैं?

यह सही है कि प्रवासी कहानी ने पिछले करीब बीस वर्षों में एक नया मुकाम हासिल किया है- खास तौर से जब से ब्रिटेन और अमेरिका में हिंदी साहित्य ने अपनी जड़ें जमानी शुरू की हैं। क्या है कि पहले जब हम प्रवासी साहित्य की बात करते थे तो हमारा दायरा जहाजी प्रवासियों तक ही सीमित रहता था। मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी और त्रिनिदाद के अलावा हम कहीं और के प्रवासी साहित्य के बारे में सोच भी नहीं पाते थे। जबसे पश्चिमी देशों में हिंदी साहित्य की रचना शुरू हुई तो हमने पाया कि उनका संघर्ष जहाजी प्रवासियों से एकदम अलग है। यहां भी जो 60 और 70 के दशक में हाथ का काम करने वाले प्रवासी आए उनके मुकाबले बाद के पढ़े लिखे प्रवासियों के संघर्ष का रूप एकदम भिन्न है। महेन्द्र भल्ला के उपन्यास पूरी शिद्धत के साथ यूनाइटेड किंगडम में बसे भारतीयों की समस्याओं का चित्रण करता है। महेन्द्र भल्ला ने अपने उपन्यास में अनिवासी भारतीयों की मानसिकता, यूनाइटेड किंगडम में मौजूद रंग भेद की नीतियां और भारतीय मूल के लोगों के प्रति अमानवीय व्यवहार का बहुत खूबसूरत चित्रण किया है। उपन्यास बिना किसी अति के दर्शाता है कि ब्रितानी पुलिस, आम श्वेत नागरिक या अधिकारी का व्यवहार एक आम भारतीय के प्रति कितना क्रूर हो सकता है। उपन्यास के नायक के एक श्वेत महिला के साथ शारीरिक संबंध भी उसे एक विचित्र प्रकार की हीनता से भर देते हैं मगर प्रवासी हिंदी कहानी वहां से भी बहुत आगे बढ़ गई है। अब आपको प्रवासी कहानी में लेखक के अपनाए हुए देश की समस्याएं, सामाजिक रंग ढंग, समाज की संरचना, वहां की राजनीतिक सोच दिखाई देते हैं। आप प्रवासी कहानी को भारत की तरह वामपंथ या दक्षिणपंथ में नहीं बांट सकती हैं। अब तो अमेरिका और ब्रिटेन की कहानी में इतना अंतर है कि दोनों को प्रवासी कहानी कह पाना शायद संभव न हो सके। यह एक वैश्विक रूप मिला है हिंदी कहानी को जिसमें भारत और लेखक का अपनाया हुआ मुल्क साथ-साथ दिखाई देते हैं।

आप क्या मानते हैं कि हिंदी कविता कहानी उपन्यास, नाटक और आलोचना में भविष्य किसका है?

मुझे लगता है कि भविष्य कहानी और उपन्यास का ही है। कविता में से कवित्व गायब होने के बाद से आम पाठक कविता से कट गया है। कविता में विचार प्रमुख हो गया है और उसमें केवल एक ही रस बाकी रह गया है, आक्रोश जबकि कहानी में कहानीपन वापस आया है। हम विदेश में बैठे कहानी लिख रहे हैं और हमें भारत से ई-मेल के माध्यम से जब छात्र सूचित करते हैं कि हमारी कहानियों पर एम.फिल. का शोध पत्र या फिर सीधे शोध ही कर रहे हैं तो महसूस होता है कि कहानी युवा पीढ़ी तक पहुंच रही है। ‘हंस’, ‘कथादेश’, ‘पाखी’, ‘लमही’, ‘कथाक्रम’ जैसी बहुत सी पत्रिकाएं कहानी को लेकर गंभीर काम कर रही हैं। फिर आज का समाज लॉजिक में विश्वास करता है। कहानी में उसे अपने जीवन से दो चार होने का मौका मिलता है। भारत के कहानीकारों से तो आप सब परिचित हैं ही, यहां विदेश में भी बहुत से नाम कहानी लेखन में महत्वपूर्ण हो गए हैं। कहानी और उपन्यास रेलगाड़ी के डिब्बे में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हुए भी पढ़े जाते हैं और यह उनकी लंबी उम्र का रहस्य भी है।

हिंदी साहित्य के लंबे ऐतिहासिक वितान पर यदि दृष्टि डालें तो पाते हैं कि दीर्घकाल तक स्त्रियों में एक गहन चुप्पी बनी रही। भक्तिकाल में आकर मीरा और आधुनिक काल में महादेवी वर्मा ने धीरे-धीरे इस चुप्पी को तोड़ा। इतने लंबे समय तक स्त्रियों की इस चुप्पी का आखिर क्या कारण रहा होगा?

लिखने की पहली शर्त है कि आप शिक्षित हों। इस मामले में साहित्य को एलीटिस्ट भी कहा जा सकता है। समाज ने नारी को शिक्षा से एक लंबे अर्से तक दूर रखा। उसकी सीमा घर की चौखट, चूल्हा चौका और पति के बिस्तर तक सीमित थी। नारी के वेद पढ़ने तक पर रोक लगी थी। मीरा और महादेवी भी कोई ऐसा साहित्य नहीं रचती हैं जो कि नारी की स्वतंत्रता को स्थापित करता हो। यह शायद अजीब लगे मगर सत्य तो यह है कि साहित्य में नारी-विमर्श भी पुरुषों द्वारा ही शुरू किया गया। वे पुरुष जो कि दिमागी तौर पर खुले विचारों के थे और जिन्हें नारी की स्थिति पर आपत्ति थी, उन पुरुष लेखकों ने ही नारी के बारे में सोचना और लिखना शुरू किया। महिला लेखन तो बहुत बाद की घटना है। जैसे-जैसे आधुनिक काल में नारी घर की चौखट से बाहर स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, नौकरी आदि तक पहुंची तो उसकी समझ में आया कि उसे अपने बारे में लिखना भी है लेकिन समस्या यही है कि स्त्री केवल पुरुष के बराबर हो जाना चाहती है यानी कि पुरुष बनना चाहती है।

क्या आपको लगता है कि साहित्य के किसी गुट में नहीं होने के कारण आपको कोई नुकसान हुआ या उतना महत्व नहीं मिला जितना मिलना चाहिए था ?

यह सच है कि मुझे किसी गुट में शामिल न होने से स्वीकृति मिलने में खासी देर हुई। वामपंथी मुझे संघी मानते हैं और दक्षिणपंथी मुझे वाम से जुड़ा समझते हैं। मैं केवल आम आदमी के जीवन का लेखक हूं। मेरा आम आदमी भारत का भी हो सकता है और ब्रिटेन का भी। मेरी पहली हिंदी कहानी 1980 में प्रकाशित हुई थी। मैं धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, श्री वर्षा, वर्तमान साहित्य, कादंबिनी, कथाबिंब, साक्षात्कार, रचना समय, पाखी और नया ज्ञानोदय आदि

आदि मे प्रकाशित हुआ। मेरी कहानियां अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी, नेपाली, बांगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, कन्नड़ एवं चेक भाषा में अनूदित हुई बल्कि अंग्रेजी, बांगला, पंजाबी, उर्दू और नेपाली में तो कथा संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। विद्यार्थियों ने एम.फिल. और शोध भी किए हैं। मेरी कहानियों पर धर्मवीर भारती, नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, परमानंद श्रीवास्तव, गोपाल राय, असगर वजाहत, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्टा, शंभु गुप्त, पुष्टा भारती, भारत भारद्वाज, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, हरि भटनागर, धीरेंद्र अस्थाना, प्रबोध गोविल, माधव सक्सेना, हरियश राय, मदन कश्यप, शंभु गुप्त, अजय नावरिया, पंकज सुवीर, विजय शर्मा, साधना अग्रवाल, कमलेश कुमारी जैसे आलोचकों एवं साहित्यकारों ने लिखा है। मुझ पर आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं और पत्रिकाओं ने विशेषांक भी निकाले हैं। अब ये बताइए कि इससे ज्यादा तब्जो क्या होती है मगर जिन साहित्यकारों ने मेरा लिखा साहित्य ही नहीं पढ़ा भला वे मुझ पर लिखी आलोचना या समीक्षाएं पढ़ने के लिए कैसे समय निकालेंगे। यह सच है कि तथाकथित मुख्यधारा के पुरोधाओं ने पूरा प्रयास किया है कि मुझ जैसे गुटिवीन लोगों को मान्यता प्राप्त लेखकों की सूची से बाहर रखा जाए... मगर पाठकों और विद्यार्थियों का प्यार उनके आदेश का मोहताज नहीं है।

हिंदी फिल्मों में आपकी गहरी रुचि है और आप फिल्मी गीतों को साहित्य मानने की लगातार वकालत करते रहे हैं। शैलेंद्र के गीतों और आज के गीतों में आप क्या अंतर पाते हैं?

उषाजी, शैलेंद्र का जमाना अलग था। उस जमाने में आइटम सांग नहीं हुआ करते थे। एक प्रतिस्पर्धा रहती थी गीतकारों में कि कौन बेहतर गीत दे सकता है। यदि आप हर गीतकार का किसी एक विषय पर लिखा गीत पसंद करेंगी तो दूसरे गीतकार ने भी उससे बढ़िया या उसके मुकाबले का कुछ लिख दिया होगा। पहले के गीत और संगीत सुनकर इनसान का सिर हिलता था। संगीत में मेलोडी होती थी। आज के संगीत में बीट होती है। इसलिए आज का संगीत सुनकर पैर हिलते हैं। बड़ी से बड़ी हीरोइन भी आइटम नंबर करने का लालच नहीं छोड़ पाती। आज के गीत कहानी को आगे बढ़ाते से नहीं लगते बल्कि जबरदस्ती लादे हुए लगते हैं।

आज भी कुछ निर्देशक ऐसे हैं जो गीतों के जरिए अपनी कहानी को आगे बढ़ाते हैं मगर सच है कि कहीं शब्दों की गुणवत्ता में कमी आ गई है। समस्या यह है कि गीतकार के अलावा इस इंडस्ट्री में सभी गीतकार होते हैं। हर आदमी अपनी राय देने से बाज नहीं आता। क्या हम सोच सकते हैं कि अपने जमाने में कोई निर्माता साहिर को उसके गीत या नज्म के बोल बदलने को कह सके। शैलेंद्र के जमाने में बोल होते थे आजकल साउंड होती है। मगर फिर भी बीच-बीच में कहीं न कहीं से कुछ ऐसा निकल आता है जो दिल को सुकून देता है। जिस तरह आज की फिल्मों की सेल्फ-लाइफ कम हो गई है ठीक वैसा ही कुछ गीतों के साथ भी हुआ है।

हिंदी सिनेमा और हिंदी

ये कहाँ आ गए हम !

राकेश मंजुल

एक बार अमिताभ बच्चन ने अपने पिता हरिवंशराय जी से पूछा कि आखिर उनकी नजर में हिंदी फिल्मों की इस अपार लोकप्रियता की क्या वजह है? प्रश्न कई मायनों में दिलचस्प था। इसलिए और क्योंकि सवाल सिनेमा ने साहित्य से किया था।

कवि बच्चन ने अभिनेता बच्चन को छोटा-सा जवाब दिया कहा-हिंदी फिल्मों में तीन घंटे के दौरान किसी व्यक्ति को जो ‘पोयटिक-जस्टिस’ हासिल होता है दरअसल वही हिंदी फिल्मों की अपार लोकप्रियता का कारण है। ‘पोयटिक जस्टिस’ अर्थात् आदर्श न्याय पर यह शाब्दिक सरलीकरण इस अमूर्त हासिल की व्याख्या के लिए काफी नहीं है। न्याय एक प्रक्रिया है। न्याय हासिल करने की समय सीमा तय कर पाना किसी साधारण मनुष्य के वश में नहीं। वह तो सामाजिक जीवन में अपने प्रश्नों का समाधान चाहता है ताकि रोजमर्रा की जटिल और दुरुह स्थितियों के बीच उसके जीवन की लयात्मकता बरकरार रहे। फिल्म में तीन घंटे का तिलस्मी मनोरंजन उसे इन जटिल प्रश्नों का सहज सामाधान उपलब्ध कराता है। समाधान यदि सामाजिक परिवेश में न्याय संगत है तो दर्शक के तौर पर उसकी आनंद अनुभूति के लिए यह पर्याप्त है। इस लयात्मक समाधान को संप्रेषित करने का माध्यम वही भाषा होती है जो सामाजिक जीवन में उसे लयबद्ध करती है। यह भाषा कोई भी हो सकती है पर यहाँ हमारा सरोकार हिंदी से है।

आधुनिक हिंदी के सवाक सिनेमा से भाषाई संबंध की शताब्दी अभी पूरी नहीं हुई है पर देवनागरी हिंदी का प्रयोग भारत के पहले कथाचित्र राजा हरिशचन्द्र में दादा साहब फाल्के ने 1913 में आरंभ कर दिया था। हिंदी की भूमिका फिल्म में सूत्रधार की थी। दृश्य के आरंभ में प्रदर्शित होने वाले ‘ज्लेकार्ड’ पर प्रस्तुत हो रही घटना के कथासूत्र अंग्रेजी के साथ हिंदी में भी लिखे होते थे। ‘राजा हरिशचन्द्र’ में फाल्के ने ‘ज्लेकार्ड’ पर उर्दू लिपि में कथा संकेत प्रदर्शित नहीं किए जबकि लोकप्रिय मनोरंजन माध्यमों में बीसवीं शताब्दी के आरंभ में उर्दू का दबदबा कायम था। 1896 में ल्यूमियर ब्रदर्स ने मुंबई के वाटसन होटल में छः फिल्मों का प्रदर्शन किया। सिनेमा से माषाई संबंध की संभावना तब भविष्य के गर्भ में थी। फिल्म का दर्शक अचरज और कौतूहल में ढूबा हुआ था। सिनेमा की स्वपनिल वास्तविकता से उसका पहला साक्षात्कार था। किसी दूर देश में फिल्मायी गई घटना का हू-ब-हू करण ही फिल्म की जड़ भाषा थी। भारतीय सामाजिक परिवेश में यह फिल्में ब्रिटिश औद्योगिक उत्पाद भर थीं। इतिहास आख्यान और यथार्थ का कोई देशज बिंब इनमें नहीं था। यह वही दौर था जब देवनागरी हिंदी को सरकारी कामकाज में उर्दू और पर्शियन

से स्थानापन्न करने के लिए आंदोलन चरम पर था। हिंदी अपनी साहित्य समृद्ध लोकभाषाओं की पुख्ता नींव पर खड़ी थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1885 तक उस खड़ी बोली हिंदी को और परिमार्जित व परिष्कृत कर दिया था। इस दौर के मनोरंजन माध्यमों में पारसी रंगमंच सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली था। उसकी भाषा उर्दू थी। यहां तक कि पारसी का व्यावसायिक रंगमंच बहुसंख्यक हिन्दू समाज की मांग पर जिन पौराणिक आख्यानों पर आधारित नाटकों का मंचन करता उनमें उर्दू और फारसी के शब्दों का बाहुल्य होता। भारतेन्दु ने आधुनिक हिंदी के गद्य साहित्य का प्रवर्तन नाटकों से किया। भारतेन्दु के नाटकों की लोकप्रियता ने पारसी रंगमंच के व्यावसायिक लेखकों को खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग करने पर मजबूर कर दिया। ल्यूमियर ब्रदर्स की फिल्मों के प्रदर्शन के ठीक एक साल बाद 1897 में पं. मदन मोहन मालवीय के अदालती कामकाज में देवनागरी को शामिल करने के लिए ब्रिटिश हुक्मत को अदालत और प्राथमिक पाठशालाओं में हिंदी प्रयोग के लिए अध्यर्थना पत्र लिख कर तीन दशकों से चल रहे उर्दू विरोधी अभियान को नई दिशा दे दी। हिंदी अब उर्दू के सामने ताल ठोंक कर खड़ी थी। सर सैयद अहमद ने इसी की आड़ में ‘टू नेशन थ्योरी’ का बीज बोया। सन् 1890 में ब्रिटिश हुक्मरानों ने उर्दू के साथ देवनागरी हिंदी को भी सरकारी कामकाज की भाषा के तौर पर मान्यता दे दी। राष्ट्रीय आंदोलन की राजनीतिक जमीन पर भले ही हिंदी उर्दू आमने-सामने थीं लेकिन मनोरंजन माध्यमों में उनकी गलवाहियाँ बरकरार रहीं। अगले तीन दशकों तक पारसी रंगमंच और मूक सिनेमा हिंदी और उर्दू के बीच इस रचना संतुलन का साक्षी रहा। पारसी रंगमंच पर शेक्सपियर के नाट्य रूपांतरों की धमक धीमी पड़ने लगी। आगाहश्व ‘कश्मीरी’, नारायण प्रसाद ‘बेताब’, राधे श्याम कथावाचक’ सरीखे लेखकों ने भारतीय पौराणिक आख्यानों और सामाजिक समस्याओं को अपना विषय बनाया। 1913 में फाल्के की राजा हरिश्चन्द्र के बाद मूक सिनेमा युग में भारतीय इतिहास और सामाजिक समस्याओं पर लगभग 1350 फिल्में बनीं। इन मूक फिल्मों में ‘प्लेकार्ड’ पर कथासूत्र हिंदी और उर्दू के अतिरिक्त क्षेत्रीय भाषाओं गुजराती, मराठी और बांग्ला में लिखे जाने लगे। फिल्मों की प्रचार सामग्री में देवनागरी हिंदी का इस्तेमाल बढ़ा। सिनेमा के भाषाई सरोकार की तस्वीर 1931 में पहली सवाक् फिल्म ‘आलम आरा’ के प्रदर्शन के साथ बदलना शुरू हुई। ‘आलमआरा’ से हिंदी सिनेमा में ‘संवाद युग’ का आरंभ हुआ।

‘कोस-कोस पर पानी बदले चार कोस पर बानी वाली’ हिंदी पट्टी में सिनेमा के ‘संवाद युग’ ने मनोरंजन माध्यम की सामाजिक प्रतिबद्धता को नए आयाम दिए। सिनेमा के तकनीकी विकास को गति मिली साथ ही हिंदी-साहित्य की अन्य लोकप्रिय विधाओं के साथ सिनेमा की प्रत्यक्ष साझेदारी बढ़ी। सिनेमा अभिनय, नृत्य और संगीत के परंपरागत भारतीय मनोरंजन का नया माध्यम बन गया। यह सब अचानक नहीं हुआ। इसकी पृष्ठभूमि में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों की महत्वपूर्ण घटनाएं थीं। मूक सिनेमा के तीन दर्शकीय विकास क्रम में मनोरंजन की दो समान्तर विधाएं समाज में समृद्ध और लोकप्रिय हो रही थीं। एक साहित्य और दूसरा संगीत 1903 से 20 तक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ‘सरस्वती पत्रिका’ के माध्यम से हिंदी में खड़ी बोली के साहित्य को एक सुसंगत आधार दे दिया था। 1902 में गौहर जान ने पहली देसी रिकार्डिंग

के साथ घरानों और दरबारों में कैद संगीत को जनसुलभ कर दिया। फिर अगले दो दशकों में ग्रामाफोन कंपनियों ने इसे गांव गली तक पहुंचाया। 1931 में आलमआरा से आरंभ ‘संवाद युग’ में इन दोनों धाराओं को सिनेमा ने अपने साथ मिलाकर मनोरंजन की नयी त्रिवेणी को प्रवाहमान कर दिया।

कोई भी कला देशकाल परिस्थिति के अनुरूप अपनी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति गढ़ती है। भविष्य के साथ लयबद्ध होने के लिए तत्कालीन सामाजिक प्रतिबद्धताओं में अपनी जड़ें तलाशती है। तभी वह मनुष्य की संवेदना को गहराई से प्रभावित कर सामाजिक व्यवहार का हिस्सा बन पाती है। सिनेमा ने व्यावसायिक छवि के बावजूद हमेशा सामाजिक पक्षधरता को सामने रखा। 1920 से 30 के बीच ‘उत्तर मूक युग’ में इसकी झलक स्पष्ट होने लगी। पौराणिक आख्यानों और इतिहास गाथाओं के अलावा सामाजिक विषयों पर फिल्में बनने लगीं। 1921 में धीरेन्द्र गांगुली की ‘विलायत फेरत’ एक मध्यवर्गीय प्रेम कथा थी तो बाबूराव पेंटर की सवकारी पाश (1925) किसान समस्या पर। इंडो यूरोपियन सहयोग से बनी हिमांशु राय की ‘प्रेम सन्यास’ उर्फ ‘लाइट ऑफ एशिया’ (1925) गौतमबुद्ध के जीवन दर्शन पर थी। बांगला से हिंदी में अनूदित शरतचन्द्र के लोकप्रिय उपन्यास ‘देवदास’ (1928) पर बनी पहली साहित्यिक फिल्म नरेश मित्रा ने निर्देशित की थी। यह सारी फिल्में मूक थीं। पर इनकी किसागोई हिंदी में थी। सिनेमा के ‘संवाद युग’ के साथ फिल्मों में भाषा के नए प्रयोग शुरू हुए। नाटकीय गद्य में गीतों के समावेश ने फिल्मों की अलग भाषा गढ़नी आरंभ की। फिल्म और साहित्य में मुख्य अंतर उसकी भाषा का है। फिल्म की भाषा एक तरह से मूर्त भाषा है। साहित्य में प्रतीकों की व्यवस्था है। फिल्म की भाषा में पेड़ वही है जो दिख रहा है साहित्य में वह कोई भी पेड़ हो सकता है। इसमें जटिलता है। यही कारण है कि फिल्म का दृश्य- श्रव्य माध्यम अपने समय का स्पष्ट व्यक्तव्य अंकित करता है। दृश्य इतिहास का हिस्सा बन जाता है।

सन् 1931 में महात्मा गांधी राजनीतिक जमीन पर सविनय आंदोलन का सूत्रपात कर चुके थे। समाजिक सुधार के तहत अस्पृश्यता के खिलाफ उसका जन-जागरण जारी था। अपने अस्पृश्यता उन्मूलन अभियान के पक्ष में उन्होंने ‘हरिजन’ अखबार का प्रकाशन शुरू कर दिया। हिंदी प्रसार के लिए हिंदी सेवी लामबंद होने लगे। उच्चशिक्षा में हिंदी साहित्य खड़ी बोली के रूप में स्थापित हो चुका था और प्रेमचन्द्र सरीखा प्रसिद्ध लेखक फिल्मों में सक्रिय था। सिनेमा को इसी परिवेश में विकसित होना था। भाषा अब माध्यम नहीं अभिव्यक्ति का विकल्प थी।

मनोरंजन माध्यम से उर्दू को विस्थापित कर पाना इतना आसान नहीं था। गीत के रूप में लोकप्रिय हो रही सिनेमाई कविता उर्दू शायरी को गहरे प्रभाव में थी। संवाद शैली में सिनेमाई गद्य पात्रों की सामाजिक स्थिति के अनुरूप रचा जाने लगा। अब बीसवीं सदी के चौथे दशक में सिनेमा को जन माध्यम बनने के लिए अपनी जुबान तलाशनी थी। भाषा के प्रश्न पर फिर दो खेमे हो गए। एक उर्दू का हिमायती था इसलिए अपनी फिल्मों की भाषा को उसने ‘हिन्दुस्तानी’ कहा। उर्दू के किल्लष्ट शब्दों का प्रयोग करने में उसे कोई परहेज नहीं था। उस दौर की सफल फिल्म कम्पनी ‘न्यू थिएटर्स’ इस हिन्दुस्तानी भाषा की पैरोकार थी। न्यू थिएटर्स में बंगाल के सिनेमा

उद्यमियों का वर्चस्व था। दूसरी तरफ प्रभात फिल्म कम्पनी सिनेमाई हिंदी को अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साथ विकसित करना चाहती थी। यह दूसरी बड़ी फिल्म निर्माण की संस्था थी और इसमें बाबूराव पेंटर, वी. शांताराम वी.जी. दामले और एस. फत्तेलाल सरीखे फिल्मकार थे। भाषा चयन की इस धुंध में भी सिनेमा परंपरागत नाट्य सिद्धान्त की परिधि में आकार ले रहा था। हिंदी के पाते में लोकभाषाओं की समृद्ध अदायगी थी। सामाजिक ताने-बाने में यह लोक भाषाएं पहले से स्वीकृत थीं। 1936 में बनी- न्यू थिएटर्स की फिल्म ‘अछूत कन्या’ के पहले दृश्य में ही नाट्य सैद्धान्तिकी का प्रभाव दिख जाता है। फिल्म के आरंभिक दृश्य में एक गेटमैन रेल आगमन से पहले फाटक बंद करता है। सामने से आ रही तेज रफतार की मोटर गाड़ी को अचानक रुकना पड़ता है। गाड़ी में एक व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ है। दृश्य में इस गेटमैन और मोटर मालिक का संवाद भाषा चयन के नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्त की पुष्टि करता है।

मोटर मालिक - ऐ...फाटक खोल

गेट मैन - फाटक नाय खुल सकै। बारा बजैवाली गाड़ी आय रई है।

मोटर मालिक - (घड़ी देखकर) पर अभी तो बारह नहीं बजे हैं!

गेट मैन - तो यामें मेरो का कसूर है। साएब एक बजे से पहिरे मैं हिरगिज फाटक नया खोलूँगौ।

हिन्दुस्तानी भाषा की पक्षधर ‘न्यू थिएटर्स’ की ‘अछूत कथा’ के इन आरंभिक संवादों में भाषा के आधार पर चरित्र का सामाजिक स्तर स्पष्ट हो जाता है। अभिजात्य वर्ग के मोटर मालिक की भाषा खड़ी बोली हिंदी है, जबकि गेटमैन के संवाद हिंदी की ब्रज क्षेत्र की बोली से प्रभावित हैं। ‘न्यू थिएटर्स’ जो सिनेमा में हिन्दुस्तानी भाषा का हिमायती था वह बोली बानी के इस सामाजिक यथार्थ को नजरअंदाज नहीं कर पाया।

अब एक दृश्य संवाद प्रभात फिल्म कंपनी की फिल्म ‘पड़ोसी’ (1941) से। ग्रामीण परिवेश में एक हिन्दू और मुसलमान पड़ोसी, ठाकुर और मिर्जा का घर। दोनों किसान हैं और लंबे समय से पड़ोसी हैं। खाली समय में साथ शतरंज खेलते हैं।

ठाकुर - आओ मिर्जा-आज बाजी हमारी।

मिर्जा - अजी छोड़ो ऐसी चाल चलूँगा कि सारी चौपड़ी भूल जाओगे।

ठाकुर - अरे तुम्हारी खोपड़ी तो नहीं खराब हो गई मेरा पासा लिए जाते हो, वाह मिर्जा?

मिर्जा हँसते हुए - इन मोहरों की बात ही अजीब है जब तक टोकरी में रहते हैं ऐसे युले मिले रहते हैं कि तमीज करना मुश्किल...मुदा इधर पैतरा बदलकर अखाड़े में उतरे उधर एक-दूसरे के खून के प्यासे बने और लड़ने लगे।

ठेठ ग्रामीण परिवेश में बोले जा रहे यह संवाद खड़ी बोली में हैं। दृश्य की आंतरिक संरचना में एक गांव है पर भाषा में किसी हिंदी लोकशैली की कोई झलक नहीं है।

दरअसल ‘संवाद युग’ के सिनेमा में पहले दो दशकों तक भाषा को लेकर कोई लकीर थी ही नहीं। सिर्फ हिंदी खड़ी बोली थी। लोक-शैलीगत प्रयोग थे जो पटकथा में पात्र के सामाजिक स्तर को निर्धारित करते थे। लोक भाषाओं का प्रयोग तब दैनिक जीवन में था इसलिए इसका

प्रयोग दृश्य में सहज था। उस दौर की फिल्मों का वर्गीकरण भाषा के आधार पर करना उपयुक्त नहीं है। इसे विषय चयन के आधार पर करना अधिक तर्क संगत होगा। ‘संवाद युग’ के पहले दशक में दो धाराएँ स्पष्ट दिखती हैं। एक धारा पारसी थिएटर से प्रभावित शुद्ध व्यावसायिक सिनेमा की है। इस धारा के फिल्मकार आब-ए-ह्यात (1933) अलिफ-लैला (1933) आवारा शहजादा (1933) भोला शिकार (1933) अल हिलाल (1935) बहारे सुलेमानी (1935) सरीखी फिल्में बना रहे थे। इनकी भाषा अपने परिवेश के मुताबिक उर्दू और फारसी थी। 1940 तक ऐसी फिल्में बड़ी तादाद में बनीं। दूसरी धारा में वह फिल्मकार थे जो सामाजिक सरोकारों के लिए प्रतिबद्ध थे। सुबह का सितारा (1932) दुनिया न माने (1937) धर्मात्मा (1935) अछूत कन्या (1936) ऐसे ही फिल्मकारों की फिल्में हैं। वस्तुतः सिनेमा की इस दूसरी धारा ने आगे चलकर हिंदी सिनेमा में भाषाई प्रयोगों को परिष्कृत किया और गैर हिंदी भाषी समाज की हिंदी शैली को सिनेमा की भाषा में जोड़ा।

1947 में स्वतंत्रता के साथ मिले देश के विभाजन ने भारतीय समाज को स्तब्ध कर दिया। शताब्दी के सबसे बड़े मानव विस्थापन पर हिंदी सिनेमा लंबे समय तक मौन रहा। आजादी के बाद गठित संविधान सभा ने भाषाई आधार पर राज्यों के गठन के प्रस्ताव को स्वीकार लिया। अब भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाएँ अपने साहित्य और संस्कृति के साथ देश में संविधान सम्मत थीं। हिंदी इन भाषाओं के बीच पहले से ही संपर्क सेतु बनी हुई थी। साहित्य की भाषा के अलावा अब हिंदी बाजार की भाषा होने के लिए तैयार थी। बाजार की सफल भाषा होने के लिए उसे युवाओं में लोकप्रिय होना जरूरी था। सिनेमा ने हिंदी को इस लक्ष्य तक पहुंचने में मदद की। स्वतंत्रता प्राप्ति से महज तीन महीने पहले प्रदर्शित दिलीप कुमार की फिल्म ‘जुगनू’ उस वर्ष लोकप्रियता के शिखर पर पहुंची। युवाओं के बीच इस फिल्म का एक गीत बहुत ‘पॉपुलर’ हुआ-

वह अपनी याद दिलाने को इक इशक की दुनिया छोड़ गए,
जल्दी में लिपिस्टिक भूल गए रुमाल पुराना छोड़ गए।

सैंतालीस में लिपिस्टिक शब्द ही आधुनिकता का पर्याय था। यह स्पष्ट हो चला था कि हिंदी अब सिनेमा के कंधे पर चढ़कर बाजार की रौनक बनने के लिए तैयार है। मनोरंजन के रास्ते हिंदी को पहली लोकप्रिय उठाल 1950 में रेडियो सीलोन ने दिलाई। सिनेमा में अंतिमिहित गीत संगीत की धारा इस सफलता का माध्यम बनी।

आजादी से पहले अपनी अलहदा और मुकम्मिल पहचान लिए उर्दू साठ का दशक आते-आते हिंदी में समाहित होने लगी। नेहरु युग की लोकतात्रिक व्यवस्था में एक शब्द गढ़ा गया ‘अल्पसंख्यक’। धीरे-धीरे उर्दू इसी विशेष समुदाय के साथ पहचानी जाने लगी। भाषाई चलन में अब दो उर्दू थीं एक फारसी लिपि में लिखी पढ़ी जाने वाली और दूसरी देवनागरी हिंदी के साथ घुली मिली। सिनेमा ने अपनी भाषा को सर्वग्राही बनाने के लिए दूसरी उर्दू को अपनाया। दरअसल अलग सांस्कृतिक पहचान वाली उर्दू को सिनेमा ‘मुस्लिम सोशल’ का नाम देकर अपना बाजार परखना चाहता था। उर्दू के समर्थक फिल्मकार भी इस अवसर को गंवाना नहीं चाहते थे।

1960 में ‘मुगल-ए-आजम’ के प्रदर्शन के साथ यह रास्ता खुला। फिल्म ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर थी। भारत विभाजन के लगभग डेढ़ दशक बाद प्रदर्शित इस फिल्म का आरंभ अविभाजित

भारत के नक्शे से होता है। पाश्व में किया गया वाचन कई अर्थों में महत्वपूर्ण है-

‘मैं हिन्दुस्तान हूँ। हिमालय मेरी सरहदों का निगहबान है। गंगा मेरी पवित्रता की सौगंध। तारीख की इतिहास से मैं अँधेरों और उजालों का साथी हूँ। मेरी खाक पर संगमरमर की चादरों से लिपटी हुई इमारतें यह कह रहीं हैं कि जालिमों ने मुझे लूटा और मेहरबानों ने मुझे संवारा नादानों ने मुझे जंजीरे पहना दीं और मेरे चाहने वालों ने उन्हें काटकर फेंका। मेरे इन चाहने वालों में एक इंसान का नाम जलालुदीन मोहम्मद अकबर था। अकबर ने मुझसे प्यार किया। मजहब और रस्मों-रिवाज की दीवारों से बुलंद होकर इंसान को इंसान से मुहब्बत करना सिखाया और हमेशा के लिए मुझे सीने से लगा लिया।

इस वाचन में निर्देशक के आसिफ ने एक कालखण्ड के माध्यम से उर्दू भाषा और संस्कृति की गरिमा का बयान दर्ज किया है। लोकप्रिय मानस में इतिहास की समझ को इस फिल्म ने नई दिशा दी। इसके बाद मुस्लिम सोशल कही जाने वाली फिल्मों की बाढ़ आ गई। साठ से सत्तर के बीच चौंदहवीं का चांद (1961) मेरे महबूब (1963) बहू-बेगम (1967) मेरे हुजूर (1968) इसी श्रेणी में आने वाली फिल्में थीं। इनकी कथावस्तु में एक संस्कृति विशेष के पराभव की अनुगूंज थी। धीरे-धीरे ऐसी फिल्मों के निर्माण में कमी आने लगी। महबूब की मेंहदी (1971) और पाकीजा (1972) सफल होने के बावजूद एक भाषा से जुड़े विषय का विदा गीत साबित हुई।

साठ का दशक हिंदी साहित्य में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया। हिंदी सिनेमा में भी यह कालखण्ड स्वर्णयुग कहलाता है। साहित्य की सभी विधाओं में इस दशक में नए प्रयोग हुए। नई कहानी और नई कविता आंदोलन ने सिनेमा की रचना प्रक्रिया को गहरे प्रभावित किया। साहित्य में अब लोक भाषाएं अध्ययन का विषय थीं। व्यवहार में खड़ी बोली का प्रचलन बढ़ गया था। सिनेमा ने भी इसी का अनुकरण किया। साठ के दशक से पहले ही फिल्म की मध्यमार्गी धारा 1957-60 खड़ी बोली हिंदी को अपना चुकी थी। पात्रों के सामाजिक परिवेश की दृश्यात्मकता के बावजूद संवाद की भाषा खड़ी बोली ही होती। गुरुदत्त की ‘प्यासा’ 1957 बिमलराय की ‘सुजाता’ 1960 विजय आनंद की ‘गाइड’ (1965) ऐसी ही फिल्मों में शुमार की जाती हैं। दशक के अंत में इसी परंपरा की अगली पीढ़ी ने सिनेमा में साहित्य से प्रेरित आंदोलन ‘समांतर सिनेमा’ के नाम से आरंभ किया। भुवनशोम (1969) और सारा आकाश (1969) इस कड़ी की पहली फिल्में हैं। उपन्यासकार राजेन्द्र यादव की रचना ‘सारा आकाश’ पर बनी इस फिल्म में मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार की जटिलताओं से जूझ रहे युवा दम्पत्ति की कहानी है। फिल्म में कोई भी पात्र अपने भाषाई अतीत से प्रेरित नहीं दिखता। आजादी के बाद अपनी जड़ों से विस्थापित इस नए शहरी मध्य वर्ग की भाषा खड़ी बोली है।

समांतर सिनेमा आंदोलन की दूसरी महत्वपूर्ण फिल्म भुवनशोम है। मृणाल सेन की यह फिल्म राष्ट्रीय फलक पर बदल रहे भाषाई संस्कारों के नए बिंब उकेरती है। इस फिल्म की चारित्रिक संरचना में सेन ने भाषा के अद्भुत बिंब दृश्य के साथ गूंथे हैं। भुवनशोम स्वयं एक बांग्ला भाषी है। रेलवे का बड़ा अफसर है और गुजरात के सुदूर गांव में छुट्टियां बिताने गया है। फिल्म के आरंभिक दृश्य में गुजरात के एक छोटे रेलवे स्टेशन पर भुवनशोम के स्वभाव के विषय में दो सहयोगी

रेलकर्मी चर्चा कर रहे हैं। यह संवाद खड़ी बोली में है। भुवनशोम का गाड़ी से उतरने के बाद उनके साथ भी खड़ी बोली में संवाद होता है। इन संवादों में कोई लोक भाषिक अदायगी भी नहीं है। दूसरे दृश्य में शिकार के लिए बैलगाड़ी में गांव जाते समय भुवनशोम का गाड़ीवान जो विशुद्ध सौराष्ट्र की पृष्ठभूमि से है, फिल्म जंगली का गीत गा रहा है- **चाहे कोई मुझे जंगली कहे, कहता है तो कहता रहे।** इस गीत के माध्यम से निर्देशक गाड़ीवान के हिंदी ज्ञान से दर्शकों को परिचित करा रहा है। साथ ही हिंदी सिनेमा के विस्तार और स्वीकृति को भी इंगित कर रहा है। भुवनशोम जब उससे पूछता है कि बांग्ला जानते हो तो वह अचकचा जाता है। दोनों पात्रों के बीच संवाद में स्थानीय लोक भाषा में प्रचलित शब्दों के प्रति जिज्ञासा है। दूसरी भाषाओं के शब्द भंडार को खंगालने का हिंदी का यह चरित्र इसी फिल्म में देखने को मिलता है।

सामांतर सिनेमा ने पूरे भारतीय फलक को अपने दृश्य विधान में शामिल किया। श्याम बेनेगल, कुमारशाहनी, गौतमघोष, एम.एस.सथ्यू, गोविंद निहलानी, बुद्धिदेवदास गुप्ता की फिल्मों में भारत की सांस्कृतिक वैविध्यता तो दृश्यमान होती है पर उसमें भाषा की लोक चेतना सुनाई नहीं पड़ती। यही कारण है कि यह भाषा संप्रेषणीय तो है पर उसमें लोक चेतना का प्राणतत्व नहीं है। श्याम बेनेगल की महत्वपूर्ण फिल्में ‘अंकुर’ ‘निशान्त’ और ‘मंथन’ हिंदी भाषा का सिनेमा जरूर है पर इनका हिंदी समाज की वास्तविकता से कोई संबंध नहीं है। हां इसकी झलक इन फिल्मों के गीत संगीत में जरूर दिखती है। इन फिल्मों के गीतों की भाषा में वह लोक तत्व जरूर मिलता है। मंथन का शीर्षक गीत इसका सशक्त उदाहरण है। सचाई तो यही है कि सिनेमा के गीतों ने ही खड़ी बोली के गद्य के बीच भाषा की आंचलिकता को सिनेमा में कायम रखा।

साठ के दशक में ही हिंदी साहित्य में ‘रेणु’ ने आंचलिक भाषा का प्रयोग आरंभ किया। इसी से प्रेरित होकर सिनेमा ने खड़ी बोली के वर्चस्व के बीच लोक भाषा की जीवंतता को बनाए रखने का प्रयास किया। ‘गंगा-जमुना’ (1960) और ‘तीसरी कसम’ (1966) इस दौर के सशक्त प्रयोग हैं। ‘तीसरी कसम’ रेणु की कहानी ‘मारे गए गुलफाम’ पर बनी थी।

नेहरु युग के अधोगिक विकास मण्डल ने लोक भाषाओं और खड़ी बोली के बीच दूरी को काफी हद तक बढ़ाया। उस दौर में विकास और वैज्ञानिकता की ललक में लोक की वैशिष्ट्यता को संरक्षित करने का प्रयास किसी माध्यम ने नहीं किया नतीजतन सरकारी योजनाओं में वह संरक्षित होने की जगह सुरक्षित हो गयीं। कोई भी भाषा जब आचार- व्यवहार में शामिल नहीं रहती इतिहास के पाले में ढकेल दी जाती है। हिंदी की लोकभाषाएं इसका सबसे बड़ा प्रमाण हैं।

आठवें दशक में लोकप्रिय व्यावसायिक सिनेमा ने समांतर सिनेमा के कलात्मक घटकों को अपनी रचना प्रक्रिया का हिस्सा बनाया। समांतर फिल्म आंदोलन से दर्शकों का जो नया वर्ग खड़ा हुआ था उसकी रुचि मध्यमार्गी थी। ऋषिकेश मुखर्जी, गुलजार, महेश भट्ट, बासु चटर्जी जैसे फिल्मकारों ने इसी मध्यमार्ग को पोषित किया। खड़ी बोली के प्रति इनका भी आग्रह था। इनमें से ज्यादातर फिल्मकारों का विषय चूंकि महानगरीय जीवन के इर्द-गिर्द था इसलिए लोकभाषा के लिए इनके यहां गुंजाइश भी कम थी। यह जरूर था कि भाषा प्रयोग के प्रति फिल्मकार अधिक सतर्क और संवेदनशील थे। आजादी के बाद राजभाषा के नाम पर जो नई हिंदी पैदा हो रही थी इसकी संप्रेषणीयता

पर कई फिल्मकारों ने फिल्मों के माध्यम से समय-समय पर प्रश्न भी उठाए। ऋषिकेश मुखर्जी की 'चुपके-चुपके' और बासु चटर्जी की 'गोलमाल' सरीखी फिल्में वस्तुतः; सरकारी हिंदी के सामने बड़ा सवाल खड़ा करती हैं। 'संवाद युग' में सिनेमाई भाषा का यह सर्वाधिक सशक्त दौर था। संवाद अदायगी की शैलीगत विशेषताएं नवें दशक के आते-आते दरकने लगीं। इसका मुख्य कारण फिर वही व्यवस्था थी जिसने भाषा संस्कृति की परवाह किए बगैर विकास के नाम पर कुछ सामाजिक परिवर्तन आरोपित कर दिए।

राजीव गांधी ने जब नई सदी में छलांग लगाने की तैयारी करने का फैसला किया तो कंप्यूटर सशक्त उपकरण बनकर उभरा। एक नई तकनीक जिसके लिए भाषा की कोई तैयारी नहीं थी। कंप्यूटर की भाषा हिंदी नहीं अंग्रेजी थी। हिंदी को इस विकास में गतिमान होने के लिए अंग्रेजी से सामंजस्य बिठाना था। व्यावसायिक शिक्षा में भाषा के तौर पर हिंदी पिछड़ने लगीं। हिंदी सिनेमा ने भी हवा के इस रुख को समझा। भाषा और संस्कृति के लिए यह परंपरा और आधुनिकता का संक्रमण काल था। सिनेमा की भाषा अंग्रेजी से दूरी बनाकर अपना सांस्कृतिक अस्तित्व बचाए रखना चाहती थी पर यह संभव नहीं हो सका। भाषा के इसी संक्रमण के साथ सिनेमा मुक्त बाजार व्यवस्था में प्रवेश कर गया। वैश्वीकरण की आहट भाषा की लोक चेतना पर भारी पड़ रही थी। इस हताश और परिवर्तन का सर्वाधिक सशक्त उदाहरण राजश्री प्रोडक्शन का दो फिल्में हैं। एक दशक के अंतराल में बनी इन दोनों फिल्मों की कथावस्तु एक है। आंचलिक जीवन से सराबोर 'नदिया के पार' (1982) और लगभग एक दशक के बाद इसका महानगरीय संस्करण 'हम आपके हैं कौन' (1994)। आंचलिकता को आधुनिकता में सफलता पूर्वक बदलने के हिंदी सिनेमा के इस प्रयास ने भारतीय मनोरंजन में एक नए सिनेमा की शुरुआत की। इसे उत्सवधर्मी सिनेमा या 'डिजाइनर सिनेमा' कहा गया।

उत्सव धर्मी सिनेमा में भाषा का महत्व प्रतीकात्मक था। सिनेमा के समान्तर दूसरे दृश्य माध्यमों ने इसमें बड़ी भूमिका अदा की। अब दर्शक सिर्फ वह नहीं था जो भाषा का रसग्राही था। अब उसके लिए भाषा मनोरंजन के वैश्विक भूगोल में एक सहायक थी। उसे आनंद नहीं प्रसन्नता चाहिए थी। इस अंधी दौड़ में शामिल होने के लिए हिंदी सिनेमा ने सबसे पहले अपने भाषाई संस्कारों का त्याग किया। फरहान अख्तर की फिल्म 'दिल चाहता है' (2001) इस उत्सवधर्मी डिजाइनर सिनेमा की शुरुआती फिल्म है। हिंदी सिनेमा की भाषा 'हिंगलिश' हो गई। वैश्विक पटल पर हिंदी की लोक भाषाएं अब मनोरंजन का एक नमूना भर हैं जो कभी-कभी राजनैतिक हथियार भी बन जाती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. वत्सल निधि प्रकाशन माला : संवित्ति - सं. अङ्गेय'
3. नाट्य शास्त्रम्- सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी
4. अमिताभ के साथ -साक्षात्कार रवि जुल्का
5. अवर फिल्म्स-देयर फिल्म्स - सत्यजीत रे

नए मीडिया ने बदली हिंदी की चाल

राकेश कुमार

परंपरागत मीडिया के विपरीत नया मीडिया एक प्रकार से सभी उपलब्ध संचार माध्यमों का समागम है। इसमें अखबार की तरह टैक्स्ट भी है और रेडियो की तरह ध्वनि भी। टेलीविजन और सिनेमा की तरह दृश्य और ध्वनि दोनों भी इस माध्यम पर हैं। इस तरह यह एक विशिष्ट माध्यम बन जाता है। अखबार की ताकत उसके शब्द होते हैं। रेडियो की ताकत ध्वनि और सिनेमा तथा टेलीविजन की भाषा दृश्य होते हैं। इन्हीं के माध्यम से ये मीडिया आम दर्शक/पाठक/श्रोता से संवाद करते हैं। आज आम आदमी मीडिया का मात्र उपभोक्ता ही नहीं है अपितु वह मीडिया का उत्पादक भी है। वह अपने ब्लॉग, ट्रीटर, फेसबुक, व्हाट्सएप वेबसाइट के माध्यम से अपनी बात रख सकता है। अपने विचारों को लिख सकता है और अपने देखे समाज में चल रहे घटनाक्रम का वह अब मात्र साक्षी नहीं है वह एक पत्रकार की भाँति उसकी रिपोर्टिंग कर सकता है। दूसरी बात यह है कि परंपरागत मीडिया की भाँति वह अब सूचनाओं, समाचारों और मनोरंजन आदि के लिए किसी एक माध्यम का दास नहीं है बल्कि अब उसके सामने पूरी दुनिया खुल गई है। सामान्यतः यह माना जाता है कि भाषा मात्र अभिव्यक्ति का माध्यम होती है परंतु भाषा में उसका समाज, इतिहास, संस्कृति बोलती है। साथ ही साथ उस भाषा के पूर्वाग्रह, मान्यताएं और अँधविश्वास भी बोलते हैं और जब मीडिया को मनुष्य का विस्तार कहा जाता है तो यह कैसे संभव है कि मनुष्य के समाज के विविध रूपों का प्रभाव मीडिया पर न पड़े? नए मीडिया की भाषा ने एक नई चुनौती भी पेश कर दी है। यह चुनौती माध्यम की है। यह माध्यम वर्चुअल माध्यम है। एक आभासी संसार। और जब हम आभासी संसार की बात करते हैं तो बहुत कुछ ऐसा है जिसे वास्तविक होना चाहिए और वह वर्चुअल होकर ही रह जाता है। यह सही है कि आभासी संसार भी वास्तविक संसार का प्रतिबिंब है उसकी परछाई। इसलिए वास्तविक संसार के संघर्ष, चुनौतियां, कठिनाइयां, और क्रूर बर्बर संसार के चित्र वर्चुअल माध्यम में भी अभिव्यक्त हो जाते हैं। वास्तविक संसार की हिंसा, असमानता और असंतोष भी इससे बड़े जनसमुदाय तक पहुंचता है। इस नाते यह माध्यम हमारे समय की नब्ज को पकड़ता है। पर साथ ही साथ यह वर्चुअल माध्यम कहीं न कहीं हमारी संवेदनाओं को भोथरा भी कर रहा है। उदाहरण के लिए फेसबुक या ट्रीटर जैसे माध्यमों पर अक्सर किसी दुखद घटना की सूचना मिल ही जाती है। अनेक लोगों के संसार से विदा होने के समाचार भी मिल जाते हैं। वहां अक्सर यह देखने में आता है कि लोग ‘नमन’, ‘श्रद्धांजलि’ या ‘रिप’ लिखकर आगे बढ़ जाते हैं और अगली

ही पोस्ट में किसी मित्र की शुभ सूचना पर उसे खूब बधाइयां भी देते हैं तो इस प्रकार हमारी संवेदनाएं भी कहीं न कहीं खोखली हो रही हैं। इसी से भाषा के अर्थहीन होने का भय भी व्याप्त है। बहुत समय पहले वरिष्ठ पत्रकार और हिंदी के कवि रघुवीर सहाय ने लिखा था कि ‘भाषा के अनेक प्रकारों पर व्यावसायिक और राजनीतिक कब्जे ने भाषा की रचनात्मकता को अनेक प्रकार से विकृत और कुंठित किया है, नई प्रतिभा को सामाजिक चेतना के विषय में बलपूर्वक अशिक्षित करके मनुष्यों के बीच साझेदारी के संबंध तोड़े हैं और उनकी जगह बनावटी रागात्मकता के नए समझौते आरोपित किए हैं, जो उसके किसी पक्ष को कोई आत्मिक बल नहीं देते। वे प्रत्येक अनुभव को एक सनसनी और प्रत्येक मनुष्य को एक वस्तु बनाते चले जाते हैं। इस ध्वंस-व्यापार का प्रतिष्ठान नई प्रतिभा को लगातार लुभाता और पथप्रब्ल्ट करता रहता है। रचनात्मकता के विरुद्ध इतना बड़ा अभियान आजादी के बाद दासता का पहली बार एकत्र शक्तियों ने चलाया है।’¹ रघुवीर सहाय पत्रकार और साहित्यकार दोनों थे। वे जानते थे कि किस प्रकार मीडिया और राजनीति भाषा के अर्थों को विकृत करते हैं। उसकी अंतर्वस्तु को परिवर्तित कर देते हैं। मीडिया के विस्तार ने एक नई भाषा को जन्म दिया है। भाषा का सवाल इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि भाषा किसी समाज की परंपरा और उसकी संस्कृति और उसकी भावनाओं की वाहक होती है। मीडिया के समकालीन भाषाई खेल पर कई दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। पहला तो हम और तुम वाले लिहाज से देखने पर सामने आता है जब बजट आता है या आर्थिक खबरें प्रसारित होती हैं तो कैसे शब्द प्रयुक्त होते हैं? हमारी अर्थव्यवस्था, हमारा परमाणु कार्यक्रम, हमारा संसेक्स।

इस ‘हमारे’ में क्या वह ग्रामीणों की उपेक्षित आवादी शामिल है जिसका 80 फीसदी मामलों में कहीं उल्लेख नहीं होता ना अखबारों में न रेडियो में और न ही टेलीविजन न्यूज चैनलों पर। यह अलग बात है कि सांप्रदायिक दंगों, नरसंहार या हाल में हुए नंदीग्राम जैसी घटनाएं सामने आ जाए तो बात अलग है।² यहां प्रांजल धर एक महत्वपूर्ण बात कहते हैं कि भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं होती बल्कि उसके जरिए हम किसी समाज के मानस में छिपे पूर्वग्रहों और मान्यताओं को देख सकते हैं जब भी कभी मीडिया की भाषा पर बात होती है तो आम तौर पर अंग्रेजी या हिंदी के विषय में चर्चा कर इतिश्री समझ ली जाती है परंतु भाषा का प्रश्न कहीं इससे अधिक बड़ा है। अकसर हमारे समाज के रूण विचार हमारे शब्दों के जरिए उजागर हो ही जाते हैं। भाषा का सवाल वर्गीय होता है। जब भी कभी भाषा की बात की जाती है या उसमें प्रयुक्त शब्दों पर विचार किया जा किया जाता है तो समझ में आ जाता है कि किसी व्यक्ति को वह शब्द क्यों कहा गया? प्रांजल धर मीडिया की भाषा पर विचार करते हुए कहते हैं ‘कुछ अखबारों में हिंदी की बजाय अंग्रेजी में पेट्रोल, डीजल या संसेक्स लिखा रहता है। कई बार हिंदी अखबारों ने पूरी की पूरी हैंडिंग और लीड ही अंग्रेजी में लगाई है यह भूमंडलीय सोच का परिणाम है जिसके तहत प्रतीकों या स्टेट्स सिंबल ऑफ को राष्ट्रीय की बजाय सार्वभौम बताया जाता है अंतरराष्ट्रीय की बजाए यूनिवर्सल बताया जाता है। सभी देशों और महाद्वीपों के थोड़े-थोड़े तत्त्वों को लेकर वर्चस्व को वैधता प्रदान करने की कोशिश की जाती है।’³ यह कहना उचित ही है कि अंग्रेजी का प्रयोग चाहे वह समाचार पत्रों में हो रेडियो पर टीवी हो या सिनेमा पर हो हमेशा से ही स्टेट्स का प्रतीक रहा है। मीडिया में भाषा का घालमेल हमेशा से रहता है। इसमें हिंदी के लगभग सभी बड़े अखबार और समाचार चैनल शामिल हैं। सबसे बड़ी चिंता की

बात यह है कि भाषा को लेकर यह गंभीरता या उपेक्षा हमारे समाज में स्वीकार्य हो रही है और इसे आम जन की भाषा कह दिया जाता है, परंतु मीडिया का काम सिर्फ खबरों की विश्वसनीयता और सत्यता की गारंटी देना ही नहीं है बल्कि इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना भी आवश्यक है जिसमें किसी वर्ग संप्रदाय अथवा संगठन के प्रति किसी प्रकार का दुराग्रह या पूर्वाग्रह ना हो परंतु ऐसा होता नहीं। सवाल उठता है कि क्या नई तकनीक ने भारतीय भाषाओं और बोलियों के लिए बहुत बड़ा संकट खड़ा कर दिया है? तो इसका उत्तर थोड़ा पेचीदा है। एक तरफ तो यह सच है कि अंग्रेजी के वर्चस्व को इंटरनेट से पोषित नए मीडिया ने बढ़ाया है। यह बात भी सही है कि इसी नए मीडिया और इंटरनेट ने हमें यह ताकत दी है कि हम अपनी बोलियों और भाषाओं को और अधिक लोगों तक पहुंचाएं। रमाकांत अग्निहोत्री कहते हैं- ‘यह तकनीक एक अवसर भी है यदि हम उसका उचित उपयोग कर सकें। ‘अंग्रेजी की व्यापकता को टेक्नोलॉजी से जोड़कर भी देखा जाता है असर दिया जाता है कि कंप्यूटर, इंटरनेट, कॉलसेंटर वगैरह ने अंग्रेजी को बहुत शक्तिशाली बना दिया है और इन चीजों की वजह से अंग्रेजी सारी दुनिया पर छा जाएगी। मैं इसे दूसरी तरह से सोचता हूं कि यह टेक्नोलॉजी ने संभव कर दिया है कि हिंदी बंगाली, तमिल वगैरह ही नहीं बल्कि ब्रज, अवधी, मगही, भोजपुरी, संथाली आदि सभी भाषाएं पहले से कहीं अधिक चलन में आ जाएं। उदाहरण के लिए मान लीजिए आप अवधी या भोजपुरी बोलने वाले हैं और आपको अपनी मां के चार गीत याद हैं। पहले आपके पास ऐसा कोई तरीका नहीं था कि दुनिया में जहां जहां अवधी या भोजपुरी बोलने वाले लोग हैं उन तक अपनी मां के उन गीतों को पहुंचा सकें। अब यह बहुत आसान है आप कंप्यूटर पर उनको लिखिए और एक क्लिक के साथ सारी दुनिया में भेज दीजिए। यही नहीं आप भोजपुरी गीतों की एक वेबसाइट खोल सकते हैं। ऐसी बहुत सारी वेबसाइटें बनाई गई हैं। टेक्नोलॉजी जो अंग्रेजी को फैलाकर दूसरी भाषाओं को दबाती है दूसरी ओर अन्य भाषाओं को सबल व सक्षम भी बनाती है।¹⁴ यह बात भी ध्यान देने वाली है कि तकनीक की भाँति भाषा भी किसी प्रकार के निर्वात का हिस्सा नहीं है वह इसी समाज का हिस्सा है जो अपने नियमों के अनुसार चलता है। बाजार इस सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है।

इसलिए भाषाओं के सामने यह चुनौती तो आएगी ही कि क्या वे बाजार में अन्य प्रभुत्वशाली भाषाओं की प्रतियोगिता में अपनी चुनौती प्रस्तुत कर सकती हैं। देशी भाषाओं के सामने यह चुनौती, गंभीर, वास्तविक और चिंतनीय है। इसलिए ‘सबसे बुरी चीज है भाषाओं को बाजार के भरोसे छोड़ देना। बाजार इसकी चिंता कभी नहीं करेगा कि भाषाएं विकसित हो रही हैं या नष्ट हो रही हैं। व्यापारी तो यह देखेंगे कि उनका माल किस भाषा में बेचने पर ज्यादा बिकता है वे उसी भाषा को अपनाएंगे। विदेशी कंपनियां जानती हैं कि उनके उत्पाद भारत में भारतीय भाषाओं में विज्ञापन करने पर ही बिक सकते हैं लेकिन वे उन्हें भाषा में विज्ञापन करती हैं, जो ज्यादा लोगों के द्वारा बोली जाती हैं। जिन भाषाओं के बोलने वाले कम हैं उन्हें उनकी कोई परवाह नहीं है। वे जिन भारतीय भाषाओं में विज्ञापन करती हैं उन्हें भी अपने लाभ के लिए भ्रष्ट करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता।

मसलन उन्हें न हिंदी से लगाव है ना हिंगिलश से। अगर उनको हिंगिलश से लाभ होता है तो हिंगिलश ही चलाएंगे। अतः भाषाओं को बाजार के भरोसे छोड़ देने की बजाए उन्हें राजकीय संरक्षण, समर्थन और सहायता देना जरूरी है और इसके लिए राज्य को बाजारोन्मुखी बनाने की बजाय ज्यादा

से ज्यादा जनतांत्रिक बनाना जरूरी है।⁵ कुमकुम संगारी का यह मानना उचित लगता है कि भाषाएं जिनके बिना मनुष्य समाज की परिकल्पना भी नहीं की जाती उनके प्रति हमारा समाज बाजार और राजनीति किस प्रकार उदासीन रहते हैं यह नहीं देखा जाता। यदि भाषाएं नष्ट हो गईं तो किस प्रकार संस्कृति जीवित रहेगी क्योंकि संस्कृति सबसे पहले भाषा के माध्यम से ही इसी समाज की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती है। बाजार का अपना एक धर्म है, एक तरीका है चीजों को देखने का। समझने का उपयोग करने का बाजार कभी भी उन वस्तुओं, विचारों अवधारणाओं और आंदोलनों की परवाह नहीं करता जो कि उनके खिलाफ जा सकते हैं। वह यथास्थितिवाद का पोषक होता है। वह परिवर्तन के तमाम प्रयत्नों को स्वीकार नहीं करता। भाषाओं को यदि सामाजिक और सरकारी संरक्षण प्राप्त नहीं होगा तो बाजार भाषाओं को हाशिए पर धकेल देगा। भारतीय संदर्भों में यदि देखें तो मीडिया और विशेषकर नए मीडिया ने भाषाओं के सामने एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत कर दी है। आज बाजार और बड़े कॉरपोरेट भारतीय भाषाओं का प्रयोग तो करते हैं परंतु उनके प्रति उनके व्यवहार विचार और क्रिया में कोई अंतर नहीं आता वह कहीं ना कहीं तथाकथित वैश्विक भाषा अंग्रेजी को ही स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम मीडिया के सिनेमा और टेलीविजन के कलाकारों, निर्देशकों को बात करते देखें तो पाएंगे कि वह हिंदी की बजाय अंग्रेजी में ही बात कर रहे हैं। क्या यह भाषाई साम्राज्यवाद का परिणाम है अथवा उत्तर औपनिवेशिक समाज का आईना है कि आज भी हम अंग्रेजी को अधिक महत्व देते हैं? नए मीडिया की भाषा पर विचार करने से यह बात बहुत साफ हो जाती है कि भले ही नए मीडिया ने हिंदी को बड़े पैमाने पर स्वीकार किया है और नए-नए रूपों में हिंदी को प्रचार प्रसार भी मिल रहा है परंतु एक बड़ी कठिन चुनौती सामने यह आ रही है हिंदी भाषा की लिपि बदल रही है।

इंटरनेट और हिंदी

कंप्यूटर और इंटरनेट ने जब भारत जैसे देशों में कदम रखा तो सबसे पहली समस्या यही आई कि यह माध्यम अंग्रेजी में काम करता था। भारत जैसे देश में जहां पहले तो शिक्षा का स्तर इतना कम था और दूसरा इंग्लिश को लेकर बड़ी समस्या यह थी कि यहां अंग्रेजी जानने समझने वालों लोगों का प्रतिशत कुल आबादी का तीन प्रतिशत से अधिक न था, ऐसे में अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच एक नया मोर्चा खुला। यह माना जाने लगा कि यदि कंप्यूटर और इंटरनेट को जन-जन तक पहुंचाना है तो उसे भारतीय भाषाओं में आना होगा। तकनीक भले ही विभेद करने वाली हो परंतु उसका इस्तेमाल उसी प्रकार करने की आवश्यकता है जैसा भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अंग्रेजी पढ़े-लिखे गांधी-नेहरू-सुभाष और भगत सिंह ने इंग्लिश का किया था। तकनीक की भाषा को समझकर उसे अपनी भाषा-बोली के लिए तैयार करना। इसके लिए यह आवश्यक था कि तकनीक में कुछ इस प्रकार के परिवर्तन किए जाएं कि मूल भाषा भले ही विदेशी हो परंतु मशीन को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाए कि वह हमारी जरूरतों को पूरा करने के लिए तैयार हो सके। यह परिवृद्धि तब का है जब भारत में सूचना क्रांति का बिगुल बजा तो था पर योद्धा पूरे तौर पर मैदान में नहीं उतरे थे। वास्तविक परिवर्तन तब आता है जब इंटरनेट को भारतीय भाषाओं में संवाद प्रशिक्षित करने के सरकारी और गैरसरकारी प्रयास किए जाने शुरू होते हैं। हिंदी फांटस से लेकर हिंदी वर्ड प्रोसेसर जैसे तकनीकी परिवर्तन किए गए।

यद्यपि भारत में कंप्यूटर सन् 1956 में भारतीय सांख्यिकी संस्थान (कोलकाता) में आ गया था और उस समय जापान से बाहर पूरे एशिया का एकमात्र कंप्यूटर था परंतु भारत में कंप्यूटर का विकास उतनी तेजी से नहीं हुआ जितनी तेजी से होना चाहिए था। यह तेजी आती है सन नब्बे के बाद। इंटरनेट ने भी भूमंडलीकरण के साथ भारत में कंप्यूटर के आने के 39 वर्ष बाद 15 अगस्त 1995 को कदम रखा। इसी साल भारत की पहली वेबसाइट ‘इंडिया वर्ल्ड डॉट कॉम’ सामने आई। इसके बाद से तो जैसे सूचना के क्षेत्र में क्रांति ही आ गई। ‘वेब दुनिया’ नाम से नई दुनिया प्रकाशन सपूह (इंदौर) ने वर्ष 1999 में पहला हिंदी समाचार पोर्टल में शुरू किया। भारत में इंटरनेट की पहली चुनौती उन फांट्रस की थी जिसमें वेबसाइट्स की सामग्री को एक ही तरीके से सभी कंप्यूटर्स पर पढ़ा देखा जा सके। वेब दुनिया ने हिंदी के क्षेत्र में इस समस्या को दूर करने के लिए अपनी वेबसाइट पर ही हिंदी के फांट्रस को डाउनलोड करने की सुविधा प्रदान कर दी। इसके साथ ही हिंदी में इंटरनेट पर पढ़ने-लिखने की सुविधा कुछ सीमा तक हल हो गई। इस माध्यम की विशेषता ही है कि यह अंतर्रिक्षात्मक है। अतः यूनिकोड फांट्रस ही यह काम कर सकते थे। आपके कंप्यूटर में कोई विशेष फांट्र न हो पर ऑनलाइन वह इस प्रकार उपलब्ध हो कि कोई भी, कभी भी उसका उपयोग कर सके। ‘इसी का परिणाम है- यूनिकोड कंसोर्शियम। इसमें सभी देशों की सरकारों के प्रतिनिधि शामिल हैं। भारत का सूचना प्रौद्योगिकी विभाग इसका सदस्य है। इस कंसोर्शियम में सभी सदस्य देशों की भाषाओं के मानक कोडों को शामिल किया है। इसमें 8 बिट के बजाय 16 बिट की स्टोरिंग व्यवस्था है। इसलिए इसमें कुल 65536 कैरेक्टर स्टोर किए जा सकते हैं। इसके पहले 128 कैरेक्टर तो अंग्रेजी के आस्की कोड के लिए नियत हैं। यह विश्व की सभी नई व पुरानी भाषाओं के सभी कैरेक्टरों को स्थान मुहैया कराता है। इसके अतिरिक्त इसमें तकनीकी चिह्न और कई अन्य कैरेक्टर भी दिए गए हैं।’⁶ इससे कंप्यूटर एक दूसरे के साथ एक ही भाषा कोड में बात कर सकते हैं। यूनिकोड में हिंदी और दूसरी भाषाओं को भी स्थान मिला हुआ है, इसलिए अब लगभग सभी भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर पर काम किया जा सकता है।

यूनिकोड के आने से जहां एक ओर भाषा की समस्या दूर हुई वहीं हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में टाइपिंग के लिए की-बोर्ड एक समस्या बनकर उभरा क्योंकि की-बोर्ड का स्वरूप अंग्रेजी को ध्यान में रखकर बनाया गया था। यूरोप और विश्व के अनेक देशों की भाषाओं की लिपि रोमन में थी इसलिए इन देशों में कंप्यूटर पर काम करना आसान था परंतु यूनिकोड पर आधारित की-बोर्ड या फिर कुंजीपटल न होने से अनेक प्रकार की समस्याएं थी। इसके लिए एक तरफ हिंदी के लिए यूनिकोड आधारित की बोर्ड बनाना और दूसरा इसके लिए डाटाबेस को तैयार करना था। पिछले एक दशक में हिंदी ने सभी नए संचार माध्यमों पर अपनी छाप छोड़ी है। यूनिकोड ने हिंदी के लिए इंटरनेट के नए द्वार खोल दिए। यूनिकोड के माध्यम से हम हिंदी को विश्व भर में फैला हुआ देखते हैं। अब समय है कि हम हिंदी भाषा में ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों की पाठ्य सामग्री भी मूल में तैयार कर सकें। तकनीकी विशेषज्ञ बालेंदु शर्मा दाधीच मानते हैं कि अब हमें यूनिकोड से आगे पढ़ने की, अब आगे बढ़ने की जरूरत है। यूनिकोड अपने आप में कोई सांस्कृतिक भाषाई, सामाजिक, आर्थिक क्रांति नहीं है और न ही विशिष्टतः भारत पर केंद्रित है वह एक वैश्विक तकनीकी क्रांति है जो घटित हो चुकी है। हिंदी में यूनिकोड का आगमन 10 साल पहले हुआ था उसके बाद विंडोज के

5 ऑपरेटिंग सिस्टम आ चुके हैं। अब हमें एकदम आगे बढ़कर उसके अनुप्रयोगों की संख्या बढ़ाने तथा व्यापक मुद्दों पर ध्यान देना होगा। कंप्यूटर में हिंदी है यह बात सिद्ध हो चुकी है। हिंदी के इस्तेमाल पर सारी ऊर्जा खर्च किए जाने की जरूरत है¹⁷ यह ऊर्जा सही तरह से खर्च भी हुई। सन् 1999 में निकली हिंदी की पहली वेबसाइट से लेकर वर्ष 2016 तक के इन सत्रह वर्षों में हिंदी ने इंटरनेट पर वह सब कुछ उपलब्ध करा लिया है जो कि अभी तक केवल इंग्लिश में उपलब्ध था। लेव मेनोविच ने सही कहा था कि इस माध्यम की गति बहुत तेज है। प्रिंट माध्यम को जिस मुकाम तक पहुंचने में काफी लंबा समय लगा उसे इंटरनेट ने पांच वर्षों में ही प्राप्त कर लिया है¹⁸ एक भाषा समाज को सक्रिय और जीवित रहने के लिए बाजार से लेकर साहित्य तक, इतिहास से लेकर विज्ञान तक, सूचना से लेकर मनोरंजन तक सभी कुछ अपनी भाषा में चाहिए। जब किसी भाषा का उपयोगकर्ता यह पाता है कि उसकी अपनी भाषा में वह सामग्री नहीं है तब ही वह दूसरी भाषा की ओर रुख करता है। यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि भारत जैसे देश में जिसका इतिहास औपनिवेशिक भाषा की दासता से दबा हुआ है वहां पर स्थानीय भाषाओं को उपनिवेशवादी भाषा यानी अंग्रेजी का सहारा लेना ही पड़ता है क्योंकि विभिन्न ज्ञानानुशासनों की भाषा में स्थानीयता नष्ट हो चुकी होती है। यही वजह है कि स्थानीय भाषाओं में काम करना कठिन और श्रमसाध्य होता है। विभिन्न ज्ञानानुशासनों की भाषा अनुवाद की भाषा होती है परंतु अनुवाद हमेशा ही मौलिक चिंतन के लिए प्रेरित नहीं करता। वह मौलिक चिंतन को बाधित अवश्य कर सकता है। हिंदी समाज के सामने यह समस्या बहुत बड़ी बनकर आई है कि जब विभिन्न ज्ञानानुशासनों में हिंदी में सोचने और काम करने वाले चिंतक, विचारक और वैज्ञानिक होंगे ही नहीं तो भाषा का विकास कैसे होगा? इसका जवाब हिंदीभाषी समाज को देना होगा। यह कहना गलत होगा कि पिछले सत्रह वर्षों में हिंदी ने इंटरनेट और नए जन माध्यमों पर कुछ अर्जित ही नहीं किया है। आज हिंदी में कंप्यूटर प्रयोग करने वालों अथवा हिंदीभाषी समाज के लिए कंप्यूटर के संसार में शब्दकोश (हिंदी, हिंदी-इंग्लिश, इंग्लिश-हिंदी), समांतर कोश, बृहत द्विभाषी कोश, अरविंद लैक्सिकन, अनुवाद की सुविधा, पारिभाषिक शब्दावलियां, लिप्यंतरण की सुविधा, यूनिकोड (इनस्क्रिप्ट फोनेटिक, रेमिंगटन, ऑनलाइन ऑफलाइन) यूनिकोड से पूर्व के लगभग प्रत्येक फांट के लिए और उर्दू देवनागरी, उर्दू अथवा बर्मी, देवनागरी, बर्मी इत्यादि जैसे भी) फांट परिवर्तक (कन्चरर), ब्लॉग संकलक (एग्रेगेटर), दृष्टिबाधितों के लिए देवनागरी में तकनीकी सुविधाएं (यूनिकोड से ब्रेल यूनिकोड रूपांतरण) उपलब्ध हैं। हिंदी की लगभग सभी बड़ी पत्र-पत्रिकाएं, चर्चा समूह डिस्कशन फोरम, हिंदी में विकिपीडिया, साहित्य का अद्भुत संग्रह (महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की हिंदी समय डॉटकॉम वेबसाइट तथा कविता कोश द्वारा अमीर खुसरो से अद्यतन लगभग 50 हजार कविताओं का संचयन, व्यक्तिगत प्रयास व नेट पत्रिकाएं ट्रांसलेटेड सर्च व ट्रांसलिट्रेटेड सर्च सुविधा, वाचांतर, वर्तनी शुद्धिकरण यंत्र, ऑनलाइन पुस्तकालय, लगभग 30 हजार स्वतंत्र निःशुल्क ब्लॉग (जिनमें विज्ञान, साहित्य, गणित, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, साहित्य, भौतिकी, इतिहास, खगोलशास्त्र से लेकर बच्चों के विषय, पाककला पर अच्छी खासी सामग्री उपलब्ध है। मुहावरा कोश तथा अत्यंत दुर्लभ पुस्तकों की पूरी की पूरी स्कैन प्रतियां, नए प्रकाशनों की जानकारी, देश विदेश में इंटरनेट के माध्यम से हिंदी पुस्तकों की खरीदारी की व्यवस्था, हिंदी में विज्ञापन जैसी अनेक सुविधाएं सरलता से उपलब्ध हैं।¹⁹ कहना न होगा कि

आज हिंदी विश्व की किसी भी अन्य विकसित भाषा की तरह नए मीडिया के विविध रूपों पर स्वतंत्र रूप से सिर उठाकर उपस्थित है। नए मीडिया की विशेषता है उपयोगकर्ता द्वारा निर्मित कंटेंट। यह विशेषता वैसे तो थोड़ी बहुत मात्रा में अन्य माध्यमों पर भी थी पर नगण्य रूप में। समाचार पत्र, रेडियो, टीवी, सिनेमा किसी में भी सीधे तौर पाठक/दर्शक/श्रोता की कोई भूमिका थी भी नहीं परंतु नए मीडिया ने यह रास्ता खोल दिया। इंटरएक्टिव माध्यम में हिंदी एक ऐसा ही विषय है। वर्ष 2002 में ही यह माना जाने लगा था कि सत्ता अब मीडिया घरानों के हाथ जा चुकी है। ‘हमारे हाथ से सत्ता चली जा चुकी है, नई सत्ता न मैनेजमेंट के पास है या जो डॉट कॉम चला रहे हैं न उसके पास जिन्होंने पूँजी लगाई है, ये सत्ता उस व्यक्ति के हाथ में है जो कुछ सोचना या जानकारी के लिए आ रहा है और वह व्यक्ति हिंदी चाहता है, और किस रूप में चाहता है, इसी रूप का डिफाइन करता है।’¹⁰ उपयोगकर्ता द्वारा कंटेंट का निर्माण एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण परिवर्तन है। उपयोगकर्ता के द्वारा कंटेंट के निर्माण में ब्लॉग सर्वाधिक मुक्त माध्यम है। ब्लॉग ने सभी रचनात्मक चिंतनशील लोगों को लेखन के लिए प्रेरित कर दिया इसलिए हिंदी ब्लॉग ने बहुत कम समय में लोकप्रियता हासिल कर ली। ब्लॉग को पूरी दुनिया भर में परिवर्तन और वैकल्पिक विचारों का मंच माना जाता है। मध्य एशिया में हुए राजनीतिक बदलावों के पीछे ब्लॉग्स जिसे हिंदी में चिट्ठा भी कहा जाता है; की भूमिका किसी से छिपी हुई नहीं है। ब्लॉग्स ने परंपरागत मीडिया के बरक्स आम जन को अपनी बात, अपने ढंग से कहने की आजादी दी। हिंदी ब्लॉग्स ने न केवल हिंदी भाषा को समृद्ध किया बल्कि हिंदी में साहित्य, राजनीति, अर्थव्यवस्था, वैश्वीकरण जैसे मुद्दों पर चर्चा करने के लिए मंच भी उपलब्ध कराया। आज हिंदी ब्लॉग्स का भरा-पूरा संसार है। कविता-कहानी से लेकर साहित्य की अन्य विधाओं के अपने-अपने ब्लॉग्स हैं। ब्लॉग्स पर रचे गए साहित्य को अभी भी आलोचकों ने बहुत कायदे का नहीं माना है परंतु हिंदी ब्लॉग्स ने साहित्य को जनता तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। विशेषतः ऐसे समय में जहां प्रिंट ने साहित्य और संस्कृति की खबरों और विचार-विमर्शों को हाशिए पर ढकेल दिया है ऐसे में हिंदी ब्लॉग्स ने साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ‘जानकीपुल’, ‘असुविधा’, ‘शब्दांकन’, ‘सृजनगाथा’ जैसे सैकड़ों की संख्या में ऐसे ब्लॉग्स हैं जो साहित्य के संसार को आगे बढ़ा रहे हैं। आज हिंदी ही नहीं अन्य भाषाओं में भी फेसबुक और ट्रीटर जैसे माध्यमों ने ब्लॉग्स की जगह ले ली है परंतु ‘इसने कितने अच्छे लेखक, पत्रकार, अनुवादक, तकनीकी कार्यकर्ता, शिक्षक, प्रशिक्षक, कलाकार और एक्टिविस्ट हमें दिए हैं?’¹¹ हिंदी के रचनात्मक संसार में आज संभवतः सभी बड़े रचनाकार नए मीडिया से जुड़े हुए हैं।

आज कोई भी यह नहीं कह सकता कि इंटरनेट पर हिंदी संभव नहीं है। आज लोग धड़ल्ले से मोबाइल मीडिया पर हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं। मोबाइल पर हिंदी एप्स की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। आप प्राचीन वेदों और पुराणों से लेकर प्रेमचंद तक को आसानी से एप्स के माध्यम से पढ़ सकते हैं। सभी ई कॉमर्स की वेबसाइट हैं चाहे वह स्नैपडील हो या फिर फिलपकार्ट सभी अपने मोबाइल एप्स में हिंदी की सुविधा देते हैं ताकि अंग्रेजी भाषा न जानने वाला खरीदार भी इन एप्स के माध्यम से खरीदारी कर सके। इसी तरह से तमाम बड़े समाचार चैनलों की हिंदी वेबसाइट हैं। जिन पर निरंतर नई खबरें पढ़-देख-सुन सकते हैं। यही नहीं ‘आजकल अंतरराष्ट्रीय आईटी कंपनियां

भी हिंदी भाषा से जुड़े अर्थशास्त्र को जानते हुए हिंदी में समाचार पोर्टल का संचालन करने लगे हैं जैसे गूगल, याहू, रेडिफ डॉट कॉम आदि। सरकार की ओर से भी समाचार पोर्टल चलाए जा रहे हैं जिनमें ऑल इंडिया रेडियो की वेबसाइट, डीडी न्यूज, विदेश मंत्रालय, हिंदीभाषी राज्य सरकारों के अपने-अपने समाचार पोर्टल हैं। सरकारी विज्ञप्तियां पत्र सूचना ब्यूरो की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। बिजनेस समाचारों को भी वेब मीडिया पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। बिजनेस समाचार पोर्टल पर आप विशेषज्ञों की राय अपनी समय सुविधा के अनुसार सुन सकते हैं।¹² कहना न होगा कि नए मीडिया ने जहां एक ओर हिंदी के लिए चुनौती प्रस्तुत की है वहाँ हिंदी के विस्तार के नए अवसर भी उपलब्ध कराए हैं।

संदर्भ

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियां : रघुवीर सहाय, निवेदन
 2. समकालीन वैश्विक पत्रकारिता में अखबार : प्रांजल धर, पृष्ठ-73
 3. भाषा और भूमंडलीकरण : संपादक रमेश उपाध्याय- संज्ञा उपाध्याय पृष्ठ-27-28
 4. न्यू मीडिया : इंटरनेट की भाषायी चुनौतियां और उसकी संभावनाएं- आर. अनुराधा, पृष्ठ-87
 5. www.balendu.com
 6. The language of new media author Lev manovich, The MIT Press Cambridge 2001
 7. <https://shodhhindi.wordpress.com/2013/12/07/4->
 8. नए जनसंचार माध्यम और हिंदी, संपादक सुधीश पचौरी, अचला शर्मा, पृष्ठ-32
 9. कादंबिनी, हमारी दुनिया और सोशल मीडिया, बालेंदु शर्मा दाधीच, जून 2016 पृष्ठ-14
 10. वेब मीडिया और हिंदी का वैश्विक परिदृश्य, पृष्ठ-210
-
6. बाजानामा - अमरनाथ शर्मा
-

सोशल मीडिया में हिंदी की शान

कुमार नरेंद्र सिंह

पिछले कुछ वर्षों में सोशल मीडिया परस्पर और सामूहिक संवाद का सबसे बड़ा माध्यम बनकर उभरा है। सूचना निर्माण और उसे साझा करने का मंच भी वही बन गया है। अखबारों और न्यूज चैनलों से मिलने वाली सूचनाएं अब बासी नजर आती हैं। सोशल मीडिया ने समय और दूरी को मिटा दिया है। अब तो आलम यह है कि घटना और उसकी सूचना एक ही समय में देखे जा सकते हैं। इतना ही नहीं, मोबाइल नेटवर्क के कमाल ने सूचना और उसकी साझेदारी की तकनीकों ने धमाल मचा रखा है। सोशल मीडिया के माध्यम से अब हम उन सूचनाओं तक भी आसानी से पहुंच सकते हैं, जो या देर से प्राप्त होती थीं या कई बार ओझल ही रह जाती थीं।

आखिर सोशल मीडिया है क्या? यूं तो सोशल मीडिया का अभी तक कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं गढ़ी जा सकी है, लेकिन यदि समान्य समझ के हिसाब से और समान्य शैली में कहा जाए, तो सोशल मीडिया शब्द एक छाते के समान है, जिसके अंतर्गत लोगों के बीच सामाजिक संवाद या मेलजोल बढ़ाने के उद्देश्य से काम करने वाली इंटरनेट आधारित साइट्स और सेवाएं शामिल हैं। सोशल मीडिया लोगों के अंतरवैयक्तिक संवाद का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

सोशल मीडिया के वर्तमान स्वरूप का विकास बुलेटिन बोर्ड सिस्टम (बीबीएस), यूजनेट और इंटरनेट रिले वार्तालाप के रूप में अस्सी के दशक से शुरू हुआ। ठीक है कि इन्हें सोशल मीडिया के रूप में उद्धृत नहीं किया जाता, लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि वर्तमान सोशल मीडिया के वही जनक हैं। आज जिसे विशिष्ट रूप से सोशल मीडिया कहा जाता है, वह नब्बे के दशक में अस्तित्व में आए उपकरणों की शृंखला से संबंधित है। वर्ष 1995 में प्रकट होनेवाले ऐसे साइट्स में ई-बै का नाम शामिल है। इसी तरह 1997 में वेब लॉग सामने आया, जिसका नामकरण जॉन बर्गर ने किया। बाद में पीटर मर्होल्ज ने छोटा करके इसे ब्लॉग कर दिया। बहरहाल, जिन सेवा संस्थाओं ने इन नामों का इस्तेमाल किया, वे लाइव जॉर्नल और ब्लॉगर डॉट कॉम के आने के साथ ही सामने आए। इसके बाद 2003 में इंटरनेट की दुनिया में स्काइप और वर्ल्ड प्रेस ने कदम रखा। साल भर बाद ही यानी 2004 में फेसबुक का प्रारंभ हुआ, जबकि 2005 में यूट्यूब और 2006 में ट्वीटर की शुरुआत हुई। सोशल मीडिया के तमाम साइट्स में से आज फेसबुक और ट्वीटर का सबसे ज्यादा इस्तेमाल होता है। इन माध्यमों का इतनी जल्दी लोकप्रय होने का सबसे बड़ा कारण यह था कि इनमें शब्दों के साथ-साथ श्रव्य-दृश्य (Audio & visual) भी संभव था। उपयोगकर्ताओं की रुचि

के तमाम अवयव इनमें अंतर्निहित हैं। अब उपयोगकर्ता न केवल दूसरे का वीडियो देख सकते थे, बल्कि स्वयं उसका निर्माण करने के साथ ही उसे बड़ी आसानी से शेयर भी कर सकते थे। सोशल मीडिया के इन स्वरूपों के अस्तित्व में आने के बाद उपयोगकर्ताओं के लिए मेलजोल और संवाद का एक ऐसा वितान खुल गया, जहां दूरी सिमटकर मोबाइल के ऐप में समा गयी। दूरस्थ स्थानों पर रहने वाले परिजनों और दोस्तों से रोज-रोज मिलना संभव हो गया। अब हर उपयोगकर्ता अपने रोज-रोज की गतिविधियों से हर किसी को अवगत करा सकता था। फेसबुक और व्हाट्सऐप ने संवाद को चमत्कारिक ढंग से आसान बना दिया है। अब सोशल मीडिया टेक्स्ट से निकल कर ऑडियो-विजुअल की दुनिया में पहुंचकर और भी रोचक हो गया है।

यूं तो सोशल मीडिया में सबसे ज्यादा अंग्रेजी का ही इस्तेमाल होता है, लेकिन फ्रेंच, जर्मन और स्पेनिश जैसी अन्य भाषाओं की भी सोशल मीडिया पर शानदार उपस्थिति है। जहां तक हिंदी की बात है, तो वह निश्चित रूप से भारत के सोशल मीडिया में अग्रणी स्थान रखती है। अगर कहा जाए कि हिंदी भारतीय सोशल मीडिया की रानी है, तो शायद गलत नहीं होगा। ऐसा तब है, जब हिंदी क्षेत्रों की जनता की इंटरनेट तक अपेक्षित पहुंच नहीं है। सोशल नेटवर्किंग साइट ने हिंदी पोर्टल की शुरुआत 2009 में की। इसके पहले 2007 में गूगल ने हिंदी ट्रांसलेटर जारी किया था। ऐसा नहीं है कि उसके पहले हिंदी में ट्रॉफी नहीं किया जा सकता था, लेकिन तब वह जरा कठिन था, क्योंकि उसके लिए गूगल के ट्रांसलिटरेटिंग टूल की मदद से हिंदी फांट में बदलने के बाद उसे ट्रॉफी पर चिपकाना पड़ता था। इसमें समय तो ज्यादा लगता ही था, उपयोगकर्ता के लिए अंग्रेजी जानना भी जरूरी था।

सोशल मीडिया में हिंदी फांट्स और ऐप्स की उपस्थिति ने हिंदी को पंख लगा दिए। स्थिति यह है कि अंग्रेजी जानने वाले लोग भी आज हिंदी में ही लिखना पसंद करते हैं। सोशल मीडिया पर हिंदी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं की उपस्थिति भी बढ़ रही है। सच तो यह है कि स्थानीय भाषा ही भारतीयों की पहली पसंद है। सोशलबैकर्स नामक शोध संस्थान के एक अध्ययन की रिपोर्ट बताती है कि फेसबुक उपयोगकर्ता के लिहाज से अमेरिका और इंडोनेशिया के बाद तीसरा स्थान भारत का है। फेसबुक के अलावा भारतीय ट्रॉफी, इंस्टाग्राम, व्हाट्सऐप आदि जैसे अन्य सोशल साइट्स का इस्तेमाल भी खूब करते हैं और उनमें लगातार इजाफा भी हो रहा है। शहरों की कौन कहे, अब तो ग्रामीण इलाकों में भी सोशल मीडिया की लोकप्रियता का ग्राफ चढ़ने लगा है। सोशल मीडिया में अपनी उपस्थिति से अब वे शहरी उपयोगकर्ताओं से स्पर्धा कर रहे हैं और कई बार तो उनसे आगे भी निकल जाते हैं।

सोशल मीडिया पर सक्रिय हुए हिंदी क्षेत्र के इन नए लोगों (युवा-युवतियों की संख्या ज्यादा है) की संवाद की भाषा अंग्रेजी नहीं, बल्कि हिंदी और उसकी बोलियां हैं। हिंदी के बढ़ते इस्तेमाल का अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि अब महाराष्ट्र और गुजरात जैसे अहिंदी प्रदेशों के लोग भी अंग्रेजी नहीं, हिंदी को प्राथमिकता देते हैं। पूर्वोत्तर और दक्षिण के राज्यों के लोग भी अपनी भाषा में ही चैटिंग करते हैं। जहां तक सोशल मीडिया की बात है, तो हिंदी के आगे भारत की अन्य भाषाएं काफी पीछे हैं लेकिन इसके साथ यह भी सच है कि सोशल मीडिया में हिंदी का प्रयोग करनेवाले उपयोगकर्ताओं की संख्या भले ही ज्यादा हो इसके बावजूद आबादी के अनुपात में वह

तमिल से पीछे है। जहां, 42 प्रतिशत तमिल अपनी भाषा का इस्तेमाल करते हैं, वहीं हिंदी के 39 प्रतिशत, कन्नड़ के 37 प्रतिशत, मराठी व बंगाली के 34 प्रतिशत, तेलुगु के 31 प्रतिशत, गुजराती और मलयालम के 28 प्रतिशत लोग अपनी भाषा में संवाद करते हैं।

जिस तरह टेलीविजन घर का एक अपरिहार्य हिस्सा हो गया है, उसी तरह अब इंटरनेट उसका स्थान ले रहा है और उसका विकल्प बनने की राह पर तेजी से अग्रसर है। आज कंप्यूटर के अनेक विशेषज्ञ, उद्यमी और स्वयंसेवी संस्थाएं दूर-दराज के गांवों में साइबर कैफे खोल रखे हैं और खोल रहे हैं। ये साइबर कैफे ग्रामीण जनसंख्या को कंप्यूटर से परिचित होने से लेकर उसमें सिद्धहस्त होने तक का प्रशिक्षण देने का काम कर रहे हैं। उपयोगकर्ताओं की इस बढ़ती संख्या ने गूगल, फेसबुक, ट्वीटर आदि के लिए एक बड़ा बाजार भी मुहैया करा दिया है। ऐसे में उनके लिए हिंदी को अनदेखा करना संभव नहीं रह गया है। अकारण नहीं कि इन सभी उपकरण हिंदी में सेवा प्रदान कर रहे हैं। ग्रामीण इलाकों के साइबर कैफे एक तरह से प्रशिक्षण केंद्र का काम करते हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि आज भी हमारे देश की संपर्क भाषा अंग्रेजी ही है। अमेरिका के बाद भारत ही वह दूसरा देश है, जहां अंग्रेजी जानने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है। भारत में अंग्रेजी जानने वालों की संख्या 12.5 करोड़ है। लेकिन यदि सभी भारतीय भाषाओं की इंटरनेट पर बढ़ती उपस्थिति पर नजर डालें तो साफ दिखायी देता है कि वे अंग्रेजी में सेंध लगाने लगे हैं। हाल ही में मैनेजमेंट कंसल्टेंसी एमपीएमजी इंडिया तथा गूगल द्वारा में सम्मिलित रूप से किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि लगभग 70 प्रतिशत भारतीय डिजिटल कंटेंट के मामले में अंग्रेजी के बनिस्पत स्थानीय भाषा के कंटेंट पर ज्यादा विश्वास करते हैं।

आज हिंदी में ब्लॉग लिखना सबसे लोकप्रिय हो चुका है। भारत के हिंदी प्रदेशों के अलावा गुजरात और महाराष्ट्र समेत विदेशों में रह रहे भारतीय लोग भी हिंदी में ब्लॉग लिख रहे हैं। एक आकलन के अनुसार इस समय हिंदी में लगभग चार लाख ब्लॉग्स हैं, जिनमें लाख तो नियमित रूप से सूचना देने का काम कर रहे हैं लेकिन इतनी संख्या होने के बावजूद हिंदी ब्लॉग्स की विषय-वस्तु नें वह विविधता दिखायी नहीं देती, जो अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषाओं में दिखायी देती है। आधे से ज्यादा हिंदी ब्लॉग्स साहित्य, संस्कृति और धर्म से संबंधित हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है अधिकांश हिंदीभाषी पारंपारिक चीजों को पसंद करते हैं और इंटरनेट पर इन्हीं विषयों से संबंधित विषय-वस्तु की खोज करते हैं। कहने का अर्थ यह कि इन विषयों के पाठक आसानी से मिल जाते हैं। अन्य विषय मसलन विज्ञान, समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र, भूगोल, मानव शास्त्र और यहां तक कि दर्शन शास्त्र से संबंधित ब्लॉग्स अपवाद स्वरूप ही दिखायी देते हैं। हिंदी उपयोगकर्ताओं को उपरोक्त विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुधा अंग्रेजी पर ही निर्भर रहना होता है। केवल ब्लॉग्स ही नहीं, फेसबुक, ट्वीटर, इंस्टाग्राम, व्हाट्सऐप आदि पर भी बहुधा ऐसे ही विषयों पर सामग्री देखने को मिलती है।

सोशल मीडिया पर हिंदी के साथ एक और भी दिक्कत दिखाई देती है। बहुधा वह प्रतिगामी सोच का प्रतिनिधित्व करते नजर आती है। प्रगतिशीलता उसे ज्यादा नहीं भाती। हिंदी उपयोगकर्ताओं की टिप्पणियों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट देखी जा सकती है कि वे धार्मिक और सामाजिक परंपराओं और यहां तक कि रुढ़ियों तक का समर्थन करते हैं। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह प्रवृत्ति अन्य

भाषा के उपयोगकर्ताओं में नहीं है, लेकिन हिंदीभाषियों में यह ज्यादा मुखरित है। इसके अलावा धर्मनिरपेक्षता का उनका आग्रह भी कमज़ोर नजर आता है। अन्यथा नहीं कि कई बार वे सांप्रदायिकता को हवा देते महसूस होते हैं। देवी-देवताओं, भूत-प्रेत, हवन-पूजन और कर्मकांड से उनका अभी विलगाव नहीं हुआ है। इसके विपरीत भारत की अन्य स्थानीय भाषाओं जैसे- तमिल, तेलुगु, बंगाली, मलयालम या मराठी में रुढ़ियों की पतन गाथा की इबारत देखने को मिलती है।

भारत में सोशल मीडिया के जितने उपयोगकर्ता हैं, उनमें सबसे ज्यादा संख्या उनकी है, जो हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी में भी संवाद करते हैं या करने की क्षमता रखते हैं। केपीएमजी की रिपोर्ट का आकलन है कि 2021 तक हिंदी उपयोगकर्ताओं की संख्या 20 करोड़ से भी ज्यादा हो जाएगी यानी उनकी संख्या कुल भारतीय उपयोगकर्ताओं का 38 प्रतिशत हो जाएगी, जबकि मराठी, बंगाली और तमिल उपयोगकर्ताओं की आबादी क्रमशः 9, 8 और 6 प्रतिशत हो जाएगी। यही कारण है कि आज ऑनलाइन सूचनाओं के लिए हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं में ऐप्स और साइट्स में वृद्धि होती जा रही है। भारतीय भाषाओं में सबसे ज्यादा उपयोगकर्ता हिंदी के हैं, इसलिए ब्लॉगरों की संख्या भी सबसे ज्यादा हिंदी में ही है। लोकप्रिय हिंदी ब्लॉग पोर्टल 'इंडिब्लॉगर' पर जहां वर्ष 2010 तक केवल 350 हिंदी ब्लॉग हुआ करते थे, अब वहां 1,300 हिंदी ब्लॉग उपस्थित हैं। यहां उल्लेखनीय बात यह भी है कि अधिकांश ब्लॉगर्स छोटे शहरों और कस्बों से संबंधित हैं। हिंदी सर्च इंजिन ऐप्स लोगों के लिए किसी वरदान से कम नहीं। हिंदी की अहमियत इसी बात से समझी जा सकती है कि अमिताभ बच्चन और लता मंगेशकर जैसी फिल्मी हस्तियां भी बहुधा हिंदी में ही ट्रीट करती हैं। अगर यह ट्रेंड आगे भी जारी रहता है, तो कहने की आवश्यकता नहीं कि हिंदी सबसे ज्यादा ट्रीट होने वाली एक भाषा के रूप में स्थापित हो जाएगी।

सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति को आसान और प्रभावी ढोनों बना दिया है। इसमें ऐप्स से ज्यादा उपयोगकर्ताओं की सृजनशीलता है। इस सृजनशीलता ने सोशल मीडिया में एक विशेष प्रकार की भाषा की रचना ही कर डाली है। मुख्य रूप से इसके दो प्रकार हैं- परिवर्णी शब्द (Acronym) (कई शब्दों का इस्तेमाल करने के बदले उन शब्दों के शुरू और अंत के अक्षरों से एक नए शब्द की रचना करना) और मीम (meme)। कहा जाए तो ये दो विधाएं सोशल मीडिया की जान हैं। परिवर्णी शब्दों का इस्तेमाल इसलिए शुरू हुआ कि लिखकर बात करने में समय अधिक लगता है। उदाहरण के लिए आजकल LOL शब्द खूब चल रहा है, जिसका पूर्ण स्वरूप लाफ आउट लाउड। यदि किसी भी व्यक्ति पोस्ट विचित्र या हास्यपूर्ण लगता है, तो वह यह कहने के बदले कि उसे बहुत हँसी आई, केवल LOL लिख देता है। पोस्ट लिखने वाला भी जवाबी पोस्ट डालने वाले की बात आसानी से समझ जाता है। दुनिया की कई अन्य भाषाओं ने भी 'लोल' के लिए शब्द विकसित कर लिए हैं। उदाहरण के लिए रूसी भाषा में LOL के लिए XAXA, स्पेनिश में JAJAJA और जापानी में एक w या दो ww लिखते हैं। कई अन्य भाषाभाषी तो LOL के लिए केवल अंकों का इस्तेमाल करने लगे हैं, जैसे थाईलैंड में 555 लिखते हैं। हिंदी भाषा में अभी तक ऐसा नहीं हो पाया है। जाहिर है कि इसके कारक भी होंगे। प्रत्यक्ष रूप से इसके दो कारण नजर आते हैं। पहला तो यह कि किसी भाषा में ऑनलाइन विषय-वस्तु के निर्माण और उसे प्रोत्साहित करने के लिए संपर्क भाषा (Lingua Franca) का होना जरूरी है। अंग्रेजी के अलावा चीन, रूस और थाईलैंड के पास ऐसी भाषा है,

इसलिए वे एक्रोनिम का विकास करने में सक्षम हुए हैं। दूसरा कारक है उस देश के लोगों की इंटरनेट साक्षरता। जहां तक हिंदी की बात है, तो ये दोनों ही कारक उसके दामन से दूर हैं।

सोशल मीडिया में आजकल मीम का जलवा है। यदि कहा जाए कि सोशल मीडिया पर आज सबसे ज्यादा लोकप्रिय और प्रभावी क्या है, तो इसका उत्तर निश्चित ही मीम होगा। मीम क्या है? मीम ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार मीम का मतलब संस्कृति के एक तत्व या व्यवहार का एक सिस्टम है, जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास नकल के जरिए पहुंचता है। यह एक छवि, वीडियो, लेख का एक टुकड़ा आदि होता है और जो विशिष्ट रूप से हास्यजनक होता है। मीम बनाने वाले और साझा करने वाले इसे बड़ी तेजी से लोकप्रिय बना देते हैं। दिलचस्प है कि साझा करने वाला हर अगला व्यक्ति उसमें कुछ जोड़ देता है, जिसके चलते उसकी ताजगी बनी रहती है। मीम की रचना में फोटो, वीडियो या शब्द वास्तविक होते हैं, लेकिन सोशल मीडिया पर उसे मजाक या व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मीम के मामले में स्थानीय भाषाएं ज्यादा लोकप्रिय और असरकारी हैं। सोशल मीडिया पर प्रचलित मीम्स को देखकर भी इसकी लोकप्रियता और असर का अंदाजा लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए पप्पू पास हो गया, विकास पगला गया है (यह मूल गुजराती 'विकास गांडो थ्यो छे' का हिंदी अनुवाद है, लेकिन अत्यंत लोकप्रिय है), सोनम गुप्ता बेवफा है आदि मीम्स हैं। सोशल मीडिया में व्यंग्य और हास्य का सबसे शक्तिशाली और प्रभावशाली ढूल है। यह एक ऐसी कला है, जो सबको आईना दिखती है। चूंकि सोशल मीडिया की रचना और उसके इस्तेमाल के साथ-साथ उसे समझना भी आसान होता है। सच तो यह है कि आज हिंदी मीम्स भारत के सांस्कृतिक दस्तावेजीकरण का सबसे बड़ा वाहक बन गया है।

यह सच है कि हिंदी अब भी भारत की संपर्क भाषा नहीं बन सकी है। ज्यादा से ज्यादा हिंदी उत्तर और मध्य भारत की ही संपर्क भाषा है। अन्य राज्य के लोगों से संवाद का माध्यम अंग्रेजी ही है, क्योंकि हर राज्य की अपनी-अपनी भाषा है। यही हाल हमारे इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या का भी है। इंटरनेट की बात कौन करे, आज भी हिंदी प्रदेश के अधिकांश लोगों की पहुंच कंप्यूटर तक नहीं है। सोशल मीडिया पर हिंदी की हनक हमेशा बनी रहेगी, क्योंकि एक बहुत बड़ी आबादी यह भाषा बोलती है, पढ़ती-लिखती है और उससे भी ज्यादा बड़ी आबादी हिंदी समझती है। कोई भी सेवा प्रदान करने वाली इकाई इतनी बड़ी जनसंख्या को नजरअंदाज नहीं कर सकती, क्योंकि यह उसके लिए आत्महत्या के समान होगा। बहरहाल, हिंदी को बढ़ाने के लिए जरूरी है कि इसे व्यापार की भाषा बनायी जाए और साथ-साथ मनोरंजन के क्षेत्र में रचनात्मकता पर जोर दिया जाए। कहते हैं कि वर्तमान ही भविष्य तैयार करता है, तो इस मायने में हम आशान्वित हो सकते हैं कि हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि इसका वर्तमान चमक रहा है।

हिंदी वेब पत्रिकाएँ : अब पाठकों की मुट्ठी में

वशिनी शर्मा

इस आपा-धापी और भागती-दौड़ती जिंदगी में सभी के पास समय की कमी तो है ही साथ ही धैर्य भी कम हो गया है। आज पत्रिका खरीदकर पढ़ने की आदत भी बदलती जा रही है क्योंकि इंटरनेट पर अधिकांश स्तरीय ऑनलाइन पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं जिसमें राजनीति, साहित्य, विज्ञान, खेल फिल्म सभी विषयों पर स्तरीय लेख हैं और पुराने अंक भी आसानी से पढ़े जा सकते हैं। हिंदी की अनेक पत्रिकाएँ हैं जो एक स्तरीय सामग्री संयोजित कर पाठकों तक ला रही हैं। इंटरनेट पर हिंदी सामग्री की संख्या और स्तर दोनों ही प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

एक समय था किताबें, पत्र-पत्रिकाएँ आदमी की अच्छी दोस्त हुआ करती थीं- ज्ञान वर्धन के साथ-साथ मनोरंजन और समय बिताने और काटने का बढ़िया माध्यम भी। याद आती है रेल और बस की उबाऊ और थकाने वाली लंबी यात्राएँ दो दिन या तीन दिन तक भी। तब स्टेशन से कुछ पत्रिकाएँ खरीदना अनिवार्य हो जाता था ‘मनोहर कहानियां’, ‘सत्यकथा’, ‘सरिता’, ‘नवनीत’, ‘कादंबिनी’, ‘गृहशोभा’ आदि। समाचार पत्र ले भी लें तो कितनी देर चलता और सहयात्री चलने भी नहीं देते। अब इंटरनेट आदमी का दोस्त है और मोबाइल/टैबलेट पर सब कुछ एक साथ समाचार भी, मनोरंजन भी और ढेरों पत्रिकाएँ भी। भाषा चाहे जो आप चाहें, विषय जो आपको भाता हो। देश-विदेश की सीमा से परे काल के बंधन से परे। हर उप्र के लिए पत्रिकाएँ हैं एक किलक पर हाथ के मोबाइल में- बस पसंदीदा पत्रिका हाजिर। नेटवर्क भी अब कोई समस्या नहीं रहा। भाई, रेलवाले तक चार्जिंग से लेकर वाई-फाई सुविधा देने को तैयार तो सारे नेट प्रदाता आपसी होड़ में कम से कम पैसों में अधिकतम सेवा देने को तैयार। और तो और जिओ की क्रांति ने तो उपभोक्ताओं के वारे-न्यारे कर दिए।

अब हिंदी वेब पत्रिकाओं का पाठक भी पोंगापंथी नहीं रहा। आज का यह पाठक वर्ग सब कुछ अपनी मुट्ठी में चाहता है। तकनीकी प्रगति ने क्रमशः मेज पर रखे डेस्कटॉप कंप्यूटर को अतीत का हिस्सा बना दिया है अब एंड्राइड मोबाइल्स मुट्ठी में ही सारी संचार सूचना को एक किलक पर ही पेश कर देता है -अल्लाहीन के जिन्न की तरह आका का गुलाम जो ठहरा। यह दुतरफा संवाद का माध्यम है। लिखे हुए की तत्काल प्रतिक्रिया ने इसे जीवन का अभिन्न अंग बना दिया है। किसी लेख को लाइक करना, कमेंट करना, शेयर करना और सोशल मीडिया का असीमित प्रसार किसी भी पत्रिका और उसकी लोकप्रियता की कसौटी बन सकता है। एक सीमित संसाधन वाला व्यक्ति

भी इंटरनेट पर उपलब्ध साहित्य और पत्रिकाओं तक कम से कम प्रयास से पहुंच बना पाने में समर्थ हो सका है।

भारत जैसे देश में साहित्यिक पत्रिकाओं का संचालन सदा ही बहुत कठिन और श्रम साध्य कार्य रहा तो अब वेब पत्रिकाओं का प्रकाशन तकनीकी दक्षता और आर्थिक संसाधनों के माध्यम से ही जीवित रह सकता है। यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि वेब पत्रिका का टिका रहना उसकी सामग्री की गुणवत्ता पर निर्भर करता है न कि केवल विपणन रणनीति पर जबकि मुद्रित पत्रिकाएं और अखबार अपनी विपणन रणनीति और अर्थ प्रबंधन के बल पर ही जीवित रह पाती हैं। (सीमा अग्रवाल, 2011)

वेब पत्रिकाओं के लिए एप्स

विभिन्न एप्स इंस्टाल करने भर की देर है लॉग इन करें और हिंदी की लोकप्रिय वेब पत्रिका को ऑनलाइन या डाउनलोड कर ऑफलाइन पढ़ें। साथ ही इच्छित लेख या सामग्री शेयर करें अपने मित्रों के साथ।

1. Magzter पर हिंदी पत्रिकाओं के अंक

Get your Digital Access to Hindi Magazines & Magzter

<https://www.magzter.com/magazines/language/Hindi>

1- Get your digital subscriptions/issues of Hindi magazines on Magzter and enjoy reading them on iPad, iPhone, Android devices and the web. ..List of Hindi Magazines. Bhakti Mala Hindi • India TodayHindi • Grihshobha & Hindi • Grehlakshmi.

<https://www.magzter.com/magazines/language/Hindi>

2. Readwhere

Magazines : Get digital subscriptions of all magazines in hindi on web...

www.readwhere.com/magazines/list/all/language/hindi

1. Read all magazines in hindi on web, iphone, android.

Download the readwhere on android & ios app to read magazine offline

<http://www.readwhere.com/magazines/list/all/language/hindi> readwhere example

<http://www.readwhere.com/magazines/list/all/language/hindi> Feedback/

[http://www.readwhere.com/search\q\(my:20mobile:20magazine:20in:20hindi](http://www.readwhere.com/search\q(my:20mobile:20magazine:20in:20hindi)

1 Sakhi, November 2017 : readwhere

<http://www.readwhere.com/read/m/1407060>

&Suggested Clipped Articles

&Browse more clips

समाचार पत्रों के अलावा Readwhere एप्लिकेशन पर पत्रिकाएं, कॉमिक्स और किताबें भी उपलब्ध हैं। पत्रिकाएं, कॉमिक्स और किताबें रियायती मूल्य पर उपलब्ध हैं। कुछ पत्रिकाएं और कॉमिक्स फ्री में उपलब्ध हैं। डाउनलोड होने के बाद, आप अपने पसंदीदा अखबार, कॉमिक्स और पत्रिकाएं ऑफलाइन भी पढ़ सकते हैं।

Country Inside Hindi monthly
कंट्री इनसाइड मासिक पत्रिका
<http://www.readwhere.com/read/1113949#dual/1/1>
3. Mere Toons free comic app <http://hi.4androidapk.net/category/apps/mere-toons-free-comic-app-download-27993.html>

कॉमिक्स पढ़ने के लिए यह एक आकर्षक कॉमिक्स ऐप है। एंड्रॉइड ऐप डाउनलोड के लिए निःशुल्क कॉमिक्स बुक यहां पर है। इसमें पसंदीदा-चाचा चौधरी, बिल्लो, पिंकी, मोटू-पतलू; ऐतिहासिक अकबर-बीरबल, विक्रम-बेताल; धार्मिक- भगवान शिव, साईबाबा, माता दुर्गा; भारतीय सुपर हीरोज- शक्तिमान और डायमंड कॉमिक्स की कई अन्य कॉमिक्स कहानियां शामिल हैं।

मेर टून्स सभी कॉमिक्स पाठकों के लिए एक बोनस की तरह है जो कॉमिक्स के पाठकों को असंख्य कॉमिक-कहानियां उपलब्ध कराते हैं।

इसमें पाठकों को अद्भुत, आकर्षक, मजेदार और शानदार कहानियां प्रस्तुत करने के लिए कॉमिक्स कहानियों का एक विशाल संग्रह मौजूद है।

यह आपको आपके बचपन के दिनों की अति सुंदर यादों में वापस ले जाता है। यह अलग-अलग उल्लेखनीय वर्णों के कॉमिक्स को पढ़ने के लिए मजेदार एप्लीकेशन है।

V3mobi द्वारा संचालित, यह ऐप आपको अनोखा मार्गदर्शित दृश्य पढ़ने के अनुभव का लाभ लेने और प्राचीन, क्लासिक पूर्ण पृष्ठ दृश्य का आनंद लेने में सक्षम बनाता है।

सिर्फ मेर टून्स को प्लॉ स्टोर से डाउनलोड करें और आपको अपनी पसंद के अंतहीन कॉमिक्स कहानियों तक त्वरित पहुंच मिलेगी।



अंक के रचनाकार

- दामोदर खड़से- बी-503-504, हाई ब्लिस, कैलाश जीवन के पास, छायरी, पुणे-411041 (महा.)
■ 9850088496
- अरविंद कुमार- सी-18, चंद्र नगर, गाजियाबाद-201011 (उ.प्र.), ■ 9811127360
- अशोक चक्रधर- जे-116, सरिता विहार, मथुरा रोड नई दिल्ली-110063
- फणिभूषण दास- प्रोफेसर ऑफ सर्जरी (रिटा.), 8506 दोलिना सीटी, नोत्तिघम, एमडी-21236
- ओम निश्चल- जी-1/506-ए, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059 ■ 8447289976
- पुष्पिता अवस्थी- हिंदी यूनिवर्स फाउंडेशन, विंटर कोनिंग, 28,1722, CBZUID, Scitar woude, नीदरलैंड, ■ 0031725402005
- प्रेम जनमेजय- संपादक, व्यंग्य यात्रा, 73, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063, ■ 9811154440
- उमेश चतुर्वेदी- द्वारा जयप्रकाश, दूसरा तल, निकट शिवमंदिर, एफ-23 ए, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016 ■ 9599661151
- बालेन्दु शर्मा दाधीच- 504 पार्क रायल, जी.एच.-80, सेक्टर-56, गुडगांव-122011 (हरि.) ■ 9868235423
- राजेश कुमार यादव- हिंदी अधिकारी, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा-442001 (महा.) ■ 9970244359
- गैब्रिएला इलेवा- न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय, ई-मेल- gn1@nyu.edu
- Li Yalan- Hindi Department, Beijing Foreign Studies University, No-2, Northwest of the 3rd Ring Road, Haidian District, Beijing, China-100089
■ 0086:13552133136
- स्नेह ठाकुर- 16 रेविलिस क्रिसेंट, टोरोंटो, ऑन्टारिओ, एमआईवी, 1 ई9, कनाडा ■ 416-291-9534
- सुषम बेदी- ई-मेल- sb12@cdumbia.edu
- सुरेंद्र गंभीर- जी-57, मेधा अपार्टमेंट, मयूर विहार फेस-1, विस्तार, दिल्ली-110091 ■ 9873123237
- अर्जना पैन्यूली- ब्राइ जी रोड 2160 कोपेनहेगन, डेनमार्क ■ 4571334214
- रेखा राजवंशी- ई-मेल- rekhalokrajvansi@hotmail.com
- दिविक रमेश- एल-1202, ग्रेंड अजनारा, हेरिटेज, सेक्टर-74, नोएडा-201301 (उ.प्र.), मो. 9910177099
- प्रह्लाद रामशरण- 30 स्वामी दयानंद स्ट्रीट बो बासें, मॉरीशस गणराज्य
- कमल किशोर गोयनका- ए-98 अशोक विहार, फेज-प्रथम, दिल्ली-110052 ■ 9811052469
- कमल किशोर मिश्र- सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग कोलकाता विश्वविद्यालय, कोलकाता-700073 (प.ब.) ■ 8902750940

- उषा राजे सक्सेना- 54 हिल रोड, मिटचाम सूर्य सीआर 42 एचक्यू, यू.के. □0044745 9110680
- तत्याना ओरांस्कया- डिपार्टमेंट ऑफ इंडिया एंड तिब्बत, हेमबर्ग विश्वविद्यालय, एलेस टार्टेरेसी-1, प्रथम तल, राइट-20354, हमबर्ग, जर्मनी □4914665946308
- उषा शर्मा- एन.9/87 डी-77, जानकी नगर, पोस्ट-बजरडीह, वाराणसी-211009 (उ.प्र.)
- राकेश मंजुल- एडजंक्ट प्रोफेसर, प्रदर्शनकारी कला (फिल्म एवं नाटक) महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महा.) □9415011615
- राकेश कुमार- एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी एवं हिंदी पत्रकारिता विभाग, रामलाल आनंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110021 □9899686959
- कुमार नरेंद्र सिंह- 459, द्वितीय तल, सेक्टर-5, वैशाली, गाजियाबाद-201010 (उ.प्र.) □9818341691
- वशिनी शर्मा- 53, कैलाश विहार, आगरा-282007 (उ.प्र.) □919837392009



प्रकाशन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

सदस्यता आवेदन पत्र

‘बहुवचन’ त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)

‘बहुवचन’ त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 400 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

‘पुस्तक-वार्ता’ द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 120 रु. (व्यक्तिगत)

‘पुस्तक-वार्ता’ द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 180 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

(नोट : केवल बैंक ड्राफ्ट स्वीकार किए जाएंगे। कृपया मनीऑफर इवं चेक न भेजें।)

बैंक ड्राफ्ट ‘महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा’ के नाम देय होगा और उसे निम्नलिखित पते पर भेजने की कृया करें।
किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक का ड्राफ्ट स्वीकार्य होगा।

प्रकाशन प्रभारी

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा - 442 001 (महाराष्ट्र)
फोन नं. 07152-232943



Bank Details for Online Payment :

Name: Finance Officer, Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Bank Name: Bank of India, Wardha Account No.: 972110210000005
IFSC Code No.: BKID0009721 MICR Code No.: 442013003



बहुवचन/पुस्तक-वार्ता पत्रिका के अंक से के लिए

रुपये का बैंक ड्राफ्ट संख्या दिनांक

संलग्न कर रहा हूँ/कर रही हूँ, कृपया मेरी प्रति निम्नलिखित पते पर भेजे :-

नाम :

पता :

दूरभाष : ई-मेल :

दिनांक :

(सदस्य के हस्ताक्षर)